THE BOOK WAS DRENCHED

Text problem book

राजधानी के कहानीकार

राजधानी के ख्याति-प्राप्त तथा उठते-उभरते लेखकों की कहानियों का संग्रह ;

•

भूमिका

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

•

सम्पादक

जगदीश 'विद्रोही'

रामेश्वर 'अशान्त'

•

त्रिमूर्ति प्रकाशन

चावड़ी बाजार, दिल्ली

राजधानी के कहानीकार

: राजधानी के ख्याति-प्राप्त तथा उठते-उभरते लेखकों की कहानियों का संग्रह :

●

भूमिका

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

●

सम्पादक

जगदीश 'विद्रोही'

रामेश्वर 'अशान्त'

●

त्रिमूर्ति प्रकाशन

चावड़ी बाजार, दिल्ली

आलोचना व निबन्ध

सम्पादकीय

दिल्ली अति प्राचीन काल से, भारत के सभी प्रान्तों–प्रदेशों पर शासन करती आई है। इतिहास के जिस काल तक के फटे-पुराने पन्ने प्राप्त हुए हैं, उन सभी में दिल्ली का भारत की राजधानी रहना, प्राचीन परम्परा-सा सिद्ध हुआ है। राजधानी का पद पाने के कारण दिल्ली एक प्रकार से भारतीय संस्कृति का केन्द्र रही है और यह सत्य है कि जहाँ संस्कृति का केन्द्र होता है, साहित्य वहीं पर जन्म लेता है।

एक युग ऐसा रहा है जब साहित्य लिखा नहीं जाता था वरन् अलिखित, ऋषि-मुनि-मनीषियों की जिह्वाओं पर चित्रित रहता था। किन्तु समय के साथ-साथ ही समाज की परम्पराओं में परिवर्त्तन आया और परिवर्त्तन की गोद में ही साहित्य-प्रसून पलता, बढ़ता लिखित रूप में अवतरित हुआ।

इस राजधानी में जहाँ किसी युग में विश्व की राजनीति पली, समाज की व्यवस्थाएँ बनी वहाँ साहित्यिक मनीषियों का भी बोल-बाला रहा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साहित्य की उत्पत्ति कविता से हुई, किन्तु कविता की भी अपनी एक कहानी रही ही होगी। जैसे समूची समष्टि उसमें उत्पन्न हुए जीव-जन्तु और बुद्धिधारी मानव की एक कहानी है, ठीक वैसे ही साहित्य के जन्म एवं पालन-पोषण की भी एक कहानी है। जहाँ मनुष्य का जन्म लेना और पोषण पाना एक कहानी ', वहाँ उसके हृदय-दर्पण से समाज का प्रतिबिम्ब प्रकाशित होना भी एक कहानी है।

आज तो भारत की नई दुलहिन-सरीखी इस राजधानी पर वि-व के सभी शिशु, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध राष्ट्रों की निगाहें लगी है। ऐसे समय में इसके आँचल मे पलने वाले साहित्यकारों को भी यदि अपने पर गर्व हो तो बुराई क्या है? दिल्ली के साहित्यकारों में कहानीकारों का भी प्रमुख स्थान है। कुछ माननीय कहानीकार तो यहाँ ऐसे भी हैं जिन्हें विश्व-कहानी-प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत भी किया गया है। उनकी गणना हिन्दी-गगन के चमकते चन्द्रमाओं में की जाती है।

'राजधानी के कहानीकार'-सरीखे कई-एक सफल-असफल प्रयास इस संग्रह से पूर्व भी हो चुके हैं। उनके लिए हम कसौटी नही; आलोचक परखे और धारणा नियत

करें। हमारा उद्देश्य तो यहाँ के समस्त सिद्धहस्त और नई पौध के कहानी-लेखकों की श्रेष्ठ रचनाओं का एक स्थान पर संग्रह करना-मात्र था। रचना-संकलन में कहानी की नवीनता नहीं वरन् उसकी श्रेष्ठता को महत्त्व दिया गया है, क्योंकि हमारी दृष्टि में श्रेष्ठ रचना कभी पुरानी नहीं होती।

इस संग्रह में जितने भी सिद्धहस्त, प्रसिद्ध, प्रौढ़ लेखकों की रचनाएँ हैं, वे सब नई पौध के कहानीकारों के ऊपर आशीर्वाद-स्वरूप हैं। साहित्य-गगन के इन चमकते सितारों से प्रकाश प्राप्त करके मरुस्थल के बालू-कण भी चमक उठेंगे, यही विश्वास लेकर इस संग्रह को प्रकाशित किया गया है।

पुस्तक में कहानियों का मुद्रण-क्रम साथी-सहयोगियों की सलाह से आयु की दृष्टि से रखा गया है। जिन स्नेही साहित्यकारों की कहानियाँ संग्रह में प्रकाशित हुई हैं, उनके सहयोग के हम आभारी हैं।

किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण, पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से बहुत-से हिन्दी-साहित्य के जाने-पहचाने कहानीकारों की रचनाएँ हम इस संग्रह में संकलित नहीं कर पाये, इसके लिए हमें खेद है। हम शीघ्र ही इस पुस्तक का दूसरा भाग भी प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसमें उनका समावेश रहेगा।

इस संग्रह को तैयार करने में हमें सर्वश्री बालमुकुन्द मिश्र, भगवद्दत्त 'शिशु' और चेतन कुमार भटनागर का जो सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए हम उनके आभारी हैं। पुस्तक की भूमिका लिखकर हिन्दी - साहित्य के सजग प्रहरी और आदरणीय आलोचक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने हमें साहित्य-सेवा के लिए, उदार हृदय से जो अतुल प्रेरणा प्रदान की है, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। मुद्रण और प्रूफ़-रीडिंग आदि की अशुद्धियों के प्रति योग्य पाठकों एवं आलोचकों की उदारता प्रार्थनीय है।

स्नेहाकांक्षी

दिल्ली — जगदीश 'विद्रोही'

१ जनवरी '५६ — रामेश्वर 'अशान्त'

भूमिका

भारत की राजधानी दिल्ली का जहाँ भारत के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक उन्नयन में अपना विशिष्ट स्थान है वहाँ साहित्यिक चेतना जाग्रत करने में भी वह कभी पीछे नहीं रही। जिस प्रकार इसके अंचल में अनेक ऐतिहासिक साम्राज्यों के नवनिर्माण की रूपरेखाएँ बनीं और बिगड़ीं, उसी प्रकार समाज की आध्यात्मिक तथा मानसिक क्षुधा की पूर्ति करने वाले अनेक साहित्यकार भी इसकी पावन भूमि में जन्मे, पले और बढ़े हैं। यही नहीं कि राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में ही दिल्ली ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया हो, प्रत्युत साहित्यिक जागरण की दिशा में भी उसने वे अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं, जिन पर उसे गर्व है।

भारत जब से स्वतन्त्र हुआ है और भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी को जब से राज्य-भाषा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तब से तो दिल्ली ने हिन्दी-साहित्य के प्रचार, प्रसार और प्रकाशन के क्षेत्र में भी अपना अग्रणी स्थान बना लिया है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि यहाँ के साहित्य-प्रेमियों तथा अध्येताओं के मन-में साहित्य-निर्माण की चेतना और भी बलवती होती। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि दिल्ली-प्रदेश की साहित्यिक प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने के लिए पिछले दो-तीन वर्ष में कविताओं के एक-दो संग्रह प्रकाशित भी हुए। 'राजधानी के कहानीकार' का प्रकाशन भी ऐसा ही एक प्रशंसनीय प्रयास है।

'राजधानी के कहानीकार' में भारत की राजधानी दिल्ली में रहने वाले हिन्दी के चौंतीस कहानीकारों की कहानियों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। इसमें जहाँ आचार्यों की कोटि में आने वाले सर्वश्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वियोगी हरि तथा जैनेन्द्रकुमार-जैसे ख्याति-प्राप्त महानुभावों की कहानियाँ समाविष्ट की गई हैं वहाँ प्रौढ़ कथाकारों में अग्रगण्य सर्वश्री नरोत्तम नागर, लेखराम, श्रीराम शर्मा 'राम', रामचन्द्र तिवारी, यशपाल जैन, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, जयन्त वाचस्पति, वीरेन्द्र त्रिपाठी, केशवगोपाल निगम और सत्यदेव शर्मा आदि की कहानियों में भी उनकी ज्वलंत प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

अपने इन आदरणीय तथा परिपक्व कथाकारों की कहानियों को इस संग्रह में

समाविष्ट करके सम्पादकों ने अपनी विवेकशीलता का जो परिचय दिया है, वह इस संग्रह की उपादेयता बढ़ाने में सहायक ही हुआ है। यदि इसे इस प्रकार कहें तो अधिक संगत होगा कि अपने इन गुरुजनों के स्नेह तथा परिपक्व प्रतिभा वाले बन्धुओं के सक्रिय सहयोग का सम्बल ही इन उठती-उभरती प्रतिभाओं के मार्ग-दर्शन में सहायक हुआ है। यहाँ तक कि सम्पादकों ने जिन महिला-लेखिकाओं की रचनाएँ भी इसमें प्रकाशित की हैं उनमें श्रीमती सत्यवती मल्लिक और श्रीमती रजनी पनिकर कहानी-क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी हैं।

इस संग्रह की एक विशेषता यह है कि इसमें जहाँ पाठकों को मुगलकालीन वातावरण की झाँकी मिलेगी वहाँ पाश्चात्य सभ्यता से आक्रान्त पात्र भी अपनी अस्तोन्मुख स्थिति का ढिढोरा पीटते दृष्टिगत होंगे। यहाँ तक कि समाज का कोई भी ऐसा अंग या पक्ष इसके लेखकों की प्रतिभा से अछूता नहीं बचा, जिसका दिग्दर्शन उन्होंने न कराया हो। 'मोहना' के रूप में श्री वियोगी हरि जी ने जहाँ हरिजन-समस्या को उभारकर हमारे सामने रखा है, वहाँ श्रीमती रजनी पनिकर ने 'भगवान् जल गया' में मन्दिर के पुजारियों के कलंकित चरित्र का चित्रण किया है। आचार्य चतुरसेन, जयन्त वाचस्पति और भगवद्दत्त 'शिशु' की कहानियाँ भारतीय इतिहास के ज्वलन्त पृष्ठ मुगलकाल की याद ताज़ा करा रही हैं। रामचन्द्र शर्मा महारथी की 'आँखों का मोल' तथा सत्यदेव शर्मा की 'रूप का रोना' शीर्षक कहानियों में रूप और यौवन के उस पक्ष का चित्रण किया गया है, जिसके कारण मनुष्य को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सर्वश्री नरोत्तम नागर, ओम्प्रकाश शर्मा तथा जगदीश 'विद्रोही' की कहानियाँ हमारे समक्ष सत्याग्रह, क्रान्ति और हड़ताल आदि का आश्रय लेकर चलाये गये राजनीतिक आन्दोलनों का सजीव चित्र उपस्थित करती हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने 'इनाम' और श्री श्रीराम शर्मा 'राम' ने 'कमला का बेटा' शीर्षक कहानियों मे भारतीय परिवारों में दिनानुदिन होने वाली घटनाओं को हमारे सामने ऐसे रखा है कि यह अनुभव होता है कि यह सब हमारी आँखों के सामने ही हो रहा है। श्री यशपाल की 'चोरी' तथा श्री राजाराम शास्त्री की 'झल्ली वाला' शीर्षक कहानियाँ उस वर्ग का चित्र उपस्थित करती हैं, जो घर के नौकरों तथा झल्ली वालों तक को भी अपनी सन्देहशीलता तथा क्रूरता का निशाना बनाने से नहीं चूकते। 'अलका की अंगूठी' कहानी में श्री रामचन्द्र तिवारी ने इस बात को बड़ी ही रोचक एवं प्रभावपूर्ण शैली में उपस्थित किया है कि एक कलाकार—तबला-वादक धनी वर्ग द्वारा किस प्रकार प्रताड़ित और लांछित किया जाता है। 'आकाश की छाया में' के लेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने शिक्षण-संस्थाओं में नियुक्ति पाने के लिए होने वाली दौड़-धूप का वर्णन बड़ी ही मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी शैली में किया है। आज हमारे

समाज में ऐसी अनेक लड़कियाँ होंगी जो सरला की भाँति योग्य होते हुए भी यथेच्छ स्थान प्राप्त नहीं कर पातीं। 'सपनों की तस्वीर' में श्री वीरेन्द्र त्रिपाठी ने एक युवक की भावना का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है और श्री शरदेन्दु ने हमारे चिन्तन के लिए एक समस्या प्रस्तुत करते हुए यह सूत्र दिया है–'सब जी रहे हैं अपनी-अपनी कलाओं को लेकर'।

यही नहीं कि इस संग्रह में पारिवारिक जीवन, युवकोचित रोमांस, नारी के अन्तर्द्वन्द्व तथा समाज के तथाकथित उन्नायकों द्वारा होने वाले शोषण-दोहन का नग्न चित्र प्रस्तुत करने वाली कथाएँ ही संग्रहीत हैं, बल्कि इसमें 'पाकेटमारी' और 'जादू टोना'-जैसे समाज द्वारा उपेक्षित अङ्गों को भी आधार-भूमि बनाया गया है। इस दृष्टि से श्री केशवगोपाल निगम की 'उस्ताद मंगलू' तथा श्री मुनीन्द्रकुमार जैन की 'मारण मन्त्र' कहानियाँ पाठकों में उत्सुकता तथा कौतूहल जाग्रत करने के साथ-साथ उनका पर्याप्त मनोरंजन भी करती हैं। 'उस्ताद मंगलू' के रूप में श्री निगम ने एक पाकेटमार का आदर्श चरित्र प्रस्तुत किया है। बीसवीं शताब्दी के इस जागरण युग में 'मारण मन्त्र'-जैसी कहानी निश्चय ही पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है।

'बंदरिया' के लेखक श्री केशवदेव मिश्र 'कमल' ने एक मूक प्राणी के अन्तर में निहित ममता का जो चित्र अङ्कित किया है, वह प्रेम और ममता की दुहाई देने वाले स्वार्थी मनुष्यों पर करारा व्यंग्य है। कहानीकार स्वभावतः चिन्तनशील होता है। जहाँ उस पर उसकी यह प्रवृत्ति अधिक हावी हो जाती है, वहाँ वह कहानी से हट-कर विचारों की वीथी में विचरण करने लगता है। इस संग्रह की कहानियों में श्री लेखराम की 'जलते दीये' और श्री बालमुकुन्द मिश्र की 'इन्सान का चिन्तन' शीर्षक कृतियाँ इसी कोटि की हैं। दोनों में ही उनका विचारक झाँकता परिलक्षित होता है।

निरन्तर जीवन-संघर्ष में जूझते रहने के बाद मानव विश्राम चाहता है, और वह तब ही मिल सकता है, जब कि उसे ऐसा साहित्य पढ़ने को मिले जो न केवल उसके अन्तर को ही गुदगुदा दे, बल्कि उसके अध्ययन से उसके मस्तिष्क की शिराएँ तक एक नवीन स्फूर्ति तथा चेतना अनुभव करने लगें। हास्य-व्यंग्य का साहित्य वह अमोघ औषध है जो आपदाओं से घिरे मानव में नवीनता तथा उत्फुल्लता का संचार करता है। इस दृष्टि से भी यह संग्रह उपादेय बन पड़ा है। हमारे इस कथन की पुष्टि श्री प्रभाकर माचवे की 'दरबार ड्रैस', श्री चिरंजीलाल पाराशर की 'चुनाव की मोटर' तथा श्री तुलसीराम चतुर्वेदी की 'गलती पोस्टमैन की' शीर्षक कहानियों से हो जाती है। 'दरबार ड्रैस' में हमें उस सामन्ती संस्कृति के दर्शन होते हैं, जो स्वाधीनता मिलने के बाद आज नामशेष हो गई है। 'चुनाव की मोटर' में लेखक ने चुनाव-आन्दोलन में प्रयुक्त होने वाली मोटर और उसके मालिकों का अच्छा खाका खींचा है। 'गलती

पोस्टमैन ने की' शीर्षक कहानी में श्री चतुर्वेदी जी ने एक ऐसे तरुण की मनोभावनाओं का अंकन किया है, जो जीवन के २५ बसन्त बीत जाने पर भी अपने जीवन-संगी की खोज में व्यस्त रहता है और प्रतिदिन ऐसी चिट्ठी की प्रतीक्षा करता है, जिसमें उसकी अभीष्ट-पूर्ति का संवाद हो ; किन्तु अन्त में इसका समाधान वह यह कहकर ही कर लेता है कि 'गलती पोस्टमैन ने की है' ।

'सातवाँ यज्ञ' इस संग्रह की ऐसी कहानी है, जो भौतिकवाद के उपासक आज के इस समाज के प्रत्येक जागरूक प्रहरी को अवश्य पढ़नी चाहिए । जब कि हमारे सामाजिक जीवन से यज्ञ तथा दान आदि सांस्कृतिक अनुष्ठानों का सर्वथा विलोप हो गया है और निराशा की गहन मूर्च्छना से हमारा चारित्रिक विकास सर्वथा अवरुद्ध है, तब इस प्रकार की कहानियाँ ही हमारे देश की नई पीढ़ी को अपूर्व ओज तथा प्रेरणा प्रदान कर सकेंगी ।
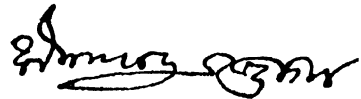
श्रीमती सत्यवती मल्लिक, निर्मला माथुर, देवव्रती शर्मा, उर्मिला वार्ष्णेय तथा कमलेश सक्सेना की कहानियों में नारी-सुलभ प्रतिभा सहज ही परिलक्षित होती है । नारी-समाज के अन्तर्द्वन्द्व तथा आत्म-पीड़न की झलक पाने के लिए इनकी कहानियाँ दर्पण का काम देती हैं । इनमें हमारा पुरुष-समाज अपनी निर्ममता, हृदयहीनता तथा स्वार्थ-परता की नग्न झाँकी ले सकता है ।

सारांशतः यह कथा-संग्रह जहाँ सभी दृष्टियों से अभूतपूर्व बन पड़ा है, वहाँ राजधानी के कुछ उल्लेखनीय तथा प्रतिष्ठित कथाकारों की कहानियों का इसमें समावेश न होना, निःसन्देह चन्द्रमा में कलंक के समान खटकता है । सम्पादकों ने अपने वक्तव्य में यह स्वीकार किया है कि किन्हीं अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण वे इच्छा रहते हुए भी ऐसा नही कर सके । यह शुभ लक्षण है कि सम्पादकों का विचार निकट भविष्य में ऐसा ही दूसरा संग्रह प्रकाशित करने का है, जिसमें शेष सभी ख्याति-प्राप्त तथा उदीयमान कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित की जायँगी ।

इस कमी के रहते हुए भी 'राजधानी के कहानीकार' का अपना महत्त्व है । सम्पादकों का यह प्रयास सर्वथा नवीन दिशा की ओर है, अतः अभिनन्दनीय है । मैं इसका अधिकाधिक प्रचार चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इसका अनुकरण देश के दूसरे स्थानों के साहित्य-सेवी भी करें, जिससे प्रकाशन और प्रचार की दुनिया से दूर, एकान्त साधना में निमग्न प्रतिभाओं को उचित प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिले और वे दिनानुदिन साहित्य-साधना के पथ पर अविराम गति से बढ़ते चलें ।

दिलशाद गार्डन, दिल्ली-शाहदरा
१६ जनवरी '५६

लेखक-परिचय

आचार्य चतुरसेन शास्त्री : प्रख्यात उपन्यासकार एवं कहानी-लेखक : इतिहास तथा संस्कृत-साहित्य के मर्मी विद्वान् : पुरानी पीढ़ी के लेखकों में अग्रणी। ज्ञान धाम, दिल्ली-शाहदरा।

वियोगी हरि : वीर तथा सन्त-साहित्य के प्रणेता : वर्चस्वी विचारक एवं मनस्वी विद्वान् : प्रसिद्ध समाज - सेवी : मंगलाप्रसाद, पारितोषिक - विजेता। हरिजन-निवास, किंग्सवे, दिल्ली।

रामचन्द्र शर्मा महारथी : अस्तंगत 'महारथी' के यशस्वी सम्पादक : कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं जागरूक समाज-सेवी। १८, दीवान हाल, दिल्ली।

जैनेन्द्रकुमार : सुप्रसिद्ध विचारक : ख्याति-प्राप्त उपन्यासकार एवं कहानी लेखक। पूर्वोदय प्रकाशन, दरिया गंज, दिल्ली।

नरोत्तम नागर : लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार एवं कथा-शिल्पी : व्यंग-विनोदमयी शैली के समर्थ आलोचक। १३२ डी. कमलानगर, सब्जी मण्डी, दिल्ली।

श्रीराम शर्मा 'राम' : प्रसिद्ध कहानीकार एवं उपन्यास-लेखक : श्रमजीवी साहित्यिक। कूचा कासगरी, बाजार सीताराम, दिल्ली।

रामचन्द्र तिवारी : अद्यतन कथा - शिल्पियों में प्रमुख : वैज्ञानिक कहानियों के सृष्टा : उपन्यासकार एवं एकांकी-लेखक। कूचा दिलवाली सिंह, अजमेरी गेट, दिल्ली।

यशपाल जैन : गांधीवादी विचार-धारा के संवाहक जागरूक पत्रकार एवं प्रौढ़ कहानी-लेखक : 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक। सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।

विष्णु प्रभाकर : प्रख्यात कहानी-लेखक : उपन्यासकार, नाटककार एवं मनस्वी साहित्यिक : रेडियो-रूपक-लेखन में सिद्धहस्त। आकाश वाणी, नई दिल्ली।

लेखराम : निर्भीक पत्रकार एवं सजग कथा-शिल्पी। गांधी गली, फतहपुरी, दिल्ली।

प्रभाकर माचवे : प्रसिद्ध कवि, आलोचक एवं उपन्यासकार : व्यंग-विनोद-लेखन में सिद्धहस्त : प्रतिभाशाली साहित्यिक। सहायक मन्त्री साहित्य अकादमी नई दिल्ली।

जयन्त वाचस्पति : अस्तंगत साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' के सम्पादक : प्रतिभाशाली कहानी-लेखक एवं कुशल चित्रकार। फिल्म-विभाग, नगर पालिका, दिल्ली।

वीरेन्द्र त्रिपाठी : 'रंगभूमि', 'नया कदम' और 'इन्द्र धनुष' के सफल सम्पादक : प्रगतिशील कहानीकार, आलोचक एवं कवि। टीचर्स क्वार्टर्स, जामा मस्जिद, डिस्पेंसरी, दिल्ली।

केशवगोपाल निगम : 'आजकल' के भूतपूर्व सहकारी सम्पादक : 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी) के वर्तमान सम्पादक : नई पीढ़ी के कहानी-लेखकों में अग्रणी। गली बताशा, चावड़ी बाज़ार दिल्ली।

सत्यदेव शर्मा : हिन्दी के समर्थ कहानी-लेखक एवं सुपरिचित कवि। आकाशवाणी, नई दिल्ली।

चिरंजीलाल पाराशर : अध्यवसायी साहित्य-सेवी : हास्य - व्यंगमयी शैली के अनुकर्त्ता : कवि तथा कहानीकार। २१२३, मुकीमपुरा, सब्जी मण्डी, दिल्ली।

राजाराम शास्त्री : सिद्धहस्त नाटककार एवं कहानी-लेखक। सत्सहयोगी प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली।

भगवद्दत्त 'शिशु' : शान्त और निर्वेद रस के प्रख्यात तरुण कवि : उदीयमान् कथाकार। हरिजन उद्योगशाला, किंग्सवे, दिल्ली।

शरदेन्दु : तरुण पत्रकार, प्रगतिशील कवि एवं लेखक। सह सम्पादक 'दैनिक हिन्दुस्तान' नई दिल्ली।

केशवदेव मिश्र 'कमल' : नई पीढ़ी के जागरूक लेखक : मूक साधक एवं अध्यनशील साहित्य-प्रेमी। हरिजन-निवास, किंग्सवे, दिल्ली।

मोतीलाल मालवीय : तरुण कहानीकार और अध्ययनशील लेखक : कर्मठ जनसेवी और संसद्-सदस्य। हरिजन निवास,किंग्सवे, दिल्ली।

बालमुकुन्द मिश्र : राजधानी के तरुण गीतकारों में अन्यतम : कर्मठ साहित्य-सेवी : उदीयमान कथाकार। मन्दिर कृपाशंकर, चाँदनी चौक, दिल्ली।

ओमप्रकाश शर्मा : श्रमिक साहित्यकार : प्रगतिशील कहानी-लेखक और उपन्यासकार। बड़ वाला चौक, गली मन्दिर वाली, पहाड़ी धीरज, दिल्ली।

तुलसीराम चतुर्वेदी : तरुण पत्रकार, ओजस्वी कवि एवं उदीयमान गल्प-लेखक। दिलशाद गार्डन, दिल्ली-शाहदरा।

जगदीश 'विद्रोही' : इस संग्रह के सम्पादक। रामद्वारा चर्खेवालान, दिल्ली।

रामेश्वर 'अशान्त' : इस संग्रह के सम्पादक। गली बताशा, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली।

मदनलाल भाटिया : उदीयमान लेखक एवं गद्य-काव्य-सृष्टा। १३६, तिलक बाज़ार, दिल्ली।

मुनीन्द्रकुमार जैन : प्रतिभाशाली तरुण कहानीकार एवं अध्ययनशील पत्रकार। १२६१, गली गुलियान, दरीबा दिल्ली।

सत्यवती मल्लिक : सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका : प्रकृति - सुषमा एवं मानवीय संवेदनाओं की कुशल साधिका। कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

निर्मला माथुर : कला, काव्य और साहित्य की सजग साधिका : तरुण कहानी-लेखिका एवं कवयित्री। ७।३०, आनन्द लेन, दरियागंज, दिल्ली।

रजनी पनिकर : कुशल उपन्यास-लेखिका एवं कथा शिल्पी : महिला-मनोविज्ञान की चित्रकर्त्री। विदेश प्रसारण-विभाग, आकाशवाणी, नई दिल्ली।

देववती शर्मा : नवोदित कवयित्री, कहानी-लेखिका एवं प्रौढ़ शिक्षिका।

उर्मिला वार्ष्णेय : नारी-समस्याओं की मर्मज्ञ : सफल लेखिका एवं कवयित्री। दिलशाद गार्डन, दिल्ली-शाहदरा।

कमलेश सक्सेना : तरुण लेखिका, कवयित्री एवं अध्ययनशील साहित्य-साधिका। आचार्या कमलेश बालिका विद्यालय, बाज़ार सीताराम, दिल्ली।

क्रम

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी

गर्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फाल्गुन में सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के सब झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की किलोल करने, वह सलीमा को लेकर काश्मीर के दौलतखाने में चले आये थे।

रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियां बर्फ से सफेद होकर चांदनी में बहार दिखा रही थीं। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था और उसकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुथी हुई उस फ़ीरोजी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों की कमर पेटी पर, अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमर्मर के समान पैरों में ज़री के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक क़ीमती ईरानी क़ालीन का फर्श बिछा हुआ था जो पैर लगते ही हाथ भर धंस जाता था। सुगन्धित मसालों से बने हुए शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे क़द के आईने लगे थे। संगमर्मर के आधारों पर सोने-चांदी के फूलदानों में ताजे फूलों के गुलदस्ते रखे थे। दीवारों और दरवाजों पर चतुराई से गुंथी हुई नागकेशर और चम्पे की मालाएं झूल रही थीं, जिनकी सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगित बहूमूल्य कारीगरों की देश विदेश की वस्तुएं क़रीचे से सजी हुई थीं।

बादशाह दो दिन से शिकार को गए थे। आज इतनी रात होगई, अभी तक नहीं आये। सलीमा चाँदनी में दूर तक आंखें बिछाए सवारों की गर्द देखती रही। आखिर उससे न रहा गया वह खिड़की से उठ कर, अनमनी-सी होकर मसनद पर

आ बैठी। उम्र और चिन्ता की गर्मी जब उससे सहन न हुई। तब उसने अपनी चिकन की ओढ़नी भी उतार कर फेंकी, और आप ही आप झुंझलाकर बोली—"कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब क्या करूं ?" इनके बाद उसने रक्खी बीन उठाली। दो-चार उंगली चलाई, मगर स्वर न मिला। उसने झुंझुला कर कहा—मर्दों की तरह यह मेरे वश में नहीं है।" सलीमा ने उकता कर उसे रख दस्तत दी। एक बांदी हस्तबस्ता हाजिर हुई।

बांदी अत्यन्त सुन्दर और कमसिन थी। उसके सौन्दर्य में एक गहरे विषाद की रेखा और नेत्रों में नैराश्य स्याही थी उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा—"साक़ी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बांसुरी ?"

बांदी ने नम्रता से कहा—"हज़ूर जिसमें खुश हों।"

सलीमा ने कहा—"पर तू किस में खुश है ?"

बांदी ने कम्पति स्वर में कहा—"सरकार बांदियों की खुशी ही क्या ?"

क्षण-भर सलीमा ने बांदी के मुंह की तरफ देखा—वैसा ही विषाद, निराश और व्याकुलता का मिश्रण हो रहा था।

सलीमा ने कहा—" मैं क्या तुझे बांदी की नजर से देखती हूँ"

"नहीं, हजरत की तो लौंडी पर खास मेहरबानी है"

तब तू इतनी उदास, झिझकी हुई और एकान्त में क्यों रहती है ? जब से तू नौकर हुई है, ऐसी ही देखती हूं ! अपनी तकलीफ मुझ से तो कह प्यारी साक़ी !

इतना कहकर सलीमा ने उसके पास खिसक कर उसका हाथ पकड़ लिया।

बांदी कांप गई पर बोली नहीं।

सलीमा ने कहा—"क़समिया ! तू अपना दर्द मुझसे कह, तू इतनी उदास क्यों रहती है ?"

बांदी ने कम्पित स्वर से कहा—"हुज़ूर क्यों इतनी उदास रहती हैं ?"

सलीमा ने कहा—"इधर जहांपनाह कुछ कम आने लगे हैं। इससे तबीयत ज़रा उदास रहती है।"

बांदी—"सरकार ! प्यारी चीज़ न मिलने से इन्सान को उदासी आ ही जाती है, अमीर और ग़रीब, सभी का दिल तो दिल है।

सलीमा हंसी। उसने कहा—"समझी, अब तू किसी को चाहती है ? मुझे उसका नाम बता मैं उसके साथ तेरी शादी करा दूंगी।

साक़ी का सर घूम गया। एकाएक उसने बेगम की आंखों से आंख मिलाकर कहा—"मैं आपको चाहती हूँ।।"

सलीमा हंसते-हंसते लोट गई। उस मदमाती हंसी के बेग में उसने बांदी का कम्पन नहीं देखा। बांदी ने बंशी लेकर कहा—"क्या सुनाऊं ?"

बेगम ने कहा—"ठहर, कमरा गर्म मालूम देता है। इसके तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चांदनी का लुत्फ़ उठाने दे, और वे फूल-मालाएं मेरे पास रखदे।"

बांदी उठी। सलीमा बोली—"सुन, पहले एक ग्लास शरबत दे, बहुत प्यासी हूं।"

बांदी ने सोने के ग्लास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा—"उफ़, यह तो बहुत गर्म है। क्या इस में गुलाब नहीं दिया?"

बांदी ने नम्रता से कहा—"दिया तो है सरकार?"

अच्छा, इसमें थोड़ा-सा इस्तम्बोल और मिला।"

साक़ी ग्लास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तम्बोल मिलाया और भी एक चीज़ मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही सांस में उसे पीकर बेगम ने कहा—"अच्छा अब सुना। तूने कहा था कि मुझे प्यार करती है, सुना कोई प्यार का गाना सुना।"

इतना कह और ग्लास को गलीचे पर लुढ़का कर मदमाती सलीमा उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढ़क गई, और रसभरे नेत्रों से साक़ी की ओर देखने लगी। साक़ी ने बंशी का सुर मिलाकर गाना शुरू किया—

"दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी...."

बहुत देर तक साक़ी की वंशी और कण्ठ ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साक़ी खुद रोने लगी। सलीमा मदिरा और यौवन के नशे में होकर झूमने लगी।

गीत खतम करके साक़ी ने देखा, सलीमा बेसुध पड़ी है शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख होगए हैं, और तम्बूल-राग-रंजित होठ रह रहकर फड़क रहे है। सांस की सुगन्ध से कमरा महक रहा है जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्ष.स्थल धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वेद की की बूंदें ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

बंसी रखकर साक़ी क्षण-भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर कांपा, आंखें जलने लगी, कण्ठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुक कर बेगम का मुंह चूम लिया।

इसके बाद ज्योंही उसने अचानक आंख उठाकर देखा, खुद दीन दुनिया के मालिक शाहजहां खड़े उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साक़ी को सांप डस गया। वह हत-बुद्धि की तरह बादशाह का मुंह ताकने लगी। बादशाह ने कहा—"तू कौन है ? और यह क्या कर रही थी ?"

साक़ी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा—"जवाब दे !"

साक़ी धीमे स्वर में कहा—"जहांपनाह साक़ी अगर कुछ जवाब न दे, तो ?"

बादशाह सन्नाटे में आ गए। बांदी की इतनी स्पर्द्धा !

उन्होंने कहा—"मेरी बात का जवाब नही ? अच्छा तुझे नंगी करके कोड़े लगाए जायंगे !"

साक़ी ने कम्पित स्वर में कहा—"मैं मर्द हूँ !"

बादशाह की आंखों में सरसों फूल उठी उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध खड़ी सो रही थी। उसीतरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था उनके मुंह से निकला "उफ् फ़ाहशा !" और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर नीचे को उन्होंने घूमकर कहा—"दोज़ख के कुत्ते ! तेरी यह मजाल !"

फिर कठोर स्वर से पुकारा "मादूम !"

क्षण-भर में एक भयंकर रूप वाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया—इस मर्दूद को तहखाने में डालदे, ताकि बिना खाये-पिये मर जाय।"

मादूम ने अपने कर्कश हाथों में युवक का हाथ पकड़ा और ले चलीं थोड़ी देरे में दोनों एक लोहे के मज़बूत दरवाजे के पास आ खड़े हुए। तातारी बांदी ने चाबी निकालकर दरवाजा खोला और क़ैदी को भीतर ढ़केल दिया कोठरी की गच क़ैदी का बोझ ऊपर पड़ते ही कांपती हुई नीचे को धसकने लगी।

(२)

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंक कर उठ बैठी। बाल संवारे, ओढ़नी ठीक की, और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियां बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा—"साक़ी ! प्यारी साकी ! बड़ी गर्मी है, ज़रा खिड़की तो खोल दे। निगोड़ी नींद ने तो आज ग़ज़ब ढा दिया। शराब कुछ तेज़ थी।"

किसी ने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने ज़रा ज़ोर से पुकारा—"साक़ी !"

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़कियाँ खोलने लगी। मगर खिड़कियां बाहर से बन्द थी। सलीमा ने विस्मय से मन-ही-मन कहा—"बात क्या है ? लौंडियां सब क्या हुई ?"

वह द्वार की तरफ़ चली । देखा, एक तातारी बांदी नंगी तलवार लिए पहरे पर मुस्तैद खड़ी है । बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया ।

सलीमा ने क्रोध से कहा—"तुम लोग यहाँ क्यों हो ?"

"बादशाह के हुक्म से ।"

"क्या बादशाह आगए ।"

"जी हां ।"

"मुझे इत्तला क्यों नहीं की ।"

"हुक्म नहीं था ।"

"बादशाह कहां हैं ?"

"जीनतमहल के दौलतखाने पर ।"

सलीमा के मन में अभिमान हुआ । उसने कहा—"ठीक है, खूबसूरती की हाट में जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे ? अब ज़ीनतमहल की क़िस्मत खुली ?"

तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही । सलीमा फिर बोली–"मेरी साक़ी कहां है ?"

"क़ैद में ।"

"क्यों ?"

"जहांपनाह का हुक्म था ।"

"उसका क़सूर क्या था ?"

"मैं अर्ज़ नहीं कर सकती ।"

"क़ैदखाने की चाभी मुझे दे, मैं अभी उसे छुड़ाती हूँ ।"

"आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है ।"

"तब क्या मैं भी क़ैद हूँ ?"

"जी हां ।"

सलीमा के आंखों में आंसू भर आए । वह लौटकर मनसद पर पड़ गई, और फूट-फूटकर रोने लगी । कुछ ठहर कर उसने एक ख़त लिखा—

"हुज़ूर ! मेरा कसूर माफ़ फ़र्मावें । दिन-भर की थकी होने से ऐसी बेसुब सो गई कि हुज़ूर के इस्तक़बाल में हाजिर न रह सकी । और मेरी उस प्यारी लौंडी की भी जां बख्शी की जाय । उसने हुज़ूर के दौलतखाने में लौट आने की इत्तला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर बेशक भारी क़ुसूर किया है । मगर वह नई, कमसिन, ग़रीब और दुखिया है ।

कनीज़

सलीमा ।"

ख़िट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह की तबीयत बहुत नासाज़ थी। तमाम हिन्दुस्तान के बादशाह की औरत फाहशा निकले। बादशाह अपनी आंखों से पर पुरुष को उसका मुंह चूमते देख चुके थे। वह ग़ुस्से से तलमला रहे थे, और ग़म गलत करने को अंधाधुंध शराब पी रहे थे। जीनतमहल मौक़ा देखकर सौतियाडाह का बुख़ार निकाल रही थी। तातारी बांदी को देखकर बादशाह ने आग बबूला होकर कहा—"क्या लाई हो ?"

बांदी ने दस्तबस्ता अर्ज की—"खुदाबन्द ! सलीमा बीबी की अर्जी है।"

बादशाह ने ग़ुस्से से होंठ चबाकर कहा—"उससे कहदे कि मर जाय।" इसके बाद ख़त मे एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुंह फेर लिया।

बांदी लौट आई। बादशाह का जबाब सुनकर सलीमा धरती पर बठ गई। उसने बांदी को बाहर जाने का हुक्म दिया और दरवाज़ा बन्द करके फूट-फूटकर रोई। घंटों बीत गए, दिन छिपने लगा। सलीमा ने कहा—"हाय ! बादशाहों की बेगम होना भी बदनसीबी है ! इन्तजारी करते-करते आंख फूट जांय, मिन्नतें करते-करते ज़बान घिस जाय, अदब करते-करते जिस्म के टुकड़े-टुकड़े हो जांय, फिर भी इतनी सी बात पर कि मैं ज़रा सो गई, उनके आने पर जाग न सकी, इतनी सज़ा ? इतनी बेइज्ज़ती ?"

"तब मै बेगम क्या हुई ? जीनत और बांदियां सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? इस बेइज्जती के बाद मुह दिखाने लायक कहां रही ? अब तो मरना ही ठीक है। अफ़सोस मैं किसी गरीब की औरत क्यों न हुई ?"

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व और दृढ़ प्रतिज्ञा के चिन्ह उसके नेत्रों में छा गए। वह सांपनी की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक और खत लिखा—

"दुनिया के मालिक ! आपकी बीबी और कनीज होने की वजह से, मैं आपके हुक्म को मानकर मरती हूं। इतनी बेइज्ज़ती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब है। मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इसकदर नाचीज़ तो न समझना चाहिए कि एक अदना-सी बेवकूफी की इतनी बड़ी सजा दी जाय। मेरा कुसूर तो इतना ही था कि मैं बेखबर सो गई थी। खैर, फिर एक बार हुज़ूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूँ। मैं उस पाक परवरदिगार के पास जाकर अर्ज करूंगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रक्खे।

"सलीमा"

ख़त को इत्र से सुबासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया कि जिससे किसी की उस पर नजर पड़ जाय। इसके बाद उसने जवाहरात की पेटी से एक बहुमूल्य अंगूठी निकाली और कुछ देर तक आंख गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई।

(३)

बादशाह शाम की हवाखोरी को नजर-बाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए, और चिट्ठी पेश करके अर्ज की—"हुजूर गजब हो गया! सलीमा बीबी ने ज़हर खा लिया है, और वह मर रही हैं।"

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए महल में पहुँचे। प्यारी दुलहिन सलीमा ज़मीन में पड़ी है। आंखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से रहा न गया। उन्होंने घबराकर कहा—"हकीम, हकीम को बुलाओ!" कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा, और धीमे स्वरमें कहा—ज़हे किस्मत?"

बादशाह ने नजदीक बैठकर कहा—"सलीमा बादशाह की बेगम होकर तुम्हें यही लाजिम था?"

सलीमा ने कष्ट से कहा—"हुजूर मेरा कुसूर बहुत मामूली था।" बादशाह ने कड़े स्वर से कहा—"बदनसीब! शाही जनानखाने में मर्द को भेष बदलकर रखना मामूली कसूर समझती है? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आंखों देखे को भी झूठ मान लूं?"

जैसे हजारों बिच्छुओं के साथ डंक मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तड़पकर सलीमा ने कहा—"क्या?"

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा—'सच कहो इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था?"

सलीमा ने अचकचा कर पूछा—"कौन जवान?"

बादशाह ने ग़ुस्से से कहा—"जिसे तुम ने साक़ी बनाकर पास रक्खा था?"

सलीमा ने घबराकर—"हैं? क्या वह मर्द है?"

बादशाह—"तो क्या, तुम सचमुच यह बात नही जानती?"

सलीमा के मुंह से निकला—"या खुदा?"

फिर उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे। वह सब मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली—"खाविन्द! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं, इस कसूर की तो यही सज़ा मुनासिब थी। मेरी बदग़ुमानी माफ फर्माई जाय। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूँ मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।"

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा—"तो प्यारी सलीमा तुम बेकसूर ही चली?" बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़ कर अपनी छाती पर रखकर कहा—"मालिक मेरे। जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मज़ा मिल गया। कहा-सुना माफ हो, एक अर्ज लौंडी की मंज़ूर हो।"

बादशाह ने कहा—"जल्दी कहो सलीमा ?"

सलीमा ने साहस से कहा—"उस जवान को माफ कर देना

इसके बाद सलीमा की आंखों से आंसू बह चले, और थोड़ी ही देर में वह ठंडी हो गई।

बादशाह ने घुटनों के बल बैठ कर उसका ललाट चूमा और फिर बालक की तरह रोने लगे।

४

गजब के अंधेरे और सर्दी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था, एकाएक घोर चीत्कार करके किवाड़े खुली। प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहखाने में भर गया—"बदनसीब नौजवान क्या होश-हवास में है ?"

युवक ने तीव्र स्वर से पूछा—"कौन ?"

जवाब मिला—"बादशाह।"

युवक ने कुछ भी अदब किये बिना कहा "यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है—क्यों तशरीफ लाये हैं।

"तुम्हारी कैफियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूँ।"

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा—"सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिये कैफियत देता हूँ, सुनिये-सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं भी उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी, पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा परदे में रहने लगी और फिर वह शाहंशाह की बेगम हुई। मगर मैं उसे भूल न सका। पांच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अन्त में भेष बदलकर बांदी की नौकरी कर ली, सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुजार देने का इरादा था। उस दिन उज्वल चांदनी, सुगंधित पुष्प-राशि, शराब की उत्तेजना और एकांत ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आंचल से उसके मुख का पसीना पोंछा, और मुंह चूम लिया। मैं इतना ही खतावार हूँ। सलीमा इसकी बाबत कुछ नहीं जानती।"

बादशाह कुछ देर चुप-चाप खड़े रहे। इसके बाद वह दरवाजे बन्द किये बिना ही धीरे धीरे चले गये।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गये। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद क़ब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चोकी पर बैठे हुये बादशाह उसी तरह सलीमा की क़ब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसी को पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है, तो उस गम्भीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्म-भेदनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ-साफ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है—

"दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी।"

वियोगी हरि

मोहना

●

रामदीन आज कोई पचीस दिन से पड़ा-पड़ा खटिया से रहा है। ज्वर ऐसा कि टूटने का नाम नहीं लेता। नीम की छाल का काढ़ा उसकी पतोहू और कभी कभी उसकी बुढ़िया रोज सबेरे उबालकर पिला देती है। डाक्टर सेन ने कुनैन पीने को कहा था, और ऊपर से आधसेर दूध ! दूध तो घर के नन्हे-नन्हे बच्चों को भी नहीं जुड़ता। मूंग की दाल के पानी के साथ आधी-चौथाई रूखी-सूखी रोटी ही उसे दूध और पथ्य का काम दे रही है।

फिकर है कि इस लम्बी बीमारी में कही उसकी नौकरी न चली जाय। जमादार यों तो मुट्ठी गरम कर देने से महीनों गैरहाजिर रहनेवालों की भी हाजिरी भर देता है। पर रामदीन ने एक पैसा भी किसी को कभी रिश्वत का नहीं दिया।

काम पर हमेशा वक्त पर गया और मेहनत और ईमानदारी से तीसों दिन नौकरी बजाई।

बड़ा लड़का उसका दक्खिन चला गया था और वहीं बस गया। वहां खासा खाता-कमाता है। पर घर को कभी एक पैसा भी नहीं भेजा। छोटा लड़का सिवदीना इधर कई साल से गृहस्थी चलाने में मदद दे रहा है, और बूढ़े मां-बाप की सेवा भी करता है। सफाई-दरोगा से कह-सुनकर बड़ी मुश्किल से सिवदीना को भैंसे गाड़ी की नौकरी रामदीन ने दिलादी थी। दारोगा वह बड़ा नेक अफसर था।

बीमारी में खटिये पर पड़े-पड़े न जाने कितनी कहां-कहां की बातें याद आती रहती हैं। आज दस साल पहले की वह घटना भी रामदीन को याद हो आई, जब उसने अपनी छोटी पतोहू को काम पर जाने से मना कर दिया था। सिवदीना की बहू एक गांव की लड़की है, जहाँ भंगियों के केवल तीन घर थे, और वे सब-के-सब खेतों पर मजदूरी करते थे। टट्टी-सफाई का काम तो बेचारी ने यहीं शहर में आकर जाना रूप में और स्वभाव में लच्छमी है हरदेई। ब्याह हुए आठ दिन भी नहीं हुए थे कि सास के साथ काम पर जाने लगी। वह दिन रामदीन को याद आ गया, जब हरदेई मैले की बाल्टी सिर पर रखे डलाव को जा रही थी। सवेरे से ही मूसलाधार पानी

पड़ रहा था उस दिन। खुली बाल्टी मुह तक भरी थी, और मैला बह-बहकर उसके घूंघट पर और लंहगे पर गिर रहा था। सुबह से बारह बजेतक बारिस में उसने कोई तीस-पेंतीस टट्टियां साफ की थीं, जो काम अपने मां-बाप के घर उसने कभी नहीं किया था। फिर एक दिन रामदीन ने उसकी सास से सुना कि बड़ी कोठी वाले बाबू लोग उसे पाप की आंख से देखते हैं। उसी दिन से काम पर जाने से उसे मना कर दिया गया। दो-तीन महीने बाद कमेटी में उसकी नौकरी लगवा दी। पर वहां भी जमादार उसे घूर-घूरकर देखने लगा। गरीबों की बहू-बेटियों को भगवान क्यों यह सुन्दर रूप देता है।

सिवदीना की मां ने तो सारी उमर टट्टी-सफाई का ही काम किया है। उसे कभी लगा ही नहीं कि मैला उठाना और मैलाभरी टोकरी कमर या सिर पर रखकर ले जाना कोई बुरा काम है। सारे मोहल्ले में एक भी ऐसा पाखाना नही, जिसमें बाल्टी या मिट्टी का गमला रक्खा हो। बुढ़िया को कच्चे-खुरदरे फर्श पर से टीन के टुकड़े से मैला खरोच-खरोच-कर उठाना पड़ता है। और एक दिन तो जब वह बड़ी कोठी की संडास का मैला उठा रही थी, उसी घड़ी ऊपर से, दूसरे या तीसरे तल्ले से, किसी ने टट्टी फिरदी। पाखाना सारा उसकी पीठ पर पर छितरा गया। बुढ़िया ने इतना ही सुनाकर कहा कि 'मालिक थोड़ा खांस तो दिया करो, जिससे मुझे पता तो चल जाये' पर अपनी पतोहू से टट्टी-सफाई न कराने में बुढ़िया भी सहमत थी। अपने पोते, हरदेई के बेटे को भी, बुढ़िया उस दिन कहती थी, टट्टी-सफाई के काम में नहीं डालूंगी। दक्खिन से चिट्ठी आई थी कि उसके दो पोते तो मदरसे में पढ़ते हैं, और बड़ा दर्जी का काम सीखता है। हरदेई भी अपने बच्चे को पढ़ाना और एकाध दस्कारी का काम सिखाना चाहती है। मोहना दीखता भी बड़ा होनहार है। राजकुमार-सा लगता है देखने में—वृद्ध रामदीन के झुर्रियां-पड़े पीले चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएं खिच आईं।

"मोहना मुझे अभी से होनहार दीखता है, बेटी। पर हम यह कैसे भूल जायें कि मोहना ने एक भंगी के घर में जन्म लिया है--दिन-रात मल-मूत्र में सने रहने वाले एक भंगी के घर में। बेटी, जात के हम भंगी है। लोग हमारी छाया से भी बचते हैं। न उन सबके कुओं पर हम चढ़ सकते हैं, और न होटलवाले अपने प्यालों में हमें चाय पिलाते हैं। मोहना उस दिन, बच्चा ही तो था, 'लच्छमी-होटल' के अन्दर चला गया चाय पीने। एक बाबू ने पहचान लिया उसे कि यह भैंसागाड़ीवाले सिवदीना का लौंडा है। होटल-वाले ने मार-मारकर मोहना को बाहर निकाल दिया। हां, बेटी, हम जात के भंगी हैं। भगवान से भी कभी-कभी भूल हो जाती है, जो तुझ-जैसी लच्छमी को और मोहना-जैसे राजाबेटा को हमारे घर भेज दिया। बजाज हमें हाथ लगाकर कपड़ा नहीं देखने देता, दूर से देखकर ही हमें कपड़ा पसन्द करना पड़ता है और दर्जी

हमारा बदन देखकर दूर से नाप ले लेता है। मोहना को यहां कौन दर्जी का काम सिखायेगा ? अरे हां सीख तो सकता है। जान साहब की दूकान पर उसे लगा दूंगा, वे उसे जरूर दिल से सिखा देंगे। फिर भी बेटी, हम यह न भूल जायें कि मोहना एक भंगी का लड़का है।"धोती के छोर से आंसू पोंछकर चाय पीते-पीते रामदीन ने कहा।

"काका, सच कहते हो तुम। बिरथा ही हमारे घर में मोहना ने आकर जनम लिया। कभी-कभी पूछ उठता है—"अम्मा, मेरे दादा, दादी और बाबूजी पाखानें और गटरें साफ करने का यह गंदा काम क्यों किया करते है ? मैं तो अम्मा, यह काम कभी नहीं करूंगा।" काका, वह किसी के घर की झूठन भी नहीं खाता। मां-बाप के घर पर मैं भी जूठन नहीं खाती थी। पर यहां शहर में आकर यह आदत डालली। पत्तलों पर की बची-खुची जूठन जो हमारी टोकरियों में दूर से लोग फेंक देते हैं, उसीको लाकर हमें खाना पड़ता है, जैसे कि हम कुत्ते हों। काका, ऐसा क्यों !" पूछते हुए हरदेई की आँखें छलछला आई।

"क्योंकि बेटी, हम जात के भंगी हैं। बड़े आदमियों के कुत्ते तो फिर भी हमसे अच्छे हैं, सुखी है।"

"क्या बातें हो रही है ससुर-बहू की आज़ सबेरे सबेरे ? मेरी लच्छमी बहू अपने काका का हमेशा कितना ध्यान रखती है। मैं तो दो घड़ी कभी इनके पास बैठ भी नही पाती।" बूढ़ी सास ने बहू के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा।

"मां, काका का जी रोज से आज कुछ अच्छा है। तुलसी की पत्तियाँ डालकर मैंने एक कटोरी चाय इन्हें अभी-अभी पिलाई है। माँ, अब तुम बैठो काका के पास। मे चली जाऊंगी काम पर आज। काका के लिए खिचड़ी और मोहना के लिए रोटीं आज तुम्हीं बना देना, माँ।"

"ना, बहूरानी तुझ से में वह सब काम नही कराऊंगी, और न कभी अपने मोहना बेटा से ही। मै कितने दिनों से सोचती हूं कि हम लोग भी क्यों न दक्खिन देस़ चले चलें। मोहना वहां पढ़-लिख जायेगा और कोई काम भी सीख लेगा। ठीक है न ?" बुढ़िया ने बड़ी ललक से पूछा।

"ठीक ही है, मोहना की खातिर हमें देश भी छोड़ देना पड़े तो छोड़ देंगे। दक्खिन में कहीं बहुत दूर जाकर हम लोग मेहनत-मजूरी करेंगे और वही मोहना को पढ़ायेंगे और फिर किसी अच्छे उद्दिम में उसे लगा देंगे। फिरभी भूल तो नहीं पायेगा कि वह एक भंगी का लड़का है—भंगी का, जो मल-मूत्र सिर पर उठाकर बाहर फेंकने ले जाता है—भंगी का, जो कुत्ते की तरह सबकी जूठन खाने को मजबूर किया जाता है, भंगी का, जो नीच-से भी नीच जात का समझा जाता है जिसकी छाँह छूने से भी लोग बचते हैं" भंगी का, जिसकी न कही अपनी ज़मीन होती है, न अपनी झोंपड़ी। नहीं भूल पायेगा वह कि बाप उसका भंगी है, और दादा भी भंगी है उसका। पर हाँ, है लड़का होनहार। हो सकता है कि वह उस पत्थर की बनी समाज की आँखें किसी दिन खोलदे, जिसने इन्सान को कुत्ते और सूअर से भी हीन बना डाला है।"

रामचन्द्र शर्मा 'महारथी'

आँखों का मोल

●

रजनी !

हां, प्राणनाथ !

मैं महापापी हूँ। अपनी दुनिया अन्धेरी करके तुम्हारा संसार भी अन्धकारमय बना दिया है। यह कम बुरी बात है ?

जीवन में पहली बार ही आप यह क्या कह रहे हैं, देव ! परन्तु तुम्हारे रूप को जिस प्यार की अपेक्षा थी, वह मैं तुम्हें न दे सका, रजनी ! क्या यह छोटा पाप है?

प्राणेश, नहीं। मैं भारतीय नारी हूँ। आप जो कुछ हैं मेरे आराध्य हैं, मेरे लिये संसार में सब से अधिक दर्शनीय हैं।

यह ठीक है, परन्तु यह सोच रहा हूँ कि मुझे यह क्यों नहीं सूझा कि अन्धे को विवाह करने का कोई अधिकार ही नहीं और फिर तुम्हारा यह स्वर्गीय प्यार !

छोड़ो भी इन बातों को, व्यर्थ ही सोच में पड़ प्राणी दुःख सागर में डूब जाता है, जिसका वार होता है न पार !

रजनी, सचमुच मैंने तुम्हें बन्दी बना लिया है जहां न तुम्हें भोजन मिलता है न प्यार !

भूल है नाथ ? तुम्हें पाकर मुझे सब कुछ ही मिल गया और मैं ···मैं तो अतुल प्रेम में सदा डूबी रहती हूँ।······किन्तु तुम्हारे आंखों में आंसू······तुम रो रहे हो प्राणदेव !

हां, रजनी ! मुझे रोना ही चाहिये। मैंने पाप किया है, कदाचित ये आंसू मेरे पाप को धो सकें।···देखो तो, बाहर कोई द्वार खटखटा रहा है।

अन्दर कौन है ? क्या रात्रि में विश्राम मिलेगा यहां ? एक अपरिचित स्वर रजनी के कानों से टकराया।

कौन है रजनी ?

एक बूढ़ा बटोही हूँ, रैन बसेरा मिलेगा क्या ?

आओ, अतिथिदेव ! अहोभाग्य हमारे, पधारो !

रजनी ! इन्हें साथ वाले कमरे में ठहरा कर कुछ जलपान कराओ ।

\+ + + +

एक अन्धा और एक स्वर्गीय सुन्दरी ! यह कैसा संयोग ? एक ओर भयंकर अन्धकार और प्रेम की बुझी हुई आग और दूसरी ओर सरलता, स्निग्धता और रूप की धधकती ज्वाला ! कैसी विचित्र परिस्थिति है यह····।

तुम तो भोजन भी ले आईं । यह तुम्हारे पतिदेव हैं न ?

समझा । इसमें संकोच की क्या बात है ? भाग्यवान हैं यह, जिन्हें तुम सरीखी मोहनी और लज्जाशील पत्नी मिली है···भला इनकी आंखें कब और कैसे बिगड़ी थीं, यदि मुझे यह पता चल जाय तो यह हो सकता है शायद···!

तो क्या ठीक कर सकेंगे आप ?

हां, यत्न करूंगा । फल भगवान के हाथ है ।

मैं उनसे पूंछती हूँ ।

\+ + + +

आपकी आंखें किस अवस्था में खराब हुई थीं ?

यह बात न पूछो, रजनी ! सुनोगी तो बड़ा दुःख होगा ।

मुझे बता दो न, वे आपकी आंख ठीक कर देंगे ।

सच···?

हां, कहो न ।

रजनी, मैं जन्म से अन्धा नहीं था । यौवन में मेरा चरित्र बिगड़ गया था । मैं तब मदिरा-पान, जुआ, व्यभिचार आदि सब कुछ ही कर लिया करता था । तुम इससे अधिक न जानो···मुझ से घृणा करने लगोगी और····

आप फिर भूल रहे हैं कि मैं ···

भारतीय नारी हो ! पगली कहीं की । कुछ बातें ऐसी भी होती हैं जो बताई नहीं जातीं····!

कहो न स्वामी, बता भी दो न !

उन दिनों मैं एक स्त्री को प्यार करता था । वह अत्यन्त रूपवती थी । अपना सब कुछ मैंने उस पर निछावर कर दिया । परन्तु रजनी, वह जिसे मैं अपनी समझ रहा था, मेरी न थी···। वह कहते-कहते रुक गया ।

और फिर····?

जब मेरा सब ऐश्वर्य नष्ट हो गया, तो एक दिन उसने मुझे मदिरा में कुछ घोल कर पिला दिया । उसके प्रेम में मग्न मैंने झूम-झूम कर पी ली । परन्तु घर पहुँचने पर मेरी आंखों की ज्योति धीरे-धीरे घटने लगी और आज तुम देख रही हो कि मैं निपट अन्धा हूँ ।

ओह ! सब कुछ लूट लेने पर भी आपकी आंखें छीनते उस पापिन को दया न आई ? कितनी अधम स्त्री थी वह···!

इसमें उसका दोष नहीं था रजनी, अपराधी मैं ही था। किसी पर-स्त्री पर प्यार जताना क्या तुम पाप नही समझतीं ?

पुरुषों के लिये नहीं···। उन्हें तो प्रकृति ने खुली छूट दे रखी है। बुरा-भला फल तो नारी को ही भोगना होता है।

रजनी, यह तो निरा बुद्धि का भ्रम है और पाप का मूल।

+ + + +

यह रूखा-सूखा भोजन आप को क्या भाया होगा ? रजनी ने अतिथि से प्रश्न किया।

ऐसा न कहो रजनी ! इतना स्वादिष्ट भोजन और मदभरा यौवन विरले भाग्यवान को ही मिलता है। मैं सचमुच अपनी सारी जानकारी आपके आराध्य की आंखों में लगा दूंगा।

मैं, जीवन भर आपका जस गाऊंगी।

परन्तु आंखें ठीक करने की दक्षिणा तो बहुत अधिक है, रजनी ! दे भी सकोगी ?

डाक्टर, हमारे पास जो कुछ भी है वह तुम ले लो। यह घर, यह वाटिका, यह सामान सब कुछ तुम्हारा होगा। बस, मेरे स्वामी की आंखें बना दो जिससे वह मुझे देख सकें।

परन्तु मुझे घर, वाटिका, सामान, रुपया, पैसा कुछ भी नहीं चाहिये। समझी! ···तुम तो किसी गहरी चिन्ता में डूब गई।

हां,····आँ ··

न जाने तुम कौन से लोक से बोल रही हो, रजनी !···अच्छा आज के भोजन, आज के भोजन के लिये अनेक धन्यवाद ! मैं एक सप्ताह पीछे फिर आऊंगा, सब सामान साथ लेकर और तुम्हारे स्वामी को ठीक कर दूंगा !

अच्छा ··!

तो यह श्वेत-वर्ण का नन्हा-सा फूल इस प्रथम मिलन की भेंट स्वीकार करो।

+ + + +

रजनी, मुझे लगता है कि तुम कल से उदास हो, क्या ठीक है यह बात ? पति ने अपने निकट बिठाते हुए कहा।

नहीं तो। आपने कैसे जाना ?

यूं ही·······मेरे नेत्र नहीं हैं, तो भी मेरे आस-पास जो कुछ होता है, वह सब कुछ मैं समझ सकता हूँ। तुम उदास हो। क्यों, कहो ?

कुछ भी तो नहीं है, कैसी बात कर रहे हैं आप ?

यह झूठी हंसी हंस कर मुझे मत भरमाओ, तुम्हें मेरी सौगन्ध है। बताओ, आज तुम मुस्कराती क्यों नहीं ? वह प्यार की बातें वह चहल-पहल क्या हुई···तुम्हारी चुप्पी मैं नहीं सह सकता। कह डालो रजनी। मैंने तुम्हें अपनी सौगन्ध दिलाई है।

कल वह डाक्टर आया था न ?

हाँ, तो ?

वह आपकी आंखें ठीक कर देगा, परन्तु······

परन्तु क्या ? तुम नहीं चाहती कि मेरी आंखें ठीक हो जायें ?

ऐसी भी सोच सकते हैं, आप ? वह दक्षिणा बहुत मांगता है।

भला कितनी ?

बहुत····बहुत अधिक ?

तो चिन्ता क्या है। मेरी आंखें ठीक हो जायेंगी तो सब कुछ चुका दूंगा··· ऐसा लगता है कि तुम कुछ कहना चाह रही हो, पर कह नहीं पा रही हो।

वह रुपया नहीं मांगता।

रुपया-पैसा नहीं तो घर-द्वार ?

नहीं, मकान भी नही।

तुम तो पहेली बुझा रही हो। मकान नहीं तो वाटिका ?

नहीं, वह भी तो नहीं।

तो फिर ऐसी क्या वस्तु वह मांगता है ?

न जाने क्या ? मैं आप अचरज में हूं।

तो उसने कुछ मांगा भी, मुंह से कुछ कहा भी···?

···नहीं, उसने मुंह से कुछ नहीं मांगा।

समझा !!!

भीत का सहारा लेते हुए अन्धा कमरे में जाकर मन ही मन सोचने लगा—

रजनी ! डाक्टर ने जो कुछ तुम से मांगा है, मेरे नेत्रों में ज्योति लाने के लिये उसे तुम वह दे दोगी ? तुम क्यों मेरे पाप का बोझ बढ़ाती हो ? परन्तु मैं अन्धा हूं, तुम्हें क्या कह सकता हूँ। आंखें होते हुए मैं अपना पाप नहीं रोक सका, अन्धा होने से तुम्हारा पाप कैसे रोक सकूंगा ? परन्तु रजनी, मुझे ऐसी आंखों की अपेक्षा नहीं·· जिनके लिये तुम्हें अपना आपा खो देना पड़े। हे भगवान, निर्धनता भी कितना पाप है !! निर्धन होते हुए भी सुन्दर होना उससे भी अधिक और सुन्दर होकर बलहीन होना तो एकदम अक्षम्य है···!!!

उसने सोचा—

मैंने उनसे यह सब बात कह ही क्यों दी ? उनके आंखें नहीं तो क्या, उनके

हृदय में प्रकाश तो है ही । मैं भी कितनी नीच हूँ, जो अपने पति से विश्वासघात करने की बात सोचती हूँ ! वह वस्तु जिस पर उनका मात्र अधिकार है, पर-पुरुष को दे दूंगी···! यह सब क्या मैं कर सकूंगी ? और यदि कर सकी तो फिर क्या उनके मन में अब के समान प्रेम का सागर लहरें मारता देख सकूंगी ? क्या वह स्वाभाविक निश्छल प्रेम जो उनकी आंखों में मिल रहा है, उनके खुलने पर मिल सकेगा ? मैं उसकी अधिकारिणी भी तो नहीं रह जाऊंगी । मेरी आत्मा मुझे वह आनन्द कैसे लेने देगी ? मेरे मन में सदैव एक चोर बैठा रहेगा । यह तो जघन्य पाप होगा । परन्तु अपने प्राणेश्वर के लिये क्या मुझे बलिदान नहीं करना चाहिये ? इतना भी जो स्त्री न कर सके, क्या वह नारी कहला सकी है ?

ओफ ! मुझे यह क्या मालूम था कि प्रभा····

प्रभा ने तो हमारी नाक ही कटवा दी····अब हम समाज और जाति में मुंह दिखाने योग्य भी नहीं रह गये···परन्तु इस प्रकार गुमसुम बैठने से क्या होगा ? आपने कभी मेरी सुनी ही नहीं । मैंने कहा ही नहीं था कि विदेशी ढंग की शिक्षा का लड़कियों पर विशेष बुरा प्रभाव पड़ता है । कोमलता, मृदुता, सरलता, लज्जा, संकोच और मर्यादा आदि जो स्त्री स्वभाव के आभूषण हैं, वे देवताओं से भी श्रेष्ठ नर-रत्न समाज को भेंट करने में नारी के काम आते हैं । इन सब का इस शिक्षा में कोई स्थान ही नहीं वरन इन्हें नष्ट करना इसका पहला काम है ।

हां, देवी ! तुम यह ठीक ही कहती हो । यदि मै यह जानता होता तो पहिले दिन ही एक साधारण सी औषधि से इस कलकिनी का अन्त कर देता और आज यह दिन न देखना पड़ता ।

ओह मेरे भगवान !

हां, सचमुच जो लड़की वंश की लाज लुटा कर पर-पुरुष से प्रेम करे, उसका अन्त कर देने में सब का ही भला है । उसका जीता रहना अपकीर्ति की ज्वाला जलाये रखना है ।

क्यों नहीं, आप पुरुष जो ठहरे । भला इसमें बिचारी प्रभा का क्या दोष ? अपराधी तो वह कालिज का छोकरा है, जिसने····?

स्त्रियों की मति तो गुद्दी के पीछे होती है । तुम यह नहीं सोचती, यदि प्रभा उसे बढ़ावा न देती, तो उस नीच के पुरखे भी लड़की की ओर आंख उठा कर नहीं देख सकते थे, प्रेम व्यापार तो बहुत बड़ी बात है । तुम ही तो सतियों की महिमा बखाना करती हो !

कारण भले ही कुछ न हो, अब यह स्थान छोड़ कर कहीं अन्यत्र जाने में ही निस्तारा है ।

परन्तु कहां और कब तक के लिये ?

दूर···बहुत दूर, जहां कोई जान-पहचान न हो और न ही लौटना होगा—जब तक यह आग बुझ न जाये—यह अपयश की भड़की हुई आग !

हां, ऐसा ही करना होगा। कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं सूझता !

+ + + +

दूसरे दिन जब नौकर-चाकर और घर वाली सब सामान लदवाने में जुटे थे, तो डाक्टर एक ओर बैठा सोच रहा था—

संसार भी कैसा विचित्र है ! पुरुष को तो कोई कुछ कहता भी नहीं, सब स्त्री पर ही अकड़ते हैं। यह ठीक है कि स्त्री माया रूप है और सृजनहार का क्षेत्र। उसे दूषित करने वाला घोर अपराधी है, परन्तु पुरुष भी कितना नींच, पतित, दुराचारी, स्वार्थी, दूसरों की लाज का चोर, चार दिन के रूप का उपासक, सफेद चमड़ी पर पागल, पामर कुत्ता सिद्ध हो सकता है।

मैं ही कितना अधम हूं। यौवन का भर पेट आनन्द लेकर बूढ़ेपन में आ गया हूं, फिर भी वासना का दास, पापी, दुराचारी ! उस बिचारी ने रात्रि में ठहरने को स्थान दिया, बड़ी श्रद्धा से भोजन खिलाया और मैंने उससे कहा—तुम दक्षिणा दे भी सकोगी ? ओह, नीच डाक्टर ! रजनी, तुम देवी हो ! मैंने पाप किया है। तुम्हारा पति-प्रेम और पति-भक्ति से भरा दिल मैंने अपने एक कुत्सित शब्द से तोड़ डाला—मुझे क्षमा करो देवी ! मेरे वे बोल भूल जाओ, मैं तो बाहर की आंखें ठीक करता था परन्तु तुमने मेरे हिये की आँखें खोल दी हैं ! तुम्हें मेरा नमस्कार है।

+ + + +

रजनी, बाहर कोई द्वार खटखटा रहा है, देखो तो !

तुम सकुचा कर पीछे क्यों हट गईं ?

स्वामी भीतर हैं।

कौन है रजनी ?

श्रीमन, नमस्कार !

कौन ? कौन हो, भाई ?

डाक्टर !

अच्छा···!

मैं सब सामान साथ लेकर आया हूँ, आप की आंखें आज ही ठीक करना चाहता हूँ।

आप चुप क्यों हो गये ? आप को तो प्रसन्न होना चाहिये।

नहीं-नहीं, मुझे आंखें नहीं बनवानी हैं, डाक्टर !

आंखें नहीं बनवायेंगे आप, क्यों ?

मन नहीं कहता।

रजनी बेटी !

बेटी ?

बेटी, स्वामी कहते हैं कि आंखें नहीं बनवायेंगे। इसका कारण ?

डाक्टर ! अब बनवाऊंगा···मैं अपनी आंखें अवश्य बनवाऊंगा !

रजनी बेटी, यह फूल तुम्हारे पास शोभा नहीं देता। यह मुझे दे दो !

क्या है रजनी ?

डाक्टर की दक्षिणा और पिता की भेंट—जो निर्धन बेटी उन्हें दे सकती है !

जैनेन्द्र कुमार

इनाम

●

कस्बे क हाई स्कूल के हाते में लड़के इधर-से-उधर घूम रहे हैं। चहल-पहल है उत्साह है, क्योंकि नतीजा निकलने वाला है। देर सही नहीं जा रही है और कमरों के अन्दर बंद बैठे बड़े मास्टर लोग मानो खास इसी लिये देर लगा रहे हैं। आखिर नतीजा निकला। चपरासी के लिये मुश्किल हुई कि वह कागज़ को बोर्ड पर कैसे चिपकाए। छीन-झपट, खींच-तान में पता न चला कि चपरासी बचेगा कि नहीं। लेकिन चपरासी की मौत न आई और कागज़ भी साबित रहा। लड़के नतीजा देखते, ज़रा गौर से देखते, देख कर फिर लौट जाते। ऐसे क्रमश: हल्ला-गुल्ला कम हुआ—और तब अलग-थलग-सा एक लड़का, कठिनाई से दस बरस का होगा, धीमे से आगे बढ़ा और बोर्ड के सामने आ खड़ा हुआ। उसने स्थिरता से कागज़ देखा, अपने नाम के आगे के मार्क्स देखने के साथ उसने आस-पास के नाम देखे। वह कुछ देर मानों वहाँ जमा खड़ा रहा, फिर हटा, और धीमी चाल से चल दिया।

उसका नाम धनंजय है। इस नतीजे ने बताया है कि वह सातवें में अव्वल आया है और आठवें दर्जे में चढ़ा है।

धनंजय तेज़ चाल से चलता हुआ घर आया और कहा, "अम्मा! मैं पास हो गया हूँ।"

उसकी माँ काम में लगी थी और अनमनी थी! वह ऐसे ही रहा करती है। एक बार तो उसने जैसे सुना नहीं।

हठात् अपने उत्साह को उठाते हुये धनंजय ने कहा, "हां, माँ, और अव्वल हूं अपनी सारी क्लास में।"

पर माँ में उत्साह न था। उसने कहा, 'अच्छा' पर अपने हाथ काम से वह खींच न सकी। धनंजय ठिटका सा हो रहा। जैसे उसका अव्वल आना सही न हो, या उसका खुश होना गलत हो।

सहसा कुछ याद करके माँ ने कहा, "तो ले कुछ खा ले। सवेरे ही चला गया, बिन कुछ खाये-पिये। सुना ही नहीं, हां तो अब आया है नौ बजे!"

धनंजय ने पूछा, "पिता जी गये ?"

"मैं क्या जानूं ? गये होंगे।"

धनंजय उत्तर के स्वर पर अस्त होने लगा। लेकिन फर्स्ट आना छोटी बात न थी। बोला, "जल्दी चले गये आज, मैं तो आया था कि—"

मां ने कहा, "हाँ-हाँ निहाल करके रख देते वह तो। ले बैठ।"

धनंजय को बात समझ न आई। पर आये रोज़ यह देखता है और समझने की चेष्टा छोड़ चुका है। ऐसे अनसमझे ही समझदार होता जा रहा है। माँ की झिड़की पर वह चुपचाप हो बैठा। और जो उसके सामने खाने को रख दिया गया, खाने लगा, खाते-खाते हठात् वह अन्यमनस्क हो आया। दर्जे मे पहले नम्बर आना और कुल दस वर्ष की अवस्था में आठवें में चढ़ जाना—इस सब कारगुज़ारी की बहादुरी और खुशी उसमें लुप्त हो गई। उसे अजब सा लग आया। उसे अपने बाप के प्रति सहानुभूति हुई। उसके मन में चित्र उठ आया कि कैसे जल्दी में कोट डाल कर छतरी लेकर खिझे से पिता जी दफ्तर के लिये चल पड़े होंगे। वह खाता रहा और अपने पिता को जाते हुए देखता रहा। सहसा उस सूने में से उसके पिता जी मिट गये, और उस जगह पर माता जी आ गईं। बोलीं, "और लेगा ?"

"नहीं।"

"तो अच्छा, बैठ के अब पढ़। बाहर आना-जाना नहीं, जो ऊधम मचाने निकल जाये।"

बालक ने सुन लिया और एक क्षण को मां की ओर देखता रहा। फिर आंखें नीचे की, कर्त्तव्यपूर्वक खाने के बर्तनों को सामने से उठाया और उन्हें यथास्थान रखने को बढ़ा। मां देखती रही। यह लड़का उसकी समझ से बाहर हुआ जा रहा है। कभी लड़के जैसा रहता ही नहीं, मानो एक दम सयाना बुज़ुर्ग हो। तब वह डर जाती है, जैसे अपने पर पछतावा हो। और उस समय उस बुज़ुर्ग से बात छेड़ने का कोई उपाय भी नहीं रह जाता। उसमें सहसा मातृ-भावना उमड़ती है। पर उसे प्रकाशन का कोई अवकाश नहीं मिल पाता। परिणामतः उठी सहानुभूति रोष बन आती है।

माँ एकाएक बोली "क्यों, मेरे हाथ टूट गये हैं क्या, कि लाडले साहब बर्तन उठा कर चले ! सुन ले, यह मेरे यहां नहीं चलेगा। ये नखरे दिखाना अपने बाप को !"

बालक, धीर—गम्भीर, अपने बर्तन रख कर लौटा, तौलिये से मुंह पोंछा और बिना एक शब्द बोले छोटी-सी मेज़ के पास पड़ी कुर्सी पर ऐसे आन बैठा जैसे कुछ हुआ न हो।

मां के लिये कुछ न रहा। बालक पर फूटती तो कैसे ? अपने को ही झिझोड़-ती तो कैसे ? इससे झीखती हुई वह वहाँ से अलग चली गई और जाकर काया को एक-दम काम में झोंक दिया। वेग से वह काम में जुट गई। उसके पास एक यही उपाय है : काम, काम, काम। ऐसे अपने मन का पता लेने की उसे जरूरत नहीं, मानो बाहर सब सुन्न हो आता है और वह खुद काम में फंस कर शान्त बनी रहती है।

काम के बीच में उसने सुना धनंजय कह रहा है, "मैं जा रहा हूँ—"

सुनकर मां की हठीली शान्ति में एकाएक आग लग गई! दहाड़कर बोली, "नहीं।"

पर बालक मानो बहरा हो, उसने सुना ही न हो। वह द्वार की ओर बढ़ा। तभी बिजली की तेज़ी से माँ ने लपक कर उसे बाँह से पकड़ा। कहा, "जाता कहां है। आ, आज तेरी हड्डी पसली ही तोड़ कर रख दूं।"

बालक ने प्रतिरोध नहीं किया। मां ने भी मारा नहीं, खींचते हुए उसे अन्दर ले जाकर खाट पर पटक दिया, और कहा, "मुझे तूने क्या समझ रक्खा है ? मैं घर की कहारन हूँ। एक बार जब कह दिया कि बाहर नहीं जाना है तो तुझे हिम्मत कैसे हुई उठने की।'

खाट पर स्वस्थ भाव से नीचे लटके पैरों को हिलाते हुए बालक ने कहा, "मुझे काम है।"

"काम है।" माँ ने कहा, "बताऊं, अभी तुझे काम !"

लेकिन अपनी धमकी से मां को सन्तोष न हुआ। कारण, बालक सामने पूरी तरह स्वस्थ और सौम्य मालूम होता था। उस की देह को रोष का आवेग प्रचंड रूप से झकझोर गया। विस्मय यही था कि वह खड़ी कैसे रह सकी। बालक किंचिद मुस्करा कर शान्त भाव से बोला, "अव्वल आने की सब को मिठाई देनी है। पिता जी ने कहा था—"

"पिता जी ने कहा था। आये बड़े पिता जी ! मिठाई खिलाएंगे, घर वालों को पहिले रोटी तो खिला लें ! यों बस लुटाना आता है ! नहीं, कोई नहीं। बैठ यहीं कोने में और अपना काम देख।"

बालक चुपचाप पर लटकाये बैठा माँ को देखता रहा, बोला नहीं। माँ क्षण भर उसे देखती रही। वह अपने को समझ न पा रही थी। इस लड़के पर उसे गर्व था। यह दुनिया में उसी का बेटा है। उस का अपना बेटा है। अव्वल आया है। आयेगा क्यों नहीं, मेरा जो बेटा है। बोली, "खबरदार जो हिला। टाँग तोड़ कर

रख दूंगी, जो कुछ समझता हो।" कह कर वह कमरे से बाहर होने को मुड़ी, कि डग बढ़ता-बढ़ता रुका रह गया। एक बिजली सी भीतर कौंध गई। वह ठिठकी। उसकी आंखें फैलीं, पूछा, "सच बता, वहीं जा रहा था ?"

बालक जैसे प्रश्न को समझ न सका, वह विस्मय में चुप रह गया।

बोली, "सब समझती हूं, वहीं जा रहा होगा। कह गये होंगे चुपके से कि.... आने दो अब की उन्हें।"

बालक चुप रहा।

माँ ने कहा, "बोलता क्यों नहीं है ? वहीं न मिठाई पहुँचाने जा रहा था ?"

बालक ने ढीठ भाव से माँ की आंखों में देखते हुए कहा, "हां, वहीं जा रहा था।"

मां सुन कर सन्न रह गई, फिर उसका अपने पर बस न रहा, उसका हाथ छूट पड़ा और बच्चे की उसने वहीं खासी मरम्मत कर डाली। बच्चा पिटता रहा, मगर रोया नहीं। रोया नहीं, इससे माँ भी अपनी मार जल्दी न ख़त्म कर सकी। अन्त मे थकना हुआ और मां बालक को खाट पर औंधा पड़ा छोड़ लौट आई।

सोचने लगी कि यही उसका भाग्य है। घर में एक वह है और उसका काम। काम ही एक संगी है। एक रोज इसी में मर जाना है। बाकी तो सब बैरी हैं। मुझे तो मौत आ जाय तो भला ! एक वह हैं कि सवेरे छाता उठाया और चल दिये और शाम को आये कि सब-किया मिले। एक मैं करूं और मैं ही मरूं। और मरने को मैं, मौज करने को चाहे कोई दूसरी...और एक यह है कम्बख़्त ! मुझे तो गिनता ही नहीं, बस सदा उनके कहने में। घर क्या जेल है। एक उसने बांध रखा है। नहीं तो जहां होता चली जाती, मगर यहां का मुंह न देखती; न दाना लेती न पानी। पर यह छोकरा ऐसा बेहया है कि...

सोचती जाती और करती जाती थी। हाथ काम पर तनिक भी शिथिल न पड़ पाते थे। सफाई उसने अतिरिक्त कर डाली। व्यवस्था और व्यवस्थित हो गई। तो भी समय का अन्त आ गया। यह उसे अच्छा न लगता था, खालीपन उसे काटता था। विश्राम मानों उसे नरक हो आता था। पर हाथ के लिए काम कुछ न रह गया था। ऐसे में वह अन्दर गई। देखा बालक पड़ा सो रहा है। उसे पहले अचरज हुआ। मानो याद करके उसने जाना कि यह तो पिट कर सोया है। वह कुछ देर खाट के पास खड़ी अपने इस अबोध शिशु को देखती रह गई। उसमें अनुपात उमड़ा। उसके मन में अपने इस लाडले के लिये प्यार भर आने लगा। देखो कि घर में होकर भी अनाथ-सा रहता है। मैं जब हुआ झिड़कती रहती हूँ। उन्हें ! सो उनको कहाँ

ध्यान है अपना या किसी का ! वह आहिस्ता से अपने छौने के पास आन बैठी। फर हौले से उसके गाल के नीचे अपनी हथेली देकर चेहरा ऊपर उठाते हुये बोली, "बेटे !"

बालक ने आंख खोली, जैसे उसे पहिचानने में कुछ देर लगी हो, फिर उसे माँ का प्यार बहुत अच्छा लगा। जैसे कब से छूट गया हो, और अब मुद्दत बाद मिला हो। उसने फिर आँख मींची और अपने को उस प्यार में अवश छोड़ दिया। बालक की दोनों कनपटियों को हाथ में लेकर मां बोली, "आँख खोल बेटे, क्या इनाम लेगा माँ से, बता ?"

बेटा विह्वल हुआ पड़ा रहा, उसने कुछ बताया नहीं। माँ ने कहा, "दो रुपये लेगा ? अच्छा चल पांच रुपये, उठ !"

इतने में ध्वनि आई, "ओ हो, आज तो यह बड़े प्यार हो रहे हैं, !" साथ ही बालक के पिता ने एक खूंटी से छाता लटकाया। और कोट के बटन खोलने शुरू किये।

बालक की माँ फौरन उठ गई, चेहरा खिच आया। ओठ बन्द हो गये, और वह तेजी से बाहर जाने को हुई। बालक झपट कर उठ बैठा। बोला, "पिता जी, मैं क्लास में फर्स्ट आया हूँ।"

पिता बोले, "ओह, तभी तो कहूँ कि पांच रुपये किस बात का इनाम है।"

मां बोली, "कैसे पांच रुपये, आसमान से आजाएंगे। लाके दिया है तुमने इस महीने में ? घर में तो मैं हूँ, रुपये होंगे किसी और के लिये।'

"अच्छा, अच्छा," पिता बोले, "बोल क्या इनाम लेगा ?"

बालक सोचता रह गया। बोला, "आप देंगे ?"

पिता बोले, "कैसी पागल की-सी बात करता है। रे, देंगे नहीं तो क्या यों ही। सौ लड़कों में अव्वल आना क्या हंसी खेल है !"

माँ बोली, "ला रे मेरे पाँच रुपये।" और बच्चे के हाथ से अपना पांच का नोट ले वह झपट कर चौके में चली गई।

उसी समय जीने पर चप्पलों की आहट हुई, और प्रमिला ने प्रवेश किया। हाथ में उसके रुमाल से ढकी तश्तरी थी। बालक उसे देखते ही उछाह से उसकी ओर दौड़ा प्रमिला बोली, "सबर तो कर, तेरे ही लिये तो यह लाई हूँ। क्यों रे, कहा भी नहीं, और अव्वल आ गया।"

बालक के पिता ने कहा, 'प्रमिला,' और मानो आस-पास देखने लगे कि पत्नी कहाँ हैं। पत्नी आहट पर हाथ का सब काम छोड़ जीने की ओर आंख लगा रही थी, और यद्यपि चौके से नहीं निकली थी, पर अन्दर कोने की खिड़की से सब-कुछ निगाह में रखने का प्रयत्न कर रही थी। जैसे अपने पर उसे बस न हो। चाहती हो न दीखे

और देखे, उसके प्यार में आई इस प्रमिला को और उसके आने पर उसके घर वालों के चेहरों पर सहसा उमड़ आए उत्साह को ओट में ही रहने दे, पर यह उससे न बना। जाने कैसी मुद्रा से खिड़की के पीछे से कोने में खड़ी वह उसी ओर आंख गड़ाए रही।

प्रमिला के गले से लगे-लगे अपनी जगह आते हुए बालक को सहसा माँ के चेहरे की झलक दीख गई।

प्रमिला ने कहा, "यह ले, बता और क्या इनाम लेगा।"

"माँगूंगा तो दोगी?"

"हाँ दूंगी, पर तू बदमाश है, मुझी को न माँग लेना।"

"बुरा तो न मानोगी?"

"सुनो, पगले की बातें, इसका में बुरा मानूंगी।"

बालक ने प्रमिला को पास बिठा लिया। उसके गले में हाथ डाल कर वह बोला, "देखो टालना मत, मेरा इनाम यह है कि इस घर में तुम अब से कभी न आना, तुम मुझे प्यार करती हो न?"

पिता बोले, "यह क्या बकवास है, मुन्ने।"

मुन्ने ने कहा, "आप भी तो इनाम देंगे, यही दीजिये कि इन से कभी न मिलिये।"

पिता और प्रमिला कुछ समझें कि झपटती हुई माँ आई, बालक को गोद में उठा कर बोली, "हाथ क्यों बन्द किये हो? खोल कर आगे क्यों नहीं कर देते, दस का नोट। मुट्ठी में नाहक मुड़ रहा होगा। और प्रमिला बड़े दिनों में आई हो, बैठो, तुम भी चखो न यह खुशी की मिठाई!"

बालक ने सबको देखा। मानो मैल धुल गया, क्षण का ही सही, पर क्या क्षण सत्य नहीं होता?

नरोत्तम नागर

वे दिन और वे जन

●

सन् तीस की बात है। पुलिस इस पर अड़ी थी कि न वह जलूस निकालने देगी, न किसी को कचहरी, किसी सार्वजनिक इमारत, अथवा खुली सड़क पर ही झंडा फहराने देगी। लेकिन युवकों और युवतियों के दल, बूंद-बूंद करके गली-मुहल्लों और ओनो-कोनों से निकलते, देखते न देखते बाढ़ का रूप धारण कर लेते, पुलिस रास्ता छेकती तो लोहे की दीवार बन जाते, और नारों से आकाश गुंजा देते।

"पेशावर के शहीद जिंदाबाद ! गढ़वाली सैनिक जिंदाबाद !"

स्त्रियों के कण्ठ से आवाज आती :

"टोडी बच्चा हाय हाय ! पेट के गुलाम हाय हाय !"

उस दिन जाने किस सनक में आकर, शशि भी घर से बाहर निकल आया, और जलूस की बाढ़ के साथ उसी तरह वह चला जैसे पानी के साथ तिनका बहता है।

अन्त में हुआ यह कि सत्याग्रहियों की एक भारी खेप के साथ वह भी जेल पहुँच गया। यह बात दूसरी है कि बाद में, सिर पर गांधी टोपी लगा कर और बगल में पालीटिकल सफरर का सर्टीफिकेट लेकर, उसने जितना पाया और कमाया उतना उन लोगों ने नहीं जिनका सारा जीवन भारत-माता के आंगन में एड़ियां रगड़ते बीता था। खुद शशि भी नहीं जानता था कि उसकी यह आकस्मिक गिरफ़्तारी एक दिन इस तरह सोने की मुर्गी सिद्ध होगी।

लेकिन यह तो बाद की—और शायद अपने-अपने खद्दर पोश भाग्य की—बात है। यहां हमें इसका नहीं, जेल-जीवन का ही जिक्र करना है।

जेल में राजनीतिक कैदियों को सब खिलाफती कहते थे। सन् बीस के खिलाफती आन्दोलन की याद, जेल की ऊंची दीवारों के भीतर, अभी तक सुरक्षित थी।

जेल में सभी काम वक्त पर होता था, नाश्ता वक्त पर, दोपहर का भोजन के बाद विश्राम वक्त पर। विश्राम के समय किसी भी कैदी को बाहर नहीं रहने दिया जाता। सब को बैरक में बंद कर दिया जाता। बैरक में क़ब्र-नुमा, डेढ़ फुट चौड़े और

पांच फुट लंबे, चबूतरे बने थे। उन्हीं पर मूंज का पट्टा बिछा कर कैदी विश्राम करते, या बैठ कर गप्पें हांकते। चार बजे विश्राम का समय खत्म होता, और उन्हें बाहर खदेड़ दिया जाता।

समय की पाबन्दी का सबसे अजीब दृश्य प्रस्तुत होता सुबह के समय, जब कैदी शौच जाते। जेल का शौचालय भी खूब था। कैदी आमने-सामने कदमचों पर बैठते थे। बीच में गज-भर ऊंचा परदा या पार्टीशन था। अगल-बगल से खुला। कुछ कैदी मेहतर के काम पर नियुक्त थे। वे अगल-बगल के गलियारे में घूमते और प्रत्येक कैदी को दो मिनट से ज्यादा नहीं बैठने देते। जरा भी देर हो जाती तो कहते :

"अबे, उठता है कि टांग पकड़ कर......?"

लेकिन खिलाफती कैदियों के साथ वे अधिक रियायत बरतते,—अर्थात उन्हें एक-दो मिनट और ज्यादा दे देते।

कैदियों में एक बूढ़ा था। आयु सत्तर-पिछत्तर से कम न होगी। कमर झुककर एक दम दोहरी हो गई थी, और आँखों से कम दीखता था। जेल में आने से पहले वह देहात में मंदिर का पुजारी था। उसकी शिव-भक्ति जेल में भी कम नहीं हुई थी। मिट्टी की एक पिंडीसी, बनाकर उसने नीम के पेड़ की जड़ में रख छोड़ी थी, और रोज उसे जल चढ़ाता था।

"बाबा, तुम यहां कैसे आये ?" शशि ने एक दिन पूछा।

"कर्मों का भोग है, बेटा !" बाबा ने उत्तर दिया।

बाद में मालूम हुआ कि किसी विधवा स्त्री को जहर देकर मारने के अपराध में पकड़ कर उन्हें जेल में बंद किया गया है।

जेल में एक और कैदी था जिसे सब हनुमान कहते थे। उसका हनुमानपन इस बात में था कि वह एक साथ चालीस रोटी खाता था। बैरक के प्रायः सभी कैदी अपने राशन में से उसे कुछ-न-कुछ देते थे।

चालीस रोटियों का ढेर लगाकर जब वह खाने बैठता तो ऐसा मालूम होता मानो देश की समूची भूख उसी के पेट में आकर समा गई हो !

उसके जेल में आने का मुख्य कारण भी यही था—इतनी बड़ी भूख लेकर अत्यन्त गरीब घर में वह पैदा हुआ था और भूख को शान्त करने के अनेक सफल-असफल प्रयोग करने के बाद, अन्त में, इस बड़े घर में उसने शरण ली थी।

चालीस रोटियों से अपने पेट की टंकी भरने के बाद रात को वह दो घंटे तक खूब दण्ड-बैठक लगाता। इससे रोटियां भी हज्म हो जाती, और शरीर भी बनता। थककर फिर इतनी गहरी नींद सोता कि चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाय, उसकी नींद कभी न टूटती।

और उदयसिंह तो जैसे कैदियों का, बल्कि कहिए कि जेल का, बादशाह था। वह तीन साल से हवालात में था। चालीस डकैतियों के उस पर मुकदमे थे जिनमें अड़तीस से वह बरी हो चुका था।

अनेक कहानियां उसके बारे में प्रचलित थी। कोई कहता था कि उसने मेम से शादी की है। कुछ का कहना था कि उसका बाप अंग्रेज़ था और मां किसी रियासत की रानी। जो हो, उसकी बातचीत का शाही अन्दाज देखते ही बनता था। बड़े-बड़े मातबर लोग उसके मुकदमे में गवाही देने आते थे। अंग्रेजी फर्मों से उसका रब्त-जब्त था। पुलिस कहती थी कि अमुक स्थान पर अमुक दिन उसने डाका डाला, लेकिन उसके मातबर गवाह प्रमाण पेश करते कि नहीं, अमुक दिन वह हमारे यहां मौजूद था, डकैती उसने नहीं, किसी और ने की होगी।

साँचे में ढला हुआ बदन, तपे तांबे-सा रंग, मझोला कद, अनेक स्थानों पर गोलियों से बिंधा शरीर जिस पर वह सप्ताह मे दो बार मालिश कराता था। जेल के अस्पताल में वैसलीन का सारा स्टाक दो ही जगह खर्च होता था,–आधा तो उसके बदन पर, और आधा उस बैरक में जिस में कांग्रेसी नेता बंद थे।

पुलिस अधिकारियो का वह इस प्रकार जिक्र करता मानो वे उसके हाथ की कठपुतलिया हों। कहता—"इनके हौसले तो देखो, मुझे सजा दिलाने के सपने देखते हैं। क्या यह किसी से छिपा है कि सौ मे से निन्नयानवे चोरी-डकैतिया इन्ही की साठ-गांठ से होती हैं!"

उसे अपने पेशे पर गर्व था और अन्य कैदियो को, खिलाफितयो को छोड़कर,– घृणा की दृष्टि से देखता था। कहता था :

"इन गिरहकटों ने हमारे पेशे को बदनाम कर रखा है।"

"गिरहकटों' की जगह कभी-कभी वह 'चरकटों' शब्द भी इस्तेमाल करता। जिन लोगों की वह अब तक हत्या कर चुका था, उनमे पुलिस-अफसरों की संख्या सबसे ज्यादा थी।

स्त्रियों की वह बेहद इज्जत करता था। उसके अपने दल का साथी हो या कोई और जब भी कोई स्त्री पर हाथ डालता था तो वह उसे कड़ी सजा देता था।

एक दिन की बात है। वह और उसके कुछ साथी जंगल के बीच से गुजर रहे थे। सांझ का झुटपुटा गहरा हो चला था। तभी एक तांगे के आने की आवाज़ सुनायी दी। तांगा निकट आया तो उसे रोक लिया। तांगे में एक तो पुलिस का दारोगा था, दूसरे एक स्त्री थी जो पतुरिया मालूम होती थी। दारोगा को खींच कर नीचे उतार

लिया और उसकी मुश्कें कस दी। इसके बाद अपने साथियों को अलग कर खुद उदय-सिंह उस स्त्री के पास पहुँचा, और दियासलाई जलाकर देखा।

"क्या बताऊं" उदयसिंह ने कहा—"ससुरी बर है रही थी !"

सोने के गहनों से वह इतनी लदी थी कि देखने में पीली बर का छत्ता मालूम होती थी।

"तुम दारोगा की कौन हो,—उसकी स्त्री ?" उदयसिंह ने पूछा।

"नहीं।"

"कोई रिश्तेदार ?"

"नही।',

इसके बाद उदयसिंह को जैसे और कुछ जानने की आवश्यकता नहीं थी। उसने स्त्री को तो, मय गहनों के, अपने एक आदमी के साथ वापिस लौटा दिया और दारोगा को लेकर देवी के अपने मन्दिर में पहुँचा।

मंदिर जंगल में ही था।

उदयसिंह ने दारोगा की मुश्कें खोल दी। उसकी नाक, कान, हाथ और पुरुषेन्द्रिय काट कर देवी को चढ़ाई। फिर हाथ जोड़ कर बोला।

"माँ, क्षमा करना, ऐसे आदमियों की यही सजा है।"

अन्त में, उदयसिह के आदमियों ने, दारोगा का सिर भी देवी की भेंट चढ़ा दिया।

दोपहर, के भोजन के बाद, विश्राम के घंटों मे, उयदसिंह इसी तरह की घटनाएं सुनाया करता।

"बस, सात दिन के लिये मुझे राजा या जेल-पुलिस-सुधार मंत्री बना दो," उदयसिह कहता—"इस देश से चोरी और ज़िना का नाम मिट जायगा !"

कुछ दिन बाद जेल में नये कैदियों का आना हुआ। ये कैदी सर्वथा नयी क़िस्म के थे,—इनमें बनिये थे, सेठ और साहूकार थे। ये सभी पैसे वाले थे। इनमें कई लखपति थे, एक-दो करोड़पति भी हो तो आश्चर्य नही। इनके अपराध भी अजीब थे,—किसी को इसलिये पकड़ा गया था कि उसने मूली चुराई थी, किसी को इसलिये कि उसने गाजरों पर हाथ साफ किया था, और किसी पर फूल गोभी चुराने का इलजाम था।

बात असल में यह थी कि नये कोतवाल ने जो मुसलमान था, जिले के एक कस्बे में दंगा करा दिया था। इस दंगे की सबसे गहरी चोट पड़ी कुंजड़ों पर—दंगे में साग-भाजी की मंडी लूट ली गई। दंगे से पहले कुंजड़ों ने सरकारी कर्मचारियों के हाथ तरकारी बेचना बंद कर दिया था। नाई और धोबियों ने भी, इसी प्रकार, सरकारी कर्मचारियों का बायकाट कर दिया था।

नया कोतवाल एक दिन कस्बे में पहुंचा। कुंजड़ों और नाई-धोबियों से बात की। उन्हें डराया-धमकाया। वे बोले :

"हम क्या करते, सरकार। यहां के बड़े-बड़े सेठों और महाजनों ने हम पर दबाव डाला। पानी में रह कर मगर से बैर साधें तो जिन्दा न रहें!"

इसके बाद दंगा हुआ। दंगे में सब्जी मंडी लुटी, कितने ही घर जले,—कुंजड़ों के, नाइयों और धोबियों के। कितने ही मारे भी गये। अन्त में आंखें बन्द कर, सेठ-साहूकारों और बनिये-बक्कालों को पकड़-पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया।

सेठ—साहूकारों और महाजनों के आने से जेल का रंग-रूप ही बदल गया। जेल की नदिया में रिश्वत और घूस की नावें तैरने लगीं। खिलाफतियों जैसी रोटी पाने के लिये भी वे वार्डरों को खूब घूंस देते। जेल के अधिकारियों, पुलिस वालों और वकील-बैरिस्टरों के लिये तो उनकी थैलियों के मुंह खुले ही थे।

शुरू-शुरू में इन लोगों ने अपने-आपको खिलाफतियों से अलग रखा। इन्होंने सोचा कि अगर खिलाफतियों का साथ देंगे तो उनका अपराध बढ़ जायगा, छूटने की उम्मीद और भी दूर खिसक जायगी।

लेकिन बाद में जब यह देखा कि इस तरह वे अकेले पड़ गए हैं, जितना ही वे झुकते हैं उतना ही कोतवाल उन्हें दबाता है, तो उन्होंने भी एकजूट होकर कांग्रेसी नेताओं का मुंह जोहना शुरू किया। दूसरे शब्दों में यह कि कुछ थैलियां उन्होंने कांग्रेसी नेताओं के लिये भी रिजर्व कर दीं।

थैलियां ही उनका बल थीं, उन्हीं के सहारे उन्होंने नौकरशाही से लड़ना शुरू किया, और इसका मन चीता फल भी उन्हें प्राप्त हुआ।

कांग्रेस और सरकार में जब समझौते की बातचीत चली तो, समझौते पर हस्ताक्षर होने से पहले ही, उन पर से मुकदमा उठा लिया गया।

खिलाफती कैदी भी छूटे, लेकिन उनसे कई महीने बाद!

★

श्रीराम शर्मा 'राम'

कमला का बेटा

●

सम्भवतः कमला के लिये इससे बड़ा दुर्भाग्य और कोई नहीं हो सकता कि उसका एकमात्र पुत्र अलिन पागल हो जाए। वह अभी दस वर्ष का था। उसकी सुन्दरता, मोहकता कमला के मन में बसी थी, लगभग दो वर्ष हुए कि अलिन टाईफाइड में पड़ा। उसी रोग में डाक्टर ने इन्जेक्शन लगाए तो उसकी गर्मी अलिन के मस्तिष्क में पहुंच गई। फलस्वरूप, मस्तिष्क दुर्बल और विकृत हो गया। टाईफाइड का बुखार तो चला गया, परन्तु वह रोगी को पहिले से अधिक चंचल और अधीर बना गया। उसका प्रभाव अलिन की माँ पर भी पड़ा और पिता पर भी। किन्तु अलिन के पिता आनन्द बाबू केवल घर में तो रहते नहीं थे, वे सुबह निकलते और शाम को लौटते। उनके पास इस बात के लिये अनेक साधन थे कि स्वस्थ रहें, निश्चिन्त रहें, किन्तु कमला इस अवस्था से दूर थी। वह रात के कुछ घण्टों को छोड़ कर शेष समय में घर और अपने अलिन की सीमा में बंधी रहती। कैसी विवशता थी उसकी कि नारी थी और माँ थी। दिन में वह शाश्वत भाव से माँ बनी रहती और रात में मानो निराकार रूप से मोहिनी रूप धारण कर सुन्दर, सलोनी और मधुर पत्नी बनने के लिये विवश होती थी। वह दिन भर के थके हुये पति के सामने अपने यौवन की—नारी जीवन की मानो समस्त कलापूर्ण कृति समेट कर समर्पण का अभिनय करती और उस पति के जीवन में लीन हो जाने की असफल चेष्टा करती। उसके पति के अन्तर में जो कठोर, हिंसक और कामुकतापूर्ण भाव परिव्याप्त था, वह मानो बरबस ही, उसे उलीच-उलीच कर बाहर निकालती और शिव के समान उस गरल को पी जाना चाहती.......

निदान, कमला स्वस्थ नहीं थी। मन उद्विग्न, चंचल था। उसके मानस में जो विद्रोहाग्नि भड़क उठी मानो वह उसे बरबस ही शान्त करने का प्रयत्न करती। अतएव, कमला पूर्ववत् थी। उसके हृदय-मन्थन में जाने क्या क्या विलोया जा रहा था जिसका परिणाम यह हुआ कि कमला का स्वास्थ्य गिर गया। उसकी चंचल और मदपूर्ण आँखें माथे में धंस गईं। गोरे और गुलाबी गाल पिचक गए। स्वस्थ और गठित शरीर हड्डियों का ढाँचा बन गया। एक दिन हो तो भुगता जाए! कमला के

सामने तो निन-नया दिन आता और कोई न कोई परेशानी, चिन्ता अथवा हृदय को पीड़ा देनेवाला सम्वाद अपने साथ लाता।

बात यह थी कि अलिन के मस्तिष्क में जिस प्रकार का पागलपन आया, वह न केवल कमला और उसके पति आनन्द बाबू के लिए चिन्ता का विषय था, अपितु वह पड़ोसियों के लिए भी शिकायत करने का एक साधन बन गया। पुत्र के पागल बनने से पूर्व कमला का स्वभाव बहुत दम्भी और स्वाभिमानी था। किसी की कड़वी बात सुनना, उसके स्वभाव के विरुद्ध था। परन्तु जब उसका भाग्य स्वयं ही फूट गया, तो बरबस उसने, अपना सिर झुका लिया। अलिन के प्रति जो भी शिकायत उसके पास आती, तो वह बिना प्रतिवाद के उसे सुनती और अपने पुत्र का दोष स्वीकार कर लेती। अवस्था यहां तक पहुँची कि अलिन पर बच्चे कीचड़ उछाल रहे हैं, कंकड़ मार रहे हैं, 'पागल' कह कर उसके पीछे भाग भी रहे है, तो भी अपनी छाती थाम कर कमला सुनती, देखती और मन मार कर रह जाती।

किन्तु उस दिन तो सचमुच ही, कमला की आत्मा तड़प गई। वह विवेकहीन भी बन गई। बात यह थी कि पड़ौसी बाबू रामनाथ के लड़के सुरेश की बाँह पर अलिन ने इतने जोर से काटा कि बत्तीसों दांत उसकी बांह पर गड़ गए। खून निकल आया। सुरेश चीख उठा। उसकी मां ने देखा, तो ममता और क्रोध दोनों एक ही साथ आंखों में उतर आया। तुरन्त ही, उसने रसोई घर से चिमटा उठा लिया और तड़ाक-तड़ाक उसने कई हाथ अलिन की पीठ पर, टाँगों पर और मुंह पर मार दिए। मार खा कर अलिन चीख उठा। वह दौड़ा हुआ अपनी माँ के पास गया। मोहल्ले में शोर मच गया। कमला ने जब अलिन के बदन पर चिमटे के निशान देखे, तो उस की छाती पर घूंसा लगा। उसी समय एक लड़की ने आकर बता दिया कि अलिन को सुरेश की मां ने मारा है। चिमटे से मारा है। इतना सुनना था कि कमला लड़के को साथ ले, तुरन्त वहां पहुँची। जाते ही बोली-'अरी डायन, तू ने लड़के को मारा और जिन्दा छोड़ दिया! इसे मार देती, तो अच्छा था!'

उस समय सुरेश की माँ भी तैश में थी। वह अपने पुत्र की बांह पर काटने का निशान देख-देख क्रोध से भरी थी। तिस पर, कमला की बात सुनी, तो उसने सुरेश की बांह दिखा दी। उसी अवस्था में बोली—'मां मैं भी हूँ। मेरा भी लड़का है। जब अलिन पागल हो गया है, तो पागलखाने भेजना चाहिए। घर में रखना चाहिए! आज तो काटा है, कल....हाँ, कल चाकू भी मार देगा...'

दोनों ही नारियां शिक्षित थी, कुलीन घर की थी। कमला ने बात समझ ली। स्थिति पहचान ली। हाय! कैसी विवशता थी उसकी कि उसका पुत्र पागल क्या हुआ, जैसे अपने साथ कमला को भी पागल बनाने में समर्थ बन गया। लेकिन

कमला तो मां थी, वह अपने पुत्र की आत्मा का चीत्कार भी सुनती और समझती थी। वह कुछ नहीं बोली। अलिन को साथ लिए घर लौट गई। पर आकर वह सीधी अपने कमरे में चली गई और चारपाई पर पड़ते ही, फूट-फूट कर रो पड़ी। उसी अवस्था में उसने तड़प कर अलिन से कहा—"अरे तू मरजा! चला जा! भाग जा!' किन्तु अलिन तो मौन था। वह खड़ा खड़ा अपना कुरता फाड़ रहा था। मां की बात सुनकर हंस भी रहा था। उसी अवस्था में उसने कमला से कहा— 'मैं तुझे भी मारूंगा.. तेरा गला घोंट दूंगा...

और रोते हुए ही, अपने अन्तर के उद्वेग, पीड़ा तथा कोलाहल से भरे मन के बहते हुए आंसुओं को लेकर, उन्हें गालों पर बहाकर कमला कह रही थी—'हां, तू मुझे मार दे! मेरा अन्त कर दे। तेरी यह दशा तो न देखूंगी! दूसरों से पिटता हुआ तो न पाऊंगी।'

परन्तु इतना सुनकर तो वह अलिन, —दस वर्ष का अलिन इतने जोर से हंसा, इतना चंचल बना कि उसने एकाएक कमला को भी डरा दिया, उसके हंसने और चीत्कार करने से कमला चौक गई और मकान गूंज गया। तदन्तर वह अलिन मां को छोड़ कर दूसरे कमरे में पहुँच गया। वह एक जंगले के सींकचों को पकड़ कर उस पर चढ़ गया और चिल्लाया—'मां, देख, मैं जा रहा हूं...मैं उड़ा जा रहा हूं... मैं परिन्दा...मैं हवा....'

कमरे में पड़ी हुई कमला ने अलिन की इतनी-सी बात को सुना, तो जैसे बरबस ही, उसकी छाती में चहुँओर धुआं घुट गया। आंसू रुक गए। मुह सूख गया। उसने उस धुएं के अन्धकार में देखा, जैसे कोई काली और भयानक छाया उसके अलिन की ओर बढ़ रही है और अपने तेज नाखून उसकी ओर उठा कर ओठ फड़फड़ा रही है। वह छाया दांत किटकिटा रही है। जिसे देखते ही, कमला चिल्लाई—'अलिन बेटा!'

उसी समय आनन्द बाबू दफ्तर से लौट आए। वह कमरे के सामने आ खड़े हुए। कमला चारपाई से उठ कर अलिन के पास जा रही थी। वह अव्यवस्थित अवस्था में थी। उसकी आत्मा कोलाहल से पूर्ण थी। छाती मे धडकन और सांस तेज थी। उसकी आंखों में मानो अब भी वह प्रेमिनी या कम्पन घूम रही थी। वह उसी को लक्ष्य कर रही थी, किन्तु जैसे ही, उसने पतिको सामने पाया, उन्हें मुसकराते देखा, तो पीड़ा तथा व्यथा से भरी हुई कमला ने अपना मुंह आनन्द की छाती पर रख दिया और तड़प कर रोते हुए कहा—'मेरे अलिन को बचा लो . मेरे प्राण को...'

सदय भाव में, आनन्द बाबू ने उसके सिर पर हाथ रखा और बाहर दूर

अंतरिक्ष की ओर देखते हुए कहा–'हमारे भाग्य में यही लिखा था, कमला···! अलिन क्या पागल बना, उसने तुम्हें पागल कर दिया !'

किन्तु तुरन्त ही, कमला ने अपना मुंह उठा कर कहा–'मैं इससे अधिक दुख और क्लेश सह लूंगी। पर मेरा अलिन तो ठीक रहे। मेरा बच्चा लाँछित और प्रताड़ित न बने !'

आनन्द ने कहा—'भाग्य अपना-अपना ! हमारा उससे नाता है, इसलिये दुख होता है। मैंने मोहल्ले में आते ही सुन लिया कि आज अलिन ने सुरेश को काट खाया।

तड़प कर कमला ने कहा—'पर उसकी माँ ने तो मेरे बच्चे की देह को उधेड़ दिया !'

'हां, कमला, मैंने ये भी सुना। क्रोध आया। पर दोष अलिन का पहिले था। अधिक भी था।'

मुंह गिराकर कमला ने कहा–'अलिन तो अजान है, पागल है। पहिले क्या किसी से लड़ता था !'

'पर जब दिन खराब आते हैं, तो सोना भी खोटा निकल आता है। आज हमारा भाग्य खोटा हो गया है !' उदास भाव में आनन्द बाबू ने कहा।

किन्तु कमला ने कहा–'सुरेश की मां को सोचना चाहिए था।'

उसी समय अलिन दौड़ कर आया और पीछे से पिता की पीठ पर चढ़ गया। वह कहते रहे, 'अरे, ठहर !' पर वह तो गले पर सवार हो गया। दोनों हाथों से गला पकड़ लिया और बोला–'घोड़ा बनो ! चलो, तिक्-तिक् !'

कम्बख्ती के मारे आनन्द बाबूको दफ्तर के कपड़े पहिने हुए ही- घोड़ा बनना पड़ा। पतलून पहिने थे, ठीकसे मुड़ा भी नहीं गया। किन्तु अलिन पीठ पर सवार। नकटाई उसके हाथ मे। मुंह से बोल रहा है—'चल बे घोड़े, तिक्-तिक् !'

कमला ने कहा–'न,बेटे ! तेरे बाबूजी हैं, छोड़ दे ?'

तो अलिन ने कहा–'कहो, चीं ! अब नहीं जाओगे ?'

बरबस, आनन्द बाबू ने कहदिया–'चीं !'

'अच्छा, जाओ तुम्हें छोड़ दिया। माफ़ भी कर दिया।'

कमला और आनन्द ने इतना सुना, तो हंस दिया।

आनन्द ने कहा—'कम्बख्त, कभी तो बात अच्छी करता है, कभी नहीं। आज इसने लड़के को काट खाया, वह अच्छा नहीं किया।'

कमला ने कहा–'और इसका बदन देखा ?'

'हाँ, देख लिया ! अब मत कहो। मैं बाप हूं। मैं भी अपने पुत्र की सीमा

में बंधा हूं, मन में तो आता है कि सुरेश की मां को जा कर उधेड़ दूं। पर मैं पहिले अपना सोना परखता हूं। उसे खोटा पाता हूँ।'

इतना सुनकर, कमला ने सांस भरी और अपना सिर झुका लिया।

आनन्द ने कोट उतार दिया। जब उसने नकटाई खोलनी आरम्भ की, तो कमला की ओर देख कर बोला—'यहां से दूर एक पागलों का अस्पताल है। सुनता हूँ वहां व्यवस्था अच्छी है। कोशिस सफल हो जाय, तो सरकार से भी अलिन के लिए कुछ सहायता मिल सकती है। कहो—तो चेष्टा करूं।'

कमला ने कहा–'मैं नहीं भेजूंगी। मैंने पाला है, बड़ा किया है, तो मैं ही...'

आनन्द ने कहा—'पगली मत बनो। अपनी अवस्था देखो। इस अलिन के पीछे ही तुम्हारी यह दशा हो गई। तीस वर्ष की तुम्हारी यह आयु है, और लगती हो, जैसे पचास वर्ष की बुढ़िया ...।'

इतना सुनते ही, कमला ने अपना सिर पीछे दीवार पर टिका दिया, लगा कि उसे पति से इतना सुनना निःसन्देह, असह्य हुआ। किन्तु उसी अवस्था में उसने कहा–'तो मैं क्या करूं ···मैं···।'

आनन्द ने कहा—'माली पौधे लगाता है, तो ऐसा नहीं होता कि सभी पौधों में फल हो। कोई बिना उपजे ही ... '

तड़प कर कमला ने कहा—'पर मैंने तो एक ही पौधा पाया। जीवन में एक ही फल देखा।'

सुनकर, आनन्द बाबू मुसकराये। तनिक हंस भी दिये।

इतना देख, कमला ने फिर तड़प कर कहा–'तुम मां नहीं! मेरी स्थिति में नहीं! मेरे दर्द की पुकार तुम्हारी कल्पना में भी नहीं!'

आनन्द ने कहा– 'कमला, मैं अनुभव करता हूँ। तुम्हें दर्द है, मै इसे स्वीकार करता हूँ। परन्तु हो क्या? नियति के काम में हमारा वश ही क्या?' और तभी उसने मानो अपने अन्दर की भावना को सम्बोधित किया और देखा कि उसका अभाव क्या....इच्छा क्या......अर्थ क्या! कदाचित उसी को लक्ष्य कर वह बोला–'देखती हो, जीवन पूरा पड़ा है! सजी हुई दुनियां है, सजा हुआ मानव, ये भव्य और मनोरम दृश्यावलियां ... '

तेजी से मानो अधीर बन कर, कमला ने कहा–'हां, हां, दुनिया सजी है! आदमी सजा है! यह औरत!' वह अतिशय क्षीण और दीन भाव लेकर बोली– 'तो मुझसे क्या कहते हो! तुम अपनी ओर देखते हो, दुनिया देखते हो!' इतना कहा और कमला ने अपनी दृष्टि खिड़की के बाहर उठा दी। उसने धुन्धला अन्तरिक्ष देखा

और उसी ओर लक्ष्य करते हुए कहा–'जीवन अपना, भावना अपनी !' तभी उसने अपनी वाणी पर झटका दिया –'लेकिन देखते हो, मैं नारी हूँ ! मैं मां हूँ ! अलिन पागल है या अच्छा; हीरा है या कंकड़; यह मेरा बच्चा है ! मेरी आत्मा है। मेरे ही हृदय का एक स्पन्दन ! मैं इसे भूल नहीं सकती। मैं अपने अलिन की विवशता, असमर्थता को देख, न सज सकती हूँ, न अपनी वेदना भूल सकती हूँ। मैं अब पत्नी नहीं, मां हूँ अलिन की मां !'

किन्तु आनन्द के मन में उस समय कुछ और था। वह उसके मुंह तक भी आ गया था। वह युवक, वह अपनी वासनाओं का दास, वह जीवन को आंख खोल कर देखनेवाला व्यक्ति, जैसे निश्चय ही, नितान्त अधीर और चंचल बन गया था। वह समाज की सजी हुई, मनोरम और भव्य दीखती किसी भी सुन्दर नारी के सदृश कमला को भी देखना चाहता था। उसके मन में अभी वे शब्द थे, जो उसने दामपत्य-जीवन के आरम्भ काल में ही, उस सोहाग की रात में कमला से कहे थे। समर्पण, अनुभूति और प्यार भरे वे शब्द अब भी अन्तर में गूंज रहे थे। वे मानो पुनरावृत्ति चाहते थे। वे एक बार आनन्द के मुंह से निकल कमला या किसी अन्य नारी के सम्मुख अपना प्रदर्शन करना चाहते थे। वे, निश्चय ही, किसी को सम्बोधित कर हवा में मिलना चाहते थे। वे मानों उसके अन्तर में घुट रहे थे। वे उसके गले तक आते और विवश बन कर लौट जाते थे। और आनन्द की इच्छा यह कि उसे जीवन में दो वस्तुएं मिलें, नारी और पैसा ! उसने अपने जीवन के उठाव पर, दौड़ती हुई दुनिया की राह पर चलते हुए, जब चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तो इन्हीं दो वस्तुओं की इच्छा की ! परन्तु आज तो उसने एकाएक देखा कि बुढ़ापा आ रहा है। सांस फूल रहा है। उसकी चाह–जीवन की चाह मर रही है। मन की आकांक्षा का खून हो रहा है ! अलिन पागल हो गया है तो इस कमला ने मानो योगिनी बनने का–इस भरी जवानी में ही मर जाने का बीड़ा उठा लिया है। लगता है कि इसने जीवन से तर्क किया है। इच्छाओं को मार दिया है। जीवन भार समझ लिया है। भला कोई पूछे इससे, कहे तो, अरी, पगली ! अलिन पागल हो गया तो क्या, भाग्य अच्छा चाहिए, मां बनने का अवसर फिर मिल सकता है ! ईश्वर फिर सुनेगा और तेरी कोख भर देगा !

परिणामस्वरूप, आनन्द बाबू ने अलिन को पागलखाने में भेजने का निश्चय कर लिया। कमला को समझा दिया। लेकिन जब अलिन का पागलखाने जाना पूर्णतः निश्चित हो गया, एक दिन की सन्ध्या में आनन्द ने यह आकर बताया, तो उस समय कमला से भोजन नहीं किया गया। उसने संध्या समय ही अलिन के बाल वारे और उसे नया कुरता पहनाया। उस समय अलिन सो रहा था। कमला उसके

पास आकर बैठ गई। बालों पर हाथ फेरने लगी। उसके मन में धुआं घुमड़ रहा था। वह उसका मन्थन कर रहा था। भरी आंखें टपक पड़ी। अलिन के ऊपर गिरीं, निदान, वह जाग गया। उसने कमला की ओर देखा। उसका हाथ पकड़ लिया। उस हाथ को अपनी छाती पर रख, वह नितांत समझ भरे स्वर में बोला—'माँ।'

एकाएक तड़प कर कमला ने कहा—'बेटे!'

अलिन ने कहा—'मां' मैं पागल हूँ। सब कहते हैं, मैं पागल हूँ। तू भी कहती है!'

कम्पित स्वर मे कमला बोली—'न बेटा कौन कहता है कि तू पागल है! मैं नहीं कहती!'

'हां, तू मेरी मां है, न! तू नहीं कहती!' और वह खिलखिला दिया। कमला का हाथ अपने मुंह में दे लिया। उस ने काट लिया। उस हाथ पर दांत उखड़ आए, परंतु कमला ने उफ़ तक न किया! अलिन बोला—'देख, मैंने काट लिया—ही-ही-ही-ही'

किंतु काटने की पीड़ा पाकर भी कमला ने कहा—'बेटा!' सचमुच, वह तब अतिशय भावुक थी! जैसे केवल माँ थी! उसकी सूक्ष्म काया ही वहां थी।

अलिन उठा और कमला की पीठ पर चढ़ गया। बोला—'घोड़ी, तिक्-तिक्!'

कमला ने कहा—'बेटा, मां मर जाएगी!'

'तो तू मर जाएगी मां! क्यों?'

'अब तू सयाना हो गया है। तेरा बोझ' ...

और अलिन तब नीचे उतर कर बोला—'तो तू रोती क्यों है! क्या...?'

कमला ने उसका सिर अपनी छातीसे लगा कर कहा—'बेटा, मैं रोती नहीं! मैं हंसती हूँ। मैं खुशी मनाती हूं मैं अपने अलिन को देख कर ...

और अलिन इतना सुनने से पूर्व ही खिड़की पर जा चढ़ा। वह वहीं से बोला-'देख मां मैं कितना ऊंचा हूँ ...'

कमला ने इतना सुना और जाने कैसी विवशतापूर्ण अवस्था मे अपना सिर झुका दिया।

+ + + +

अलिन को पागलखाने में दाखिल करा कर जब दो मास बाद पति-पत्नी उसे देखने पहुंचे, तो कदाचित वह कमला के दुर्भाग्य का पटाक्षेप ही था। अलिन ने उसे नहीं पहचाना। उसके हाथ से फल भी नहीं लिया। उसे बुलाया,पुचकारा, तो उसने हंस दिया। वह वहां से भाग गया।

कुछ देर बाद आनन्द ने कहा—'उठो, कमला! अलिन हमको भूल गया। चौंक कर, जैसे छाती पर घूंसा खाकर, कमला तड़प उठी। वह आंखों से आंसू बहाती हुई बोली—तुमने मेरा बेटा छीन लिया। अब वह मां को भूल गया....मेरा अलिन....'

किन्तु आनन्द क्या कहता! वह स्वयं मुंह फेर कर रो पड़ा।

रामचन्द्र तिवारी

अलका की अंगूठी

●

प्यारेलाल प्रतीक्षा में था। सम्भव है आज उसके जीवन में नवीन अध्याय आरम्भ हो। सम्भव ही क्यों; वह आरम्भ होगा, उसे आरम्भ होना पड़ेगा। प्यारेलाल के जीवन में नवीन सुनहरे अध्याय को आरम्भ होना होगा।

होना होगा! अचानक वह ठिठक गया। मति की गति जड़ हो गई। नवीन अध्याय और सुनहरा! नहीं, इस विषय में न सोचना ही अच्छा। जीवन में सुनहरे अध्याय की वह कब से प्रतीक्षा कर रहा है?

उसने अपने एक पुराने चित्र की ओर देखा। प्रशस्त ललाट, बड़े-बड़े नयन और लम्बे घुंघराले बाल। वह सचमुच कलाकार-सा दिखाई देता था उन दिनों। वह तबला बजाना सीख रहा था। संगीत एक नशा बनकर उस पर छा रहा था। उसके उतरने के लक्षण न दिखाई दिये। वह गहरा ही होता चला गया। उसे अपने बालों से बहुत प्रेम था। कुछ दिनों उसके केशों और संगीत में स्पर्द्धा रही। अन्त में उसने निश्चय किया कि केशों की सेवा समय मांगती है, रुचि मांगती है। और वह उन्हें केशों से पहले संगीत को देना चाहता है। उसने केशों का चित्र रखा और उन्हें बिदा दी। हाँ, यह उसके उन केशों का चित्र था—एक स्मृति-मात्र। आज केषहीन है वह! उसने अपने चेहरे का ध्यान किया। एक रूखा अरसिक आकर्षणहीन! जब उसका उत्साह कला की 'अ आ इ ई' से टकरा रहा था तो केशों की छवि ने उसे कलाकार बना दिया था, और आज जब उसका नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध है, तो उसकी कला-कारिता जैसे उसके शरीर में ही सिकुड़कर बैठ गई है।

उसकी प्रसिद्धि! एक आत्मविश्वास उसमें उमड़ा। हां, उसकी प्रसिद्धि है। उसकी अंगुलियां तबले में से जो निकाल सकती हैं, उन्हें क्या दूसरे कभी छू भी पाते। गर्व से उसकी छाती फूली और मस्तक ऊंचा हो गया। हां, आज उसे बड़े रायबहादुर के यहां संगीत-सम्मेलन में भाग लेनें जाना है। संध्या के पांच बजे....गंधर्व विद्यालय की अध्यापिकायें और महिला विद्यालय की छात्राएं भाग लेगीं और, और सुषमा! वह अवश्य आयेगी। वह आज अठारह वर्ष पश्चात् भी उतनी ही सुन्दरी है। उसके कंठ में ही नहीं, अग-अंग में वही लचक और लोच है।

"पिता जी !"

सुषमा। हां, वह इस समारोह में अवश्य आयगी। उसे अवश्य ही निमंत्रित किया गया होगा।

"पिता जी !" वह जैसे जागा। चार वर्षीय पुत्री के स्वर ने उसे संसार की पार्थिवता में उतार लिया। वह आकर उसके कंधे से लिपट गई।

"क्या है री !" वह एक क्षण उससे असंतुष्ट हुआ, दुसरे क्षण उसे प्यार से गोद में ले लिया। उसे छूते ही वह सकुचा गया। संकोच मिटाने के लिये बोला, "क्यों अलका, तुम्हारी गुड़िया के क्या हालचाल हैं ? उसका विवाह कब कर रही हो ?"

पर जिस स्थिति को वह बचाना चाहता था, वह बची नहीं। अलका पूछ ही तो बैठी "पिता जी, मेरी अंगूठी ले आये ? मैं सोने की अंगूठी लूंगी, एकदम सोने की ! समझे ?"

यह पहली मांग थी जो अलका ने पिता के सम्मुख रखी थी। और प्यारेलाल वास्तव में उसे पूरी करना चाहता था उसने पहले उस अंगूठी का मूल्य पचास रुपये निश्चित किया था, पर पिछले तीन मास में वह घटता-घटता बीस रुपये रह गया है। और इस समय वह इस स्थिति में भी नहीं है कि बीस रुपये भी व्यय कर सके। पर बीस से नीचे उतरने को उसका हृदय नहीं चाहता। क्या उसकी अलका की इच्छा का मूल्य बीस रुपये भी नहीं है ?

उसने सोचा था कि देश के स्वाधीन होने पर कलाकार के दिन फिरेंगे। कला की चढ़ती होगी। मनोरम संगीत से स्वतन्त्रता की आत्मा विमोर हो उठेगी। परन्तु——

"पिता जी !"

हां, मुख्य प्रश्न स्वतन्त्रता, संगीत और कला के आश्रय का न था, मुख्य समस्या थी बीस रुपये की। बीस रुपये मात्र की। अलका के लिए एक अंगूठी की। अपनी लाड़ली के लिए एक अंगूठी की। कितनी प्रसन्न होगी वह उस अंगूठी को पाकर ? वह एकदम खिल उठेगी, और उसे खिला देखकर उसका हृदय उन क्षणों को पा जायगा जो जीवन की सार्थकता को साकार करते हैं। वह कुछ आनों की अंगूठी लाकर उसे बहका सकता है, पर नहीं, वह उसे ठगेगा नहीं। उसमें इतना साहस नहीं कि वह अपनी अलका को ठगे। वह उससे कह देगा कि अलका अंगूठी मैं नही ला सकता पर ठगना, यह उससे नहीं हो सकेगा। और उसने प्यार से पुत्री के कमल से मुख को दोनों हथेलियों के बीच में लेकर कहा, "मैं लाऊंगा, रानी अलका के लिए अंगूठी लाऊंगा। अच्छी, सुन्दर अंगूठी सोने की अंगूठी, क्यों, सोने की अंगूठी ही लेगी न मेरी अलका ?"

कूकती हुई अलका बोली, "हां पिता जी, सोने की अंगूठी। मैं सोने की अंगूठी लूंगी। मुझे सोने की अंगूठी ला देना।"

प्यारेलाल ने पुत्री को चूम लिया। सोचा बड़े रायबहादुर के यहां उसे कम-से कम पच्चीस रुपये मिलेंगे। रुपयों का ध्यान आते ही उसके सामने परचूनिये और ईंधन वाले की चिरपरिचित मूर्तियाँ आ खड़ी हुईं। उनके उधार के पैसे। लेकिन उसने निश्चय कर लिया कि उनके उधार के पैसे वह अभी न देगा। अलका की अंगूठी आज अवश्य ला देनी है। उसे काम नहीं मिल पाता तो इससे क्या? इस भोली बालिका को निरन्तर ठगते रहने का हृदय उसका नहीं है।

बोला, "आज तेरे लिये अंगूठी अवश्य लाऊंगा।"

"अवश्य!" अलका नाच उठी।

पिता का हृदय द्रवित हो गया।

"अवश्य, अवश्य!"

"प्यारेलाल जी, प्यारेलाल जी! क्यों भई, यहां कोई तबलची प्यारेलाल रहते हैं?" एक पुरुष का स्वर सुनाई दिया।

प्यारेलाल चौंका। यह दूसरा कोई उनकी खोज में है। वह अलका को एक ओर हटाकर बाहर लपका।

"कौन है?"

"यहां कोई प्यारेलालजी रहते है?"

"कहिये आज्ञा, मैं ही हूँ प्यारेलाल।"

"बड़े रायबहादुर साहब के यहां से मोटर आई है, शीघ्रता कीजिए।"

"समारोह तो पांच बजे है न? अभी तो दो ही बजे हैं!"

"प्यारेलाल आप ही हैं न?"

"हूँ, तो मैं ही!"

"तो मोटर आपको ही लेने आई है। मैं तो हुकुम का बन्दा हूं। आप शीघ्रता कीजिए, और भी बहुत से लोगों को लेने जाना है।"

"ओह, मैं अभी तैयार होता हूँ।"

"तो आप आइए, मैं मोटर में हूं।"

और प्यारेलाल ने अलका की मां को पुकारा:

"कपड़े!"

"कपड़े तो वही घर के धुले हैं। इस्तरी करने के लिए जो भिजवाये थे, वे तो चार बजे....।"

"पर मुझे जाना तो अभी है।',
"फिर ?"
"मैं क्या बताऊं ?"
"मैं सदा कहता हूँ कि घर में...।"
"तो तुम्हीं क्यों नहीं कर लेते ?"

प्यारेलाल ने अपने पर संयम किया। बोला, "देखो, नरायन बाबू के यहां से एक कोट मांग लाओ। उनका कोट मेरे एकदम फिट आता है। इस कमीज़ की फटी बांहें उसके नीचे दब जायेंगी। और पाजामा ? उनके यहां तो पतलून होंगे या धोतियां ? मनोहर के यहां से। खैर, पाजामा बिना इस्तरी का ही चल जायगा। लो, जल्दी करो।"

नरायन बाबू का कोट, मनोहर का पाजामा और फटी कमीज पहनकर जब वह बाहर निकलने लगे तो अलका ने याद दिलाई, "पिताजी, अंगूठी !"

पुत्री की मां बोली, "चुप रह न, चलते समय टोक दिया।"

प्यारेलाल ने कहा, "अवश्य ; अवश्य !"

× × ×

मोटर में प्यारेलाल अनेक बार बैठे थे, पर ऐसा आराम उन्हें किसी मोटर में प्राप्त नहीं हुआ था। कम-से-कम उन्हें स्मरण न था। उन्हें लगा कि काया-कष्ट-निवारण की सब सामग्री वहाँ उपस्थित थी। मोटर सरकी और एक उत्सुकता उनमें उभरी। इस मोटर में और कौन आयेगा ? सुषुमा ! नहीं, यह असम्भव है। यह इस मोटर में ? उनके साथ ! वह चाहते भी नहीं कि वह इसी मोटर है उनके साथ चले। पर मनुष्य अनचाहे भी चाहता है। मोटर जाकर सुषुमा के मकान के सामने खड़ी हुई। प्यारेलाल का हृदय गली के मोड़ से ही धड़कने लगा था। अब वह एकटक परिचित रूपराशि के अवतीर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगे। सुषुमा सीढ़ी से उतरी। ऊंची चप्पल, हाथ में बेग, अधरों पर रंग, कपोलों पर पाउडर और सारा तन एक पीली झिलमिल साड़ी में आवेष्टित। वह चौंधिया गया, लगा कि जैसे साक्षात् चन्दा की किरण उतरी आ रही हो। वह आकर एकदम उसके निकट बैठ गई।

दोनों ने परस्पर पहचान लिया। पर मौन !

प्यारेलाल सिकुड़ा जा रहा था। यह सुषुमा थी ! हां, यह जीवन के अन्त तक सुषुमा रहेगी। उसमें से आने वाली, शरीर की न सही पर सुगन्धि थी; जिससे मोटर भर गई थी।

मोटर घूमती गई और अनेक कलाप्रिय रमणियों ने उसमें आसन ग्रहण किया। साकार प्रतिभा की प्रतिमाएं। देश की संस्कारिता की अमोघ शक्तियां। नाना रूपों

और गंधों से युक्त तन्वंगी लतिकाएं। प्यारेलाल के मन में उठा—ये परियां, ये अप्सराएं, ये किन्नरियां, ये देवियां ! वह तुच्छ नगण्य प्यारेलाल था जो अशांत स्निग्ध, संकुचित उन फलों की खिलखिलाहट में डूबा जा रहा था। अपना आत्म-विश्वास खोये दे रहा था।

उसने बरबस स्मरण किया कि वह प्रसिद्ध है। उसके उन श्यामल हाथों में कुछ करामात है और सब से मुख्य बात तो यह है कि मोटर सब से पहले उसे लेने गई थी। वह तबला बजाता है संगीत को रीढ़ देता है।

उसने देखा समारोह का आयोजन। विशाल कमरा झाड़-फानस से सुसज्जित। चांद में कलंक हो, पर वहां बिछी चांदनी पर कालिमा नहीं। दूध पीने को भले ही न मिले पर चांदनी का रंग दूध से पीछे कैसे रह जाये ? जिस ओर दृष्टि उठी उस ओर ही चमक-दमक ! चमक सफेदी में ही न थी कालिमा में, उससे भी अधिक थी ! कुछ थे जो फुसफुसाकर पूछ रहे थे कि ऐसा मनमोहक और चमकदार काला रंग किस विलायत से आया है ? रंगों के इन्द्रधनुष में प्यारेलाल ने तबले के निकट आसन ग्रहण किया और समारोह में उपस्थित व्यक्तियों के चेहरों को देखा। वह चकित न होने का प्रयत्न करते हुए भी दंग रह गया। जिस चेहरे को उसने देखा। उसी पर एक तेज व्यक्तित्व पाया। एक भी रोगी या दीन वहां उसे न दिखाई दिया। सभी चेहरे दर्पण की भांति दमक रहे थे। झुर्रियां थी तो झुर्रियों में से भी जीवन की रश्मि बिखरी पड़ रही थी। इतनी चिकनाई इतना लावण्य, इतनी रसवत्ता और इतना स्वास्थ्य ! उसके मन में उठा कि वह खड़ा होकर कहे—इस कमरे की जय हो, इन रंग-बिरंगों की जय हो, इस जनसमूह की जय हो ! कि वाद्यों की झनकार ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और उसने पाया कि स्वयं बड़े रायबहादुर साहब उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं।

उसने विनम्र होकर शीश झुकाया। रायबहादुर हाथ जोड़ आगे बढ़ गये प्यारेलाल को लगा कि वे लोग हैं जो कला के पारखी हैं इन्हीं के पानी से कला सिंचती है। जिस दिन बड़े रायबहादुर जैसे लोग इस भारतभूमि पर बहुतायत से जन्म लेने लगेंगे उस दिन कला का बेड़ा बिना मल्लाह के पार लग जायेगा।

और तब संगीत का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। कम्पित अंगुलियों के स्पर्श से तारों के प्राण जाग उठे। फेफड़ों की गर्म वायु ने मूक को मुखर कर दिया और हाथों की छपक से वन्दिनी हवा ताल पर पग धरने लगी। कंठों में अप्सरा उतरी और कमरे के वातावरण में खो सुरों के भीतर रस भरा, उफना और छलक पड़ा। वह थिरकी नाची और फिर जैसे लज्जा से सिमटकर बैठ गई। तालियों की गड़गड़ाहट से कमरा गूंज उठा। मानो कि उसने कंठ फाड़कर कला का जयघोष किया हो !

प्यारेलाल ने पाये अपने सम्मुख दस-दस के तीन नोट। उसे समारोह में अत्यन्त आनन्द आया था। उसे परम सन्तोष था कि उसकी कला सफलता तो प्राप्त कर रही है, और उसे योग्य संरक्षण प्राप्त हो रहा है। उसने नोटों को उठाया और कमरे के बाहर निकल गया।

उसने सोचा था कि अब दूसरे लोग भी बाहर आयेंगे। पर वे लोग न आये। उसे यह अच्छा न लगा। तभी उसके सम्मुख बड़े रायबहादुर की कर जोड़े मूर्ति उपस्थित हो गई। इतने विनम्र! उन्होंने उसकी कला की प्रतिष्ठा की और वह चोरों की भाँति, बिना उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किये, बिना उनसे विदा लिये चला जा रहा है! उसने जूते उतार दिये और कमरे में प्रवेश करने लगा। द्वार के भीतर पैर रखा ही था कि द्वारपाल ने उसका मार्ग रोक लिया। "हटो पीछे हटो।"

प्यारेलाल ने कमरे में काँच की झनझनाहट सुनी। हंसी का ठहाका सुना और "तबलची" शब्द सुना। निस्सन्देह वह उसकी प्रशंसा थी।'

उसने आत्मविश्वास से भरकर कहा, "मैं अभी यहां तबला बजा रहा था।"

"हां, हां। मुझे मालूम है आप जायें।"

"मैं बड़े रायबहादुर साहब से मिलना चाहता हूँ।"

इसी समय कई जने द्वार के निकट आ गये। प्यारेलाल ने दुहराया, "मैं बड़े रायबहादुर से मिलना चाहता हूं।"

एक स्वर ने पूछा "कौन है?"

दूसरे स्वर ने उत्तर दिया, "तबलेवाला है।"

प्यारेलाल ने कहा, "मैं बड़े रायबहादुर से मिलना चाहता हूँ।"

पहला स्वर बोला, "इससे कह दो कि जो हमने उसे दिया वह पहले ही अधिक है। वह यहां से चला जाय।"

"मैं···मैं...।"

"चलो बाहर चलो।"

"आप मेरी बात तो सुनिए।"

"चलो, बाहर चलो।"

"आप.......।" और प्यारेलाल ने पाया कि वह द्वार से बाहर खड़ा है। द्वार बन्द हो गया है। दो क्षण वह स्तब्ध खड़ा रहा। और फिर उसने जूतों में पुनः अपने पैर डाल दिये।

प्यारेलाल का घोर अपमान हुआ था। वह दरिद्र था, पर उसका आत्मसम्मान था। वह कलाकार था। वह तीस रुपयों के लिये वहां नहीं आया था। वह आया था उन व्यक्तियों के दर्शन के लिए जो कला को समझते और उसका आदर करते हैं। वह चाहता था कि उन तीस रुपयों को ले जाकर बड़े रायबहादुर के सिर पर दे मारे और

कहे–यह लो अपने रुपये, मै कलाकार हूँ। तुम मुझे पहचानते नहीं। मैं अपने रक्त से दिया जलाता हूँ। दूसरे का रक्त नहीं चूसता।

जल उसके नयनों में उभरा आरहा था। वह विशाल भवन उसकी सुहावनी वाटिका और उसकी सुगंधित सुमनावली उसे असह्य हो रही थी। वह वहाँ से निकला और एक ओर को चल दिया। वह सोचता था पर सोच न पाता था बार-बार घूमकर यही विचार उसके मस्तिष्क मेँ आता था कि वह यहाँ पर क्यों आया ? पर आता न तो क्या करता। ये तीस रुपये ! और फिर वह उस दरबान से बदला लेने की सोचने लगा उसने उसे वहीं क्यों नही दे मारा ? जेल. सजा, फाँसी, मौत। कोई चिता नही ! लोगों को पता तो चलता कि।

वह चलता गया असबद्धता में बहता, अस्थिरता में डगमगाता। वह छोड़ देगा। उसे कला को छूने का कोई अधिकार नही है। कला को अपने अपमान का वाहन वह नही बनाना चाहता। उसका मस्तिष्क घूमता गया पर चरण सीधे चलते गये।

वह घर पहुँचा। अलका पिता की प्रतीक्षा मे जाग रही थी। वह दौड़कर पिता से लिपट गई। प्यारेलाल धम्म से खाट पर बैठ गया। अलका खिलनेवाली थी कि पिता की मुद्रा देखकर ठिठुर गई।

"क्या मिला ?" पत्नी ने पूछा।

प्यारेलाल ने तीस रुपये निकालकर खाट पर फेंक दिये। और बोला "जी में आया कि इन्हें फाड़ डालूं पर .."

"क्यों पिताजी ये तो पैसे हैं। इन्हें फाड़ना....!"

"अलका, ये बुरे पैसे हैं, बहुत बुरे पैसे हैं। इन्हें फाड़ डालना ही अच्छा।"

भोली बालिका ने नोट उठा लिये और दोनों हाथों में पकड़ कर बोली "तो मैं फाड़ दूं इन्हें, पिताजी ? ये बहुत बुरे पैसे हैं ?"

नहीं, नहीं.......प्यारेलाल ने लपक कर पुत्री का हाथ पकड़ लिया। पर उसका हृदय अलका के भोलेपन पर रो दिया। उसकी अंगूठी ? वह क्यों उसकी अंगूठी नहीं लेता आया ? परचूनियां, ईंधनवाला...!

"प्यारेलाल....प्यारेलाल !" एक कठोर स्वर आया।

प्यारेलाल ने पत्नी से कहा "तुम उठकर जरा कह दो कि नहीं हैं।"

पत्नी ने द्वार पर जाकर कहा, "कहीं बाहर गये हैं। घर पर नहीं हैं।"

व्यक्ति–कर्कश स्वर में जोर से बोला, "कोई चिंता की बात नहीं। हम यहीं द्वार पर बैठे हैं। वह बड़े रायबहादुर साहब के यहां से थानेदार साहब के जूते चुराकर भागा है। कोई बात नही हम यही बैठे हैं।"

और तब प्यारेलाल ने अपने पैरों में जूते की ओर देखा सचमुच वह उसका न था। वह एक अच्छा जूता था जो उसकी हैसियत से बहुत ऊंचा था।

यशपाल जैन

चोरी

●

कमरे को साफ कर झाड़ू पर कूड़ा रखे जब बिन्दू कमरे से बाहर निकला तो बराण्डे में बैठी मालती का ध्यान उसकी ओर अनायास ही चला गया। उसने देखा कि एक हाथ में झाड़ू है, पर दूसरे हाथ की मुट्ठी बंधी है और कुछ पीछे की ओर जान-बूझकर आड़ में कर ली गई है। मालती को लगा कि हो-न-हो,कमरे से बिन्दू कुछ लाया है। उसने कहा—"बिन्दू !"

दो कदम पर बिन्दू था, पर मानों उसने मालती की आवाज़ सुनी ही न हो ! वह चलता ही गया। इतना ही नहीं, बल्कि मालती ने देखा कि उसकी पुकार पर बिन्दू की चाल में कुछ तेजी आ गई है। गुस्से में भरकर उसने कहा—'बिन्दू ! ओ बिन्दू ! ठहर, कहां जाता है ?"

इतना कहना था कि बिन्दू तो दौड़ने लगा और वह गया, वह गया। मालती के सन्देह की पुष्टि के लिए यह सब काफी था। उसने तेजी के साथ कहा—"सुनते हो जी, देखो, बिन्दू कुछ लिये जा रहा है। जल्दी आओ।"

नंदन पास के कमरे में बैठा अपने पत्र के लिए कुछ लिख रहा था।

मालती का यों चिल्लाना उसे अच्छा नहीं लगा और उसने चाहा कि टाल दें, पर मालती माने तब न ! एक सपाटे में वह कमरे में आ गई और बोली—"झटपट उठो। देखो, बिन्दू मुट्ठी में दबाये कुछ ले गया है।"

नंदन ने कलम एक ओर रख दी और जैसे किसी ने जबर्दस्ती पकड़-कर उठा लिया हो, वह उठा। कमरे से बाहर आया तो देखता क्या है कि बिन्दू लौटकर आ रहा है। एक हाथ में झाड़ू है, दूसरा रीता है और नीचे लटका है। उसे देखते ही मालती उबल पड़ी—"क्यों बिन्दू के बच्चे, मैं गला फाड़ती रही और तू रुका तक नहीं ! बोल, हाथ में क्या ले गया था ?"

बिन्दू का चेहरा फक। बोला—"कुछ नहीं, बीबीजी !"

"झूठा कहीं का ! क्यों रे, तेरे हाथ में कुछ नही था तो मेरे पुकारने पर फिर तू रुका क्यों नहीं ?" मालती ने रोषपूर्ण स्वर में पूछा।

बिन्दू से बोला नहीं जा रहा था। कहे तो क्या कहे !

तब नन्दन आगे बढ़ा। बोला—"बिन्दू, घबराओ नहीं। सच-सच बताओ कि क्या ले गये थे।"

"सच बाबूजी, मेरे हाथ में झाड़ू थी और कूड़ा था।"

"फिर वही झूठ!" मालती ने चिढ़कर कहा। "इसे पुलीस में दे दो। लातों के देव कहीं बातों से मानते हैं! इस बेईमान के ऊपर घर छोड़ रखा है तो इसीलिए कि चीजें उठा-उठाकर ले जाय और ऊपर से झूठ बोले।"

नन्दन ने मालती को शांत किया। कहा कि असली बात जानने का यह तरीका नहीं है। फिर बिन्दू को उसने प्यार से समझाया और कहा कि मैं तुमसे कुछ कहूँगा नहीं। ठीक-ठीक बताओ कि क्या ले गये थे। लेकिन बिन्दू घबराया-सा, खोया-सा, धरती की ओर देखता रहा और नन्दन का बहुत आग्रह हुआ तो उसने बस इतना ही कहा कि मैंने कुछ नहीं लिया है।

नन्दन फिर भी खीझा नहीं। बोला—'अच्छा चल, देखूं, तू कूड़ा कहां फेंक आया है।"

बिन्दू पहले तो कुछ ठिठका, अनन्तर मुड़कर चुपचाप आगे हो लिया। उसके पैर मशीन की तरह चल रहे थे और कभी-कभी लगता था कि वह लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा। आखिर तीनों जने मकान के पिछवाड़े पहुंचे और बिन्दू ने एक स्थान की ओर संकेत करके बताया कि कूड़ा वहाँ फेंका है। नन्दन और मालती ने वह जगह देखी, उसके इर्द-गिर्द निगाह फेंकी पर कुछ दीखा नहीं। बिन्दू हर दिन वहां कूड़ा डालता था, चारों ओर कूड़ा-ही-कूड़ा बिखरा पड़ा था। नन्दन ने कहा—"बिन्दू, यों हैरान करने से क्या होगा? बता क्यों नहीं देता कि क्या लाया था?"

बिन्दू के होठ खुले, जैसे कुछ कहना चाहता हो, पर फिर बन्द होगये।

"हां, कहो, रुक क्यों गये?" नन्दन ने शांत स्वर में कहा।

"बाबूजी ··" बिन्दू फिर चुप।

"शाबास, कहो-कहो।"

"बाबू···जी, थोड़ी सी मेवा नीचे पड़ी थी। मैं उठा लाया।"

बिन्दू कह तो गया, पर जैसे वह अनुभव कर रहा हो कि दुनियां का जाने कितना गहरा पाप उसने कर डाला है।

"मैं कहती थी न" मालती बोल उठी, "कि यह कुछ-न-कुछ ले जरूर गया है। देखा, मेरी बात सच निकली न?"

"मेवा का तुमने क्या किया, बिन्दू?"

"खा ली।"

"इतनी जल्दी ? बिन्दू झूठ मत बोलो ! सच बता दो ।"

"उधर फेंक दी ।"

नन्दन और मालती ने देखा कि उसकी बताई जगह पर थोड़े-से काजू और कुछ किशमिशें पड़ी हैं । नन्दन ने बिन्दू के कंधे पर हाथ रखा और कहा—"मेरे साथ आओ । "

बिन्दू चुपचाप मालिक के साथ चल दिया । नन्दन उसे लेकर कमरे की ओर गया मालती ने कहा—"आज इसने मेवा ली है, कल को और कुछ उठा ले जायगा । एक बार नीयत बिगड़ी तो क्या फिर हाथ रुकता है ?"

नन्दन ने पत्नी की बात सुनी-अनसुनी कर दी । बिन्दू को साथ लेकर कमरे में गया और कनस्तर खोलकर उसमें से एक मुट्ठी मेवा उसके हाथ में देते हुए बोला—"बिन्दू लो खा लो ।"

पति के इस नरमी के व्यवहार से मालती आग-बबूला हो गई । बोली—"ऐसे ही तो नौकर बिगड़ते हैं । उसे कुछ कहना तो दूर, उल्टे उसकी खुशामद कर रहे हैं ।"

नंदन मुस्कराया । बोला—"मालती, चोर बिन्दू नहीं है, हम हैं । हम क्यों ऐसी चीजें खायं जो सबको नहीं मिलती ? इसी से तो चोरी की भावना को जन्म मिलता है । हम लोग रोज़ मेवा खाते हैं । एक दिन इस बेचारे का मन चल आया और थोड़ी सी ले ली तो क्या हो गया ?"

"मैं कब कहती हूँ कि कुछ हो गया । बात मेवा की नहीं है, नीयत की है । इसका जी चला तो मांग लेता । न देती तब कहता । घर में पचास चीजें रहती हैं । यों तो जिस पर मन आयेगा, उठाकर ले जायेगा । और एक दिन यही होना है । वह न करेगा तो तुम करवाओगे ।"

"मालती, यह बात नाराज़ होने की नहीं सोचने की है । जबतक सब चीजें सबको नहीं मिलतीं चोरी बन्द नहीं हो सकती । चोरी अच्छी नहीं है पर आज की स्थिति बड़ी लाचारी की हो गई है ।" नंदन ने समझाते हुए कहा ।

"देख लेना एक दिन यही बिन्दू घर में से ट्रंक उठाकर न ले जाय तो मेरा नाम मालती नहीं ।

इतना कहकर मालती रसोई में चली गई और नन्दन पुनः अपनी कुर्सी पर आ बैठा । पर मन उसका दूसरी ही दिशा में चल रहा था । थोड़ी देर वह सोचता रहा फिर उसने विचारों को समेटा और लेख पूरा करने में लग गया ।

लेख पूरा हुआ तो काफी देर हो चुकी थी । वह उठा और सीधा रसोई में पहुंचा

देखता क्या है कि मालती सिल पर चटनी पीस रही है। नन्दन ने कहा—"बिन्दू कहां है ?"

'मैं क्या जानूँ ?'

'और कौन जाने ?'

'तुम जानो और तुम्हारा लाड़ला बिन्दू जाने।'

'उसे निकाल दिया ?'

'निकालने वाली मैं कौन होती हूं !'

'कब से नहीं है ?'

'तभी चला गया था।'

'पानी भरने तो नही गया ?'

'नही।'

'फिर ?'

'मैं क्या जानूं !'

नन्दन थोड़ा हैरानी में पड़ा। मालती ने उसे देखा तो बोली—"तुम यहां के नौकरों को जानते नही। अपने घर में होता है तब भी उनका हाथ रुकता नहीं। कुन्दन के यहां कितना अनाज भरा है फिर भी उस दिन आंख बच गई तो काका के यहां से गेहूं ले ही गया।'

नंदन जानता है कि बहस का अन्त नही। उसने बात आगे नहीं बढ़ाई और तौलिया उठाकर स्नान करने के बाद उसने भोजन किया। थोड़ी देर पहले की बात का असर नन्दन और मालती दोनों के मन पर था। भोजन करते समय पति-पत्नी दोनों चुप रहे और खा-पीकर अपने-अपने काम में लग गये।

दोपहरी बीती और शाम होने को आई फिर भी जब बिन्दू न लौटा तो मालती के मन को अच्छा नहीं लगा। चौके में अब भी बिन्दू का खाना पड़ा था। झूठ बोलना तो क्या आखिर बालक ही तो है। उसने सोचा, भूखा जाने कहाँ भटक रहा होगा !' कई बार कमरे से बाहर आ-आकर मालती ने बिन्दू को देखा फिर बगीचे का एक चक्कर लगाया कि कहीं पेड़ के नीचे पड़ा सो न रहा हो। पर बिन्दू वहां कहां था जो मिलता ! मालती आकर पलंग पर पड़ गई और अपने को कोसने लगी कि जरा-सी बात को इतना तूल क्यों दिया ! थोड़ी-सी मेवा ले गया था तो क्या गज़ब हो गया था ?

सोचते-सोचते देर हो गई तो वह उठी और सहन में टहलने लगी। इतने में

कुंदन उधर से निकला तो मालती ने उत्सुकता से पूछा—कुंदन तूने बिन्दू को देखा है क्या ?'

"बिन्दू ! कुन्दन बोला अरे वह तो नदीवाली कोठरी में पड़ा है ।'

मालती तत्काल पैरों में चप्पल डालकर बाहर हो गई ।

लौटी तो बिन्दू उसके साथ था । बांह पकड़ कर नंदन के कमरे में ले गई और बोली—-देखी तुमने इसकी बात ! यहां से गया है तब से वहाँ कोठरी में पड़ा है ?'

नन्दन ने कहा—-'क्यों रे वहां क्या कर रहा था !'

बिन्दू चुप ।

'मैं पूछता हूं वहाँ क्या कर रहा था ?'

फिर चुप ।

'अरे बोलता क्यों नहीं ? मुंह में जबान नही है ?'

बिन्दू की आँखें डबडबा आईं ।

मालती ने कहा—'इसका पागलपन दखो । सबेरे से कुछ नहीं खाया और भूखा-प्यासा वहां पड़ा है ? चल खाना खा ।'

नंदन के कुछ कहने से पहले ही वह उसे चौके में ले गई और स्वयं परोसकर उसे खिलाने लगी । बोली—'भर-पेट खा लेना । भूखा मत रहना ।'

नंदन ने पत्नी की बात सुनी और एक प्रसन्नता-भरी मुस्कराहट उसके चेहरे पर दौड़ गई ।

विष्णु प्रभाकर

आकाश की छाया में

●

आनन्द उन दिनों बहुत परेशान था। बोर्ड के स्कूल में पांच अध्यापिकाओं की आवश्यकता थी और एक हजार प्रार्थना-पत्र आ चुके थे। आना अभी बन्द नहीं हुआ था और जैसा कि अभावग्रस्त देशों की परिपाटी है—बहुत-से सिफारशी पत्र भी उनके साथ-साथ आ रहे थे।

उन पत्रों के लिखने या लिखवाने वालों में मंत्री, सचिव, बड़े-बड़े सरकारी अफसर, जन-प्रतिनिधि, दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति, सभी थे। उनमें अपरिचित भी थे और परिचित भी; ऐसे परिचित कि एक बंधु ने एक दिन रात को बारह बजे टेलीफोन किया—"हलो, हलो, आनन्द !"

ऊंघता हुआ आनन्द बोला—"कौन है ?"

"कौन है, अच्छा, पहचानते भी नहीं ! अरे, अभी से यह हाल है !" गुल्ली-डंडा किसके साथ खेलते थे, लड़ते किससे थे, कुट्टी किससे करते थे......"

अब आनन्द है कि खीझ रहे हैं, सोच रहे हैं।

"हलो, हलो, सो गए ? अरे, मैं हूं मदन, मदन टोपा।"

"मदन, ओह मदन तुम ! रात को बारह बजे कहाँ से बोल रहे हो, यार ?"

"बोलूंगा क्या जहन्नुम से ! अरे, तुम्हारे ही शहर में हूँ।"

"यानी यही। नहीं, नहीं तुम झूठ बोल रहे हो।"

"यानी हम झूठे भी हैं। भले मानस, पाँच वर्ष से यहीं हूँ। 'मेहता एण्ड पुरी' में।

"कमाल करते हो, यार, पांच वर्ष से हो और पता तक नहीं दिया।"

मदन साहब खूब हंसे। कुछ इधर-उधर की बातें हुई। फिर बोले—"अरे भाई, सुना है तुम्हारे बोर्ड के स्कूल में कुछ अध्यापिकाएं रखी जा रही हैं।"

आनन्द का माथा ठनका, बोला—"अरे हां, वह तो चलता ही रहता है।"

"तो हमें भी चला दो न ! मेरी छोटी साली है, नाम है कुसुम !"

"तो यह बात है। साली की चिन्ता है।"

"चिन्ता पूरी है, यार, थर्ड डिविजन है। इसलिए कष्ट दिया।"

"कष्ट तो क्या है पर......।"

"तो अब मैं निश्चिन्त हूं, तुम जानो तुम्हारा काम जानें।"

अब नियम से हर रोज टेलीफ़ोन एक बार तो आ ही जाता है। दो-तीन बार स्वयं कृपा कर गए हैं। कुसुम भी दर्शन दे गई है। एक मंत्री के निजी सचिव ने केवल उसके लिए ही आनन्द को चाय पर बुलाने की कृपा की है। प्रयाग से उनके मामा के साले का पत्र भी आया है।

और पदमा की तो बात ही क्या? रजिया, राजरानी, पुष्पा, नीला, रोज़ और ऐसे ही अनेकानेक नारियों का इतिहास आनन्द को बार-बार सुनना पड़ा है। रजिया आजकल जिस पद पर है वहां वेतन कम है। राजरानी के विवाह योग्य दो लड़कियां हैं। रोज़ पति के पास आना चाहती है। नीला एम. ए. पास है। पुष्पा के पति अच्छे पद पर है। चार सौ पाते हैं; पर खर्च है कि पूरा ही नहीं होता। वे लोग आनन्द के अच्छे खासे परिचित हैं, लेकिन पद्मा तो आनन्द के एक परम मित्र की मंगेतर है और वह परम मित्र एक प्रसिद्ध पत्रकार है......

बेचारा आनन्द! उसे ऐसा लगता कि वह इस तूफान में डूब जाएगा। लेकिन डूबना तो मना है और तैरना असम्भव! परिणाम यह होता है कि आनन्द का दम घुटने लगता है। वह कुछ चाहने लगता है....कुछ...

आखिर आनन्द ने देखा कि गणित के अनेक नियम काम में लाकर कार्यालय ने पचास प्रार्थियों को मुलाकात के लिए बुला भेजा है। उसने पाया, उनमें से ४९ प्रार्थियों से वह खूब परिचित है। पचासवें प्रार्थना-पत्र के बारे में उसे किसी का पत्र नहीं मिला। वह किसी सरला नामधारी नारी का है। वह सोचने लगा.......

तभी एकाएक सोचना बन्द हो गया। पत्रकार मित्र आगए थे। उन्होंने बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, कहा—"अब समझूं कि पदमा का लिया जाना निश्चित है?"

"कैसे कह सकता हूं?"

"अब भी कुछ कहना है!"

"अभी तो कहना है। पचास को बुलाया है, लेना पांच को है।"

"अरे वह तो दफ्तर का काम है, होता ही है, लेकिन तुम्हें जिनको लेना है उनको लेना है। समझ लो तुमने हमारी शादी में यही भेंट दी है।"

आनन्द ठहाका मारकर हँस पड़ा। पत्रकार ने उसमें पूरे दिल से भाग लिया। कहने लगे—"यही होता है, भाई। देखो, अभी शिक्षा विभाग के डायरेक्टर के पास से आ रहा हूं। भतीजे को 'नवीन पाठशाला' में दाखिल कराना है। किस-किससे नहीं कहा, लेकिन काम नहीं बना। आखिर डायरेक्टर से कहना पड़ा।"

सहसा आनन्द बोला—"हाँ प्रदीप! तुमने हमारी योजना पढ़ी?"

'नहीं तो...।"

"नहीं, क्यों ? सभी पत्रों को तो भेजी थी।"

"भेजी होगी, किसे अवकाश है। लाओ मुझे दो। कल सभी पत्रों में उस पर चर्चा मिलेगी।"

आनन्द ने कृतज्ञ होकर योजना प्रदीप को दी। वह गए कि मदन आ गए। वह अपने भाई को इंजीनियरिंग कालेज में भेजना चाहते थे। उसी के लिए सिफारिशी पत्र लिखवा कर लाए थे। मार्ग में आनन्द को धन्यवाद देने रुक गए। उन्हें पूरी आशा है कि जैसे अब तक किया वैसे ही वह आगे भी कुसुम की मदद करेंगे। कुसुम स्वयं भी आई। इसी तरह पुष्पा, नीला, रोज, राजरानी, रजिया आदि या तो स्वयं आईं या उनके टेलीफोन आए या अभिभावक आए, पर सरला है कि स्वयं तो क्या आती, किसी ने उसकी ओर से धन्यवाद के दो-एक शब्द तक न भेजे।

कौन है यह सरला ?

आनन्द ने मुलाकात के दिन ही उसे देखा, देखता रह गया। न रूप न रंग, न प्रसाधन, पर फिर भी जैसे समूचे कमरे में उसकी छाया भर उठी है। प्रत्येक प्रश्न को उसने ध्यान से सुना और विनम्रता से उनके उत्तर दिए। वे उत्तर न किसी पुस्तक में लिखे थे, न किसी से पूछ कर रटे गए थे। उत्तर की गहराई से निकले नपे-तुले शब्दों से जैसे प्रश्नकर्ता स्वयं उलझ गए। इसलिए जब पचास में से पांच का चुनाव हुआ तो सरला उनमें न थी। आनन्द ने सब से पहले उसी का नाम चुना था, पर जब मित्रों के पत्र और प्रार्थियों के चेहरे उसके स्मृति-पटल पर उभरने लगे, तब उसने पाया सरला का नाम वहां नहीं रह सका है। वह क्या करे ? और, वह तो वह, उसके दूसरे साथी भी उससे सहमत हैं। उन्होंने कहा—"सरला की योग्यता में कोई संदेह नहीं पर हमें जैसी अध्यापिका चाहिए वैसी वह नही है। वह गहरी है, पर साथ ही बहुत गम्भीर भी है। योग्य है, पर उसका प्रभाव छा जाने वाला है। ऐसा जान पड़ता है कि उसके अन्तर में कहीं टीस है, जो उसे खुलने नही देती। ऐसी अध्यापिका के हाथ में बच्चियों को सौंपना खतरे से खेलना है।"

इस सर्वसम्मत निर्णय से आनन्द को बड़ी राहत मिली, फिर भी उस रात वह सो न पाया। बहुत देर तक टेलीफोन आते रहे। पांचों प्रार्थियों के अभिभावक उसके अत्यन्त कृतज्ञ थे। उन्ही के शब्दों में आनन्द ने उन्हें उबार लिया था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे उसका बदला चुकाया जा सकेगा। पदमा तो भावावेश में ऐसी हो रही थी जैसे अब रोई तब रोई। और कुसुम सचमुच रो पड़ी। आनन्द भी कम भावुक नहीं है। उसे भी कण्ठावरोध हो आया। आधी रात इसी झमेले में बीत गई तो उसने सोने की चेष्टा की, पर तभी उसे लगा जैसे उसके हृदय में टीस उठ रही है। 'क्या कारण हो सकता है ?' उसने सोचा।

उत्तर मिला—"तुमने जो चुनाव किया है वह योग्यता के आधार पर नहीं किया है।"

"वह तो सदा ही ऐसा होता है।" और उसने करवट बदल कर आंख मीच लीं, पर उस अन्धकार में तो सरला की मूर्ति और भी स्पष्ट हो उठी। फिर तो ज्यों-ज्यों वह आंखों के द्वार और जोर से बन्द करने का प्रयत्न करता त्यों-त्यों सरला का रंग और भी निखरता चला आता। तब घबराकर उसने आंखे खोल दीं। उसे लगा जैसे उसने कोई पाप किया है, जैसे उसने किसी निर्दोष की हत्या कर डाली है...वह फुसफुसाया--"ऐसा तो कभी नहीं होता? मित्रों की बात तो माननी ही पड़ती है। सभी मानते हैं। बच्चे को स्कूल में दाखिल कराना हो, मकान किराए पर लेना हो, पुस्तक कोर्स में लगवानी हो, मुकदमे में न्याय करवाना हो, यहाँ तक कि किसी प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर करवाने हों, तो यह सब मित्रों की सिफारिश से ही होता है। आखिर यह मेल-जोल, ये मित्र हैं, किस दिन के लिए...।"

"पर यह सब बुरा है।"

'जिस काम को सब करते हैं, वह बुरा नही होता।"

"लेकिन सरला ने नही किया।"

"हां, सरला ने नहीं किया। क्यों नहीं किया! वह एक बार भी मेरे पास आती तो क्या उसे नौकरी न मिलती! वह कितनी योग्य है, कितनी शांत-सौम्य?...लेकिन वह आई क्यों नहीं! क्यों उसने अभिमान को अपने ऊपर हावी होने दिया? क्यों.. क्यों...!"

"और जब उसने अभिमान किया है तो भुगते। मुझे क्यों परेशान करती है?"

और आनन्द ने फिर नेत्र मूंदकर सरला से मुक्ति पानी चाही पर सरला ने उसे पकड़ा कहाँ था जो मुक्ति मिलती! वह तो स्वयं उसीकी उपचेतना थी जो उससे छल कर रही थी। इसलिए वह रात भर लुका-छिपी का खेल खेलता रहा। सवेरे उठा तो अंग-अंग दर्द कर रहा था। उसने किसी से कुछ नही कहा। चुपचाप घूमने के लिए निकल पड़ा। कुछ देर चलने के बाद उसने अपने आपको वहाँ पाया जहां एक ओर पंचमंजली और आलीशान इमारतें खड़ी थी और दूसरी ओर, ठीक उनके पीछे वे गन्दे और बदबूदार अस्तबल थे, जिनमें आजकल घोड़ों के स्थान पर सभ्य इंसान रहते थे; यह देखकर आनन्द का मन भर आया। लोग उसी गन्दी और पानी मे भरी सड़क पर सो रहे थे। कुछ खाट पर थे, कुछ ठेलों पर। एक बुढ़िया अपने जैसी ही एक आराम कुरसी पर सोने का नाट्य कर रही थी। कुछ युवक सूखी जमीन पर एक-दूसरे मे उलझे पड़े थे। न बिछावन, न ओढ़ना, शरीर पर भी दूसरा वस्त्र नही।

पास में ही गाय-भैंस और घोड़े पिछले दिन की थकान उतार रहे थे। उनसे बचता हुआ वह एक अस्तबल के सामने आ खड़ा हुआ। यही सरला का पता था।

सामने देखा–किवाड़ खुले है और अन्दर का सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कोई कमरा नहीं, परदा तक नहीं, पर जो है उसमें नियम है। सामान संक्षिप्त है, पर व्यवस्थित है। बीच में एक खाट बिछी है, जिसपर एक पुरुष लेटा है। शायद पति है। उसीके पास फरश पर सरला बैठी है। उसका एक हाथ पति के वक्ष पर है. दूसरा शिशु की पीठ पर जो अपने तीन भाई-बहनों के साथ मां के पास धरती पर लेटा है।

आनन्द का मन और भीग आया। वह खोया सा आगे बढ़ा तभी उसे लगा जैसे वे लोग बातें कर रहे हैं। वह ठिठक कर पीछे हट गया। एक क्षरण बाद पुरुष का निराशा से काँपता हुआ स्वर उसके कानों में पड़ा।

"तो यह स्थान भी नहीं मिला ?"

सरला बोली—"नहीं, नहीं मिला। आशा भी नहीं।"

पुरुष ने जैसे पूरी बात नहीं सुनी, कहा–"मैंने पहले ही कहा था, पर तुम सुनो तब न ! बिना सिफारिश क्या कहीं कुछ होता है !"

सरला बोली–"जानती हूं, पर हमारा ऐसा कौन परिचित है जिसका प्रभाव उन पर पड़ सकता। अब तो एक ही काम हो सकता है।"

पुरुप ने उठते हुए पूछा–"कौन-सा काम ?"

इस बार आनन्द ने दृष्टि चुराकर फिर भीतर झाँका। देखा-पुरुष के मुख पर प्रभु की करुणा बरस रही है, नेत्र ऊपर को उठे हैं। वह कांप उठा–ओह, यह तो नेत्र-हीन है...

पुरुष फिर बोला–"तुम क्या करने को कहती हो ?"

सरला दो क्षरण चुपचाप बैठी रही। तेजी से बेटे की पीठ पर हाथ फेरती रही। उत्तर न पाकर पुरुष ने अपने हाथ से सरला का मुंह टटोलना शुरू किया, टटोलता रहा फिर फुसफुसाकर कहा–"कहो क्या करने को कहती हो, मैं बुरा न मानूंगा।"

सरला के गले में वाक् रुकी थी। सहसा पति के मुंह की ओर मुंह उठाकर वह बोली–"कहती थी अब चिट्ठी से काम न चलेगा।"

"तो।"

"बोलो सरला, बोलो।"

"मुझे शरीर का सौदा करने की आज्ञा दो। बोलो दोगे...?"

निमिष मात्र में यह भूकम्प जैसा स्वर आनन्द के कानों से होकर त्रिलोक में व्याप्त हो गया। जब टूटे हुए ग्रह की तरह वह वहां से भागा, तब गन्दे पानी के छींटों से विशाल अट्टालिकाओं की दीवार गन्दी हो गईं तथा धरती पर सोए स्त्री-पुरुष चीखकर उठ बैठे।

लेखराम

जलते दीये

●

अपने असमर्थ, थके से, शरीर को लेकर जब मुनैना चारपाई पर लेटा, तब अन्धकार से पूर्ण उस कोठरी में उसने उन समस्त दीपों को अपनी आंखों के सन्मुख झिलमिल-झिलमिल करते पाया, जिन्हें वह अभी सड़क पर खिलखिलाते देख आया था। दीपों की टिमटिमाती लम्बी कतार उसकी आंखों के सामने दूर तक फैली थी और दूसरी ओर का छोर उसे दिखाई नहीं दे रहा था। उसकी आंखों, मस्तिष्क और हृदय, यहां तक कि दिखाई न दे रहे थे हाथ-पांव और उनकी उंगलियों के दोनों पोरवों से भी एक नन्ही ज्योति उग आई सी उसे प्रतीत हुई; और इसने एक हल्की उष्णता से भर धीरे-धीरे उसके सारे शरीर में आग लगा दी। मुनैना इसमें जलने लगा।

आंख खोल अपने माथे के ऐन बीचोंबीच तथा चिपके हुए कपोलों के गड्ढों में उसने बड़े-बड़े कुछ दीपों को जलते हुए देखा। एक ऐसा ही दीप ठोड़ी पर भी रखा उसे लगा, जिसका भार असहनीय था और जिसकी उठती हुई लौ उसकी नासिका में प्रविष्ट हो उसे जलाती प्रतीत हुई। पलकों को नीचे गिरा जब उसने इस पर दृष्टि डाली, तब अपनी नासिका के अग्र भाग पर रखे एक नन्हें से दीपक को आग उगलते देख वह स्तम्भित रह गया। तब ही उसे ज्ञात हुआ कि उसकी पलकों पर भी अत्यन्त सूक्ष्म, चमकीले दीपक चिनगारी के रूप में बैठे अग्नि कणों को उगल रहे हैं। असंख्य दीपक जल रहे हैं, शरीर का कोई कोना भी इनसे शेष नहीं, और इस दीपमाला के कारण उसके रोम रोम में आग लग गई है। इससे वह बुरी तरह जल रहा है।

भय से भर मुनैना ने आंख मीच लीं। आग से बुरी तरह भुनते हुए उसने अनुभव किया कि छोटे-बड़े असंख्य दीप उसके अंग प्रत्यंग को शनैः शनैः छोड़ उसकी बन्द आंखों के बीच आ तैरने लगे हैं, और मालाकार में उन्होंने अपना पैशाचिक झिलमिल नृत्य प्रारम्भ कर दिया है। अपनी-अपनी दीप शिखाओं से उसके प्राणों को छू वे उसे निरन्तर झुलसे दे रहे हैं।

मुनैना को पसीना छूट आया। अपनी आखों के सामने झूम-झूम कर, मानो लहरों पर तैर रहा हो, इस प्रकार एक अत्यन्त चमकीले दीपक को उसने जगमग-

करते पाया। सहमा आगे बढ़ता हुआ वह धीरे-धीरे उसकी आंख की पुतली के ऐन बीच स्थिर हो गया। आंखों में जलन महसूस करते हुए अपनी उंगलियों से उन्हें मसल जब उसने खोला तब आंखों के सामने रतना को निश्चल खड़े पाया। हाथ में फूटी थाली लिये, उसमें एक नन्हा-सा दीपक सजाये वह उसके स्वागत के लिए खड़ी थी। आंखे उसकी मुस्करा रही थी। लेकिन चेहरा? देखते ही भय से भर मुनैना ने आंख मीच ली। अगले ही क्षण आंख खोल उसने सिसक-सिसक कर रतना के कंकाल को तोड़ते पाया। उसके चेहरे पर भूख और मृत्यु की भयंकरता दौड़ रही थी।

एक पुराना घाव बुरी तरह छिल आया। मुनैना का हृदय मोटी-मोटी बून्दों में रक्त फेकने लगा। यह एक-एक बून्द भूमि पर गिरने से पूर्व ही न जाने कहां विलीन न होती हुई मुनैना को सुखाने लगी। मुनैना के भीतर की आग भड़क उठी और अन्दर ही अन्दर एक प्रलयंकारी ज्वाला मे भुनता हुआ वह सुन्न हो आया। उठती हुई धूम्र-राशि ने उसका दम घोट दिया और उसका श्वास भीतर ही भीतर इकट्ठा हो उसके शरीर और अणु-अणु को फुलाने लगा।

सिसकती रतना के दीपक की लौ निरन्तर बढ और भी अधिक प्रज्वलित हो लम्बी होती मुनैना को दीख पड़ी। इस बढते हुए प्रकाश ने सारी स्थिति और भी स्पष्ट कर दी। हड्डिया और उस पर चिपटा सूखा गोश्त। आंख के स्थान पर एक अत्यन्त गहरा काला गड्ढा। बांस की खरपच्ची-सी भूत की टांगे। लम्बी-लम्बी उंगलियो से जुड़ी एक भयानक आकृति वाली काली हथेली, मानो शैतान का पंजा हो।

मुनैना काप उठा। उसका दम सूख आया। घुटे हुए प्राणो मे तूफान उठ खड़ा हुआ। लेकिन दीपक की लौ खिचती ही गई। सुरसा के बदन के समान उसका आदि-अन्त नजर न आने लगा और इस पहले से भी अधिक चमकीले प्रकाश में रतना की गोश्त की छोड़ आई एक-एक हड्डी चमकने और विभिन्न आकृतियों में उसकी आंखों के सामने भयकर ताण्डव-नृत्य करने लगी। खरपच्चियों का राक्षसी खटापट का शब्द उसे सुनाई दिया। नासिका के स्थान पर दो काले बिन्दु छिद्रों से उसने श्वांस को आते-जाते देखा; और इसने उसके सांस में एक प्राण-सोखनी बेचैनी भर दी।

आंखों को मीच, अपने प्राणों में न जाने कहां का श्वास भर, वह इस टिम-टिमाते और निरन्तर अपनी लौ बढ़ाते दीपक को बुझाने की चेष्टा में लग गया। इस भीषण ज्वाला से हृदय को झुलसाने में वह असमर्थ था। प्राण रहते वह इसे बुझाने का प्रयत्न करेगा और उसने अपने वेग को दुनगा—चौगुना कर दिया। दीपक बुझता

है या नहीं, इसकी चिन्ता न कर वह निरन्तर मुंह फुला कर फूंकें मारे गया। कुछ क्षण के अनन्तर उसने अनुभव किया कि दीपक बुझ गया है और एक शांति-सी महसूस करते हुए उसने एक लम्बी ठण्डी साँस भरी।

कुछ क्षण उपरान्त आंख खोलने पर उसने उसी प्रकार दीपों को रहट के पीपों के समान गोल-गोल चक्कर काटते पाया। अब उनकी गति में पहले से भी अधिक तीव्रता थी। एक टक उन्हें देखते हुए सहसा फिर एक अत्यन्त चमकीले दीपक को उसने आगे बढ़ आते देखा। बिजली-सा कौंधता यह उसकी पुतली में स्थिर हो गया। मुनैना ने अनुभव किया कि पहले से भी कहीं तेज आग इसमें भरी है। इसने उसकी पुतली को ही फूंक डाला है। अपनी जल रही आंखों की बेचैनी दूर करने के लिये चमड़े के खोल के अन्दर ही घुमा कर जब उसने सहसा आंख मीच ली, तब पुतली के बहुत दूर खोपड़ी के न जाने किसी सुदूर भाग में उसने एक अस्पष्ट धुंधली सी छाया देखी। लेकिन इसे पहचानते उसे देर न लगी। 'मुनुआ'। उसके भिंचे हुए होठों से यह अस्पष्ट ध्वनि निकल गई।

खट-खट-खट, दीये की बत्ती के जलते से हुए प्रकाश में उसने मुनुआ को आगे बढ़ने देखा। ढोल सा पेट, छाती के स्थान पर पसलियों की काली लकीरें, गर्दन के स्थान पर एक अन्धेरी पट्टी। बड़ा सा, भयानक दीख रहा—सिर। आँखें सूझ कर बिल्कुल बन्द हुईं। चेहरा बिल्कुल पीला, मानो हल्दी से रंगा हो, तथा गड्ढों से भरा होने के कारण काले धब्बों और पट्टियों से युक्त। दांत भीतर रहने की जगह न पाकर बाहर झाकते हुए। भय के कारण मुनैना चीख उठा। आंख जोर से मींच खट-खट की उस भीषण ध्वनि को न सुनने की वह प्राणपण से चेष्टा करने लगा।

दीपक की ज्योति बढ़ आई। उसका प्रकाश और भी अधिक चमकीला हो आया। मुनैना ने उससे बचने के लिए अपनी आंखों को हथेलियों से कस कर बन्द कर लिया। लेकिन भूत की सी एक छाया निरन्तर बढ़ती हुई उसे दिखाई दी। अनुपात से कही बड़े हाथ-पैर, खोपड़ी और पेट। बाकी सारा शरीर लुप्त प्राय हो उसके स्थान पर धुंधली सी छाया। मुनैना को बेहोशी हो आई। भय से कांपते हुए उसने आव देखा न ताव, मुंह को फुला उसके गोल छेद से फूंक भरने लगा। वह निरन्तर फूंकें मारता गया, तब तक जब तक कि फूंक मारने की उसमें शक्ति रही।

आंख खोल कर देखने पर उसने पाया कि उसकी पुतली में स्थिर दिया बुझ गया है। एक बार फिर उसकी आंखों में वृत्ताकार घूमते दीये टिमटिमाने लगे। पहले से भी अधिक गति अपने हृदय मे भर वे बाइसकोप के चलचित्रों के समान भागे जाते उसे प्रतीत हुए, और जल्दी-जल्दी उसके हृदय को छू उसमें एक आग भरने लगे। सहसा ही फिर एक तारे सा चमकता दीया इस माला से टूट मुनैना की आंखों की पुतली के

ऐन बीचों बीच की ओर बढ़ने लगा। इसे माला से अलग होते देख ही मुनैना ने अपनी आंखें भय से भर कस कर मींच लीं।

लेकिन उसने पाया कि इससे भी दीये के आगे बढ़ने और उसकी गति में कोई अन्तर नहीं आया है। आंखों को ढके, चमड़े के परदे को चीर वह भीतर प्रविष्ट होता हुआ मुनैना को स्पष्ट दीख पड़ा। भय से बुरी तरह कांपते हुए उसकी आंखें आप ही आप भर आईं। क्षण भर को चौंधियाने वाले प्रकाश में नन्हीं सी सूरतों की अस्पष्ट झलक उसे दिखाई दी। लेकिन अगले ही क्षण उसने पाया कि घघरी लपेटे और एक चिथड़ा ओढ़े भीषण अंधेरी छाया के अतिरिक्त वहां कुछ नहीं और यह छाया उसकी ओर बढ़ रही है। वृक्ष की टहनियों के समान आगे बढ़े हुए दो सूखे, काले, लम्बे, मिट्टी के हाथों को उसने अपनी ओर आते देखा। उसे भय लगा कि कहीं ये हाथ आगे बढ़ उसकी गर्दन को न दबोच लें। भय से भर वह कांप गया। होंठ सूख आये और जीभ ऐंठ गई, फिर भी किसी न किसी प्रकार शक्ति जुटा उसने मुंह को फुलाया और फू फू की व्यर्थ की सी चेष्टा करने लगा।

उसे पता नही कि कब तक वह ऐसा करता रहा। लेकिन कुछ क्षण उपरान्त थोड़ा स्वस्थ हो होश में आने के उपरान्त उसने पाया कि उसकी आख की पुतली को विद्युत की नाई चकाचौंध कर कौंध गया दीपक अब बुझ गया है और दूर दूर आंख की गहराइयों में जलते हुए दीपक उसी प्रकार वृत्ताकार नाचने लगे हैं, जिनकी गति प्रतिपल बीतते प्रतिक्षण तेज होती आ रही है। अब वे रहट की नाई नियमित रूप में एक के बाद दूसरा कर नाचते हुए सामने न आ शृंखला विहीन हो गोल-गोल नाच रहे हैं, मानों असंख्य रहटों पर बंधे पीपे हों, और स्वेच्छानुसार विभिन्न दिशाओं में घूम रहे हों।

आग ! आग ! आग ! ! एक भीषण आग से भुनते हुए वह दीयों के इस प्रलयंकर नर्तन को देखने लगा। दीये आते और उसकी आंखों को छू उन्हें जला फिर लुप्त हो जाते। इसके अनन्तर फिर नये दीपकों का तांता लग जाता। यह क्रम कुछ ही देर जारी रहा होगा कि सहसा एक बार फिर इस माला से एक दीया टूटा। मुनैना को इसका पूरी तरह आभस हो, इससे पूर्व ही टूटते हुए तारे के समान वह उसकी पुतली की ओर तेजी से बढ़ उसमें स्थिर हो गया। मुनैना को अपनी आंख आग का गोला प्रतीत हुई और इस दहकती हुई आग में एक अस्पष्ट जलती हुई मूर्ति उसने देखी। एक वृद्ध का यह चित्र इसे पहचान भी न पाया था कि एक कंप-कंपाने वाला दृश्य आ उपस्थित हुआ। खून में डूबा लाल - लाल चमक रहा एक सिर मुनैना की आंखों के सम्मुख था, जिससे फव्वारा सा छूट रहा था। इस चेहरे के पूरे विवरण पर ध्यान न दे कांपते हुए हाथों से उसने आंख मींच ली और बिना

कुछ सोचे ही मुंह में हवा भर वह इस भयंकर दीपक को बुझाने के लिए फूंक मारने लगा।

आग और तेजी से उसको झुलसाने लगी और इससे बुरी तरह जलते हुए एक बार उसने दीपमाला को फिर तैरते पाया। अब इनकी गति अत्यंत तीव्र हो गई थी। हिंडोलों की नाईं ये अत्यंत तीव्र गति से आ-जा रहे थे। एक, दो, तीन। और एक दीया फिर पंक्तियों को तोड़ फूट निकला। आंखों को कौंधाने वाले इसके प्रकाश में मुनैना ने कुछ देखा कि नहीं इसका ज्ञान नहीं, लेकिन एक बार थर-थर कांप आंख मींच वह मुंह फुला इसे बुझाने में लग गया।

कुछ क्षण पश्चात आंख खोल देखने पर एक बार फिर दीपों की पंक्ति उसे अत्यन्त द्रुतगति से चक्कर काटती दीख पड़ी। एक न जाने कैसी हलचल हुई कि उसने पाया कि दीपमाला प्रकाश की एक चमकीली पट्टी में परिवर्तित हो गई है जो दूर-दूर गहराइयों में नदी के समान तैर रही है और उसके हृदय और शरीर को छू जाती है। इससे इतनी अधिक तीक्ष्णता उसे प्रतीत हुई कि वह पूरा का पूरा जल उठा। चारपाई पर पड़े-पड़े वह झुलसने लगा और स्वयं चारपाई भी आग उगलती उसे प्रतीत हुई।

तब कांपते हुए उसने पाया कि चमकीली पट्टी सहसा तड़-तड़ कर टूटने लगी है। एक-एक दीप टूट कर उसकी आंखों की पुतली की ओर बढ़ रहा है। वह कौंध कर उसे जलाये जा रहा है और इस निरन्तर जलने से उसकी आंख की पुतली एक भयंकर प्रकाश उगलने लगी है, जिसमें सब कुछ स्पष्ट है। क्षण भर में ही उसने अपने जीवन के समस्त अरमान, अभिलाषायें इस प्रकाश में भीषण रूप में कराहते पाये। तरह-तरह के कंकाल अपनी नारकीय हड्डियों को कंपकंपाते, दांत निकालते उसके सामने नाचने लगे। इनकी खड़खड़ाहट से तरह-तरह की आवाजें उठीं, जिनमें भूख, प्यास, पशुता, निर्दयता, पाप और दुस्साहस आदि सबका शोर गरजता हुआ सुनाई पड़ा। खून की कीचड़ सी काली नदी को धुआंधार गति से उसने बहते देखा, जिसमें कटे-फटे रुण्ड-मुण्ड, सिर-पैर उछाल-उछाल कर बड़ी भीषणता से नर्तन और गर्जन कर बहे चले जा रहे थे। इनके पीछे अग्नि का एक बेडौल हजारों विकृतियों से भरा पिण्ड नाचता दीख पड़ा, जो गोल-गोल लुढ़क उसके रोम-रोम, घर, चारपाई और दीवारों तक में आग सुलगा रहा था।

मुनैना ऊपर से नीचे तक उबल उठा। पसीना छूट आया। बड़ा भयंकर दृश्य था और तब ही उसने अनुभव किया कि यह भीषणता निरन्तर बढ़ रही है। जलते हुए दीपक प्रतिक्षण दीपमाला से टूट उसकी पुतली में कौंध रहे थे और उस दृश्य के नारकीयपन को प्रकाशित कर उसकी भीषणता में वृद्धि कर रहे थे। खड़खड़ाहट से

उठ रही ध्वनि ने अपनी विविधता, विभिन्नताएं, खो एक कर्ण-कटु कंपकंपा देने वाले चीत्कार का रूप धारण कर लिया था। खून की नदी से ऊपर उठ मांस के लोथड़े आकाश में छलांगें मारने लगे और मुण्ड-विहीन कंकाल सिर के बल खून के फुव्वारे उगलते हुए आकाश में लटके प्रतीत होने लगे। निरन्तर लुढ़क रहे अग्नि पिंड ने हजारों जिह्वाएं खोल, उन्हें लपलपा, चारों ओर की हवा को चाटना शुरू कर दिया। उसके अत्यन्त अग्नि भरे अग्र भाग मुनैना के शरीर को छूते-से प्रतीत हुए, जिसके कारण उसकी देह में आग बल उठी और धुएं के रूप में लपटें उठने लगी।

मुनैना का रोम-रोम चिनगारी बन गया। जल कर कोयला सा होते हुए वह अपने चारों तरफ लिपटे सर्वनाश का चित्र देख रहा था। जलते दीपक टूटते थे और इस भयंकरता में और भी रंग भर जाते। ये निरन्तर अधिकाधिक भयंकर दृश्य उपस्थित कर रहे थे, जिसे देखने की शक्ति मुनैना में नहीं थी। लेकिन इसके विपरीत वह इतना भी साहस अपने में नहीं पाता था कि इस अतीत को स्मृति-पटल पर लाने वाली उज्ज्वल, पर भीषण, अनन्त दीपमाला को बुझा सके। इसलिए आँख फाड़े वह सब कुछ देखे जा रहा था।

एक असहनीय पीड़ा से भुनते हुए सहसा ही मुनैना का जलता हाथ अपनी आंखों पर चला गया। उसने कस कर आंखों को हाथों से दबा लिया। अपनी दीन अवस्था, लाचारी को जानते हुए उसने और कोई चारा न पा, अपने प्राणों में भरी जरा सी वायु को बड़े प्रयत्न से धकेला। 'फू-फू' वह धीरे-धीरे सास छोड़ने लगा और उन अनन्त जलते दीपकों को उस समय बुझाने की व्यर्थ कोशिश में लग गया जब कि उसकी कोठरी से बाहर दुनिया अगणित दीपों को अपने हाथों जला दीपमालिका मनाने में संलग्न थी।

प्रभाकर माचवे

दरबार ड्रेस

●

यह उस जमाने की कहानी है जब हमारे देश मे छोटी-छोटी रियासतें हुआ करती थी। हर ठिकाने का ठिकानेदार और रियासत का हिज हाईनेस अपने आप को नवाब वाजिदअलीशाह या महामण्डलेश्वर महाबलाधिपत्य सम्राट चक्रवर्ती से कम नहीं समझता था। जिंदगी के कई पहलुओं में रंगीनी थी, पर साथ ही हंसने का भी मसाला काफी था। ऐसी ही एक छोटी रियासत में साल में एक बार महाराज साहेब अपने महाराजपन का खिराज दरबार के रूप में जरूर वसूल करते थे। अन्यथा अपने क्षत्रियत्व का वह और कहाँ प्रताप दिखा पाते! उसे दिखाने के दो ही स्थान थे—महल में अपना जनानखाना और बाहर दरबार में अपना उत्सव।

दिल्ली दरबार कैसा रहा होगा, पता नही पर किवदन्ती थी कि वर्त्तमान महाराज (जो नाबालिग थे) के दादा के पिता ने जार्ज पंचम से हाथ मिलाना स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि यह हमारे हिन्दू शास्त्र और धर्मग्रन्थों के खिलाफ था। 'विदेशी भाषा न सीखो' का प्रतिपालन तो अभी तक, यानी रियासत खालसा होने से पहले तक, महाराज करते ही थे।

मगर जार्ज पंचम ऐसे कैसे मानने लगा! उसने महाराज के दादा के पिता के भुजदण्ड का माहात्म्य पहचान लिया था। नतीजा यह हुआ कि बहुत अनिच्छापूर्वक उन्होंने इस तरह से हाथ मिलाया जैसे कोई झींगुर हाथ पर चढ़ आया हो। कहते हैं कि वहां से आते ही महाराज के दादा के पिता ने सचल स्नान कर लिया। अंग्रेज साहब से छूत लगे जरी के कपड़े नौकरों को दे दिये।

इस महादेश में परिवर्तन आनन फानन घटित हो जाते हैं। ऐसे साहब का मुख देखने पर दो दिन का उपवास करके प्रायश्चित करने वाले महाप्रतापादित्यसिंह जू देव की चौथी पीढ़ी ने एक अंग्रेज बीवी ही कर ली और वर्तमान महाराज की दाई विलायत से मंगाई गई थीं। ऐसे महाराज की रियासत में हर साल जो दरबार होता था, यह बड़ी भारी मुसीबत थी। बस चलता तो महाराज अपनी रियासत के हर ठिकाने, गांव, तहसील, नगर, देहात में स्वयं जाकर उपहार के रूप में टैक्स वसूल करते पर बेचारे क्या करते—नाबालिग थे। दरबार में भी बैठ पाते थे, तो दर्शक के रूप में ही।

जब इन महाराज कुंअर का जन्म हुआ था, तब राजकवि श्रीचरनदास ने कवित्त लिखे थे, और उनमें लिखा था कि अब हर उर-उर में आशा की आतिशबाजी लग गई है।

जिस ठिकाने की हम बात कर रहे हैं इस ऊंटयाखेड़ी में महाराजकुंअर साहब की सिर्फ तसवीर ही रखी जाती थी। राजभवन में प्रजा और शासनाधिकारी आकर अपना प्रेम और राजनिष्ठा उसके आगे झुक-झुककर आदाब बजाकर और एक अशरफी तसवीर पर निछावर करके पास के थाल में डालकर ही व्यक्त करते थे।

प्रिंसिपल बिरियानी विलायत से सन् १६२७ में लौटे और तब से उस रियासत में ही विविध ओहदों पर काम करते रहे। विलायत में उन्होंने दर्शन शास्त्र पढ़ा था, इसलिये रियासत में मनुष्य और दूसरे पशुओं की समानता का ध्यान रखकर पहले उन्हें घोड़ा डाक्टर बनाया गया। पशुओं की मृत्यु संख्या जब बढ़ने लगी—क्योंकि बिरियानी के लिये जीवन और मृत्यु में कोई विशेष अन्तर जान नहीं पड़ता था, उनके दर्शन-शास्त्र में दोनों एक ही चीज के दो नाम थे—तब उन्हें अजायबघर का क्यूरेटर बना दिया गया। मगर वहां भी कुछ अजीब-अजीब बातें होने लगीं। एक घुन लगी हुई लकड़ी की शहतीर के अक्षर ब्राह्मी लिपि के हैं, ऐसा समझकर जो उसे पुरानी तसवीरों के कमरे में रखा, तो सब पुराने हाथ के लिखे ग्रन्थ और पोथियां कीड़े खा गये। पर इस बात पर उन्हें पदच्युत करना या वेतन काटना तो दूर रहा उनकी तरक्की कर दी गई। इस बार सड़के बनाने वाले महकमे का इन्चार्ज बना दिया गया। कुछ बरस बाद बंगले बनवाने में उन्होंने बहुत रुपया खाया। आखिर जब वह अपना बंगला ऊंटयाखेड़ी में बना चुके, तो उन्हे लड़कियों के कालेज का प्रिंसपिल बना दिया गया। उनके बाल सफेद हो गये थे। इसलिये लड़कियों के कालिज का प्रिन्सपिल बनने में कोई कानूनी आपत्ति नहीं थी।

अब तक नौकरी में या तो बिरियानी दौरे पर हुआ करते थे या उनके लिये दरबार में जाना जरूरी नही था। पर किसी ने महाराजा कुंअर साहब के कानों में फुसफुसाकर कहा कि आप जानते नही विलायत में लड़ाई छिड़ी हुई है। पता नहीं किस दिन जर्मनी के ठाकुर साहब हिटलरसिंह ऊंटियाखेड़ी में आ जायें। उन्हें आर्यों के बहुत गुप्त ग्रन्थ और तन्त्र-विद्या मालूम है। कहीं आपकी रियासत न छीन लें। इस-लिये जरा कड़े होकर नागरिकों की राजनिष्ठा को हिलाकर पक्का करना चाहिये, यानी सौ रुपये से ऊपर की तनखाह वाले लोगों के लिये यह अनिवार्य कर दिया जाय कि वे दरबार में आयें।

अगर ऐसा नहीं किया गया तो दुनिया में जिस ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज कभी डूबता नहीं है, उसके खैरख्वाह हिज हाईनेस, आलीजाह बहादुर, परमराष्ट्र भक्त, हिन्दू-धर्म ध्वजा संरक्षक, अनेक नारी हृदय-विजेता इत्यादि इत्यादि महाराज कुंअर साहब की प्रजा उनके हाथों से खिसक जायेगी। किस्म-किस्म के झण्डे चल पड़े हैं—

तिरंगा, लाल, हरा और नीला ! तो बेहतर यही है कि चन्द्रवंश या सूर्यवंश या जिस भी नक्षत्रवंश का यह राज्य है, उसके प्रति प्रजा की राजभक्ति की जांच कर ली जाय, उसे सीमेन्ट की तरह पक्का बना दिया जाय।

हुक्म जारी हुआ कि लड़कियों के कालिज के प्रिन्सपिल बिरियानी को भी दरबार में जाना पड़ेगा। अब बिरियानी को चिन्ता हुई कि दरबार ड्रेस कहां से लाई जाय ? पहले तो यही पता नहीं था कि दरबार-ड्रेस होती क्या है ? पूछताछ की तो पता चला कि उसका पूरा विवरण इस प्रकार था :

पैरों में काले चमकीले पम्प शू, जिनके सिरे पर तितली जैसी गले में लगाई जाने वाली बो जैसी गांठ होती है। (जूते यदि स्टेट लैदर फार्मेसी के हों तो अधिक राजनिष्ठा मानी जायगी।)

काले मोजे। अगर मोजे का रंग काले के बदले दूसरा हुआ तो वहीं उनका मुंह भी काला कर दिया जायेगा (मोजे यदि स्टेट हौजरी से लिये जायें तो अ िक राजनिष्ठा मानी जायगी)

चूड़ीदार पाजामा। नाड़ा केसरिया रंग का होना चाहिये। इस रंग के लिये ऐतिहासिक आधार स्टेट स्कालर इतिहास कुमारजी ने प्रस्तुत किया है।

लाल रंग की बास्कट, जिसके बाईं ओर के हिस्से पर जरी के फूलों का काम हो।

महीन मखमल का सफेद अंगरखा, जिस पर फूलदार काम वाली आस्तीनें हों। गले में फूलदार काम या जरी की पट्टी। इस बारह बन्दी के बाईं ओर बटन नहीं, बल्कि फीते हों।

एक लाल रंग का कमर-पट्टा, जिसमें गहरे जामुनी रंग की मखमल वाली म्यान। तलवार चाहे अन्दर न हो, पर ऊपर मूठ जरूर दिखाई दे।

एक जरी का उपरने जैसा अंगोछा।

सिर पर पगड़ी या साफा। पगड़ी तिकोनी, कच्छी, पारसी, मरहठी, बंगाली कैसी भी हो सकती है। साफा लहरियेदार हो और उसका पल्लू या तो नीचे छुटा हुआ हो या ऊपर चीनी पंखे की तरह खोंसा हुआ।

छाता कोई भी काम में नही ला सकता था। क्योंकि छत्र-धारी तो सिर्फ महाराज कुंअर साहब थे। इसके बाद कई और नियम उपनियम इस बात के थे कि दरबार हाल में आया कैसे जाय ? झुक कर सलाम कैसे किया जाय ? कमर कितने डिग्री के एंगिल पर झुकाई जाय ? पगड़ी गिरनी नही चाहिये। तीन बार आदाब कितने धीमे और कैसे किया जाय ? अशरफी किस हाथ में हों और रूमाल किस हाथ

में ? पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहिये । लौटते वक्त महाराजा कुंअर की तसवीर को पीठ नहीं दिखानी चाहिये--इत्यादि-इत्यादि नियमों का एक पूरा शास्त्र था ।

अब समस्या थी दरबार ड्रेस बनाने की, बल्कि इधर-उधर से जुटाने की । हमेशा अंग्रेजी सूट पहना था । साफा मांगकर लाये, तो उसे बांधना नहीं आता था । एक से चूड़ीदार पाजामा लाये दूसरे से अचकननुमा अंगरखा । भड़कीली लाल बास्कट कहाँ से लाएं ? श्रीमती जी की जरी की बनारसी साड़ी का उपयोग किया गया । जब सारा सरंजाम हो गया तो पता लगा तलवार की म्यान तो है, पर मूठ और म्यान का संयोग ठीक से नहीं हो रहा है । उसे रस्सी से बांधा । वही हाल चूड़ीदार पाजामे का था । उसके लिये नाड़ा नहीं मिल रहा था । पुरानी साड़ी की किनार से वह कार्य भी सम्पन्न कर लिया गया । अब वह अच्छे खासे कार्टून लगते थे । ऐसी मुद्रा में अपनी विद्यार्थिनियों के तो क्या, किसी के भी सामने नहीं पड़ना चाहते थे ।

एक बन्द मोटर में बैठकर सूबा साहब की कोठी पर पहुँचे, जहां दरबार होने वाला था । कई ध्वजाओं में ऊंटयाखेड़ी की मानवता वहाँ उपस्थित थी । पहले एक रस्म होती थी । एक सोने का छोटा सा पुतली नाम का गोल सिक्का एक कमरे में मिलता था । सिक्का सब को एक सा दिया जाना था । बिरियानी वह लेकर किसी तरह घड़बड़ाते हुए दिल से अन्दर पहुँचे ।

सूबा साहब की कोठी के दीवानखाने को सजाकर दरबार का काम लिया गया था । बिरियानी उसमें दाखिल हुये । उन्हें महाराज कुंअर के मास्टर का किस्सा याद आ गया । एक बार मास्टर ने उन्हें चांटा मार दिया । कुंअर साहब रोने लगे । उनके पिता जी ने गरीब मास्टर को बुलाया और पूछा, 'ऐसे कैसो हुओ । ?'

मास्टर ने दस्तबस्ता कहा, 'हुजूर, कुंअर सा भरण नही रयेते, तो म्हणे ऊरण कूं एक चांटा पेश कियो, तो कुंअर सा आंसू कुरमां दिया, जी ।"

यहां बिरियानी जी की हालत उन कुंअर साहब जैसी हो रही थी । सामंतवाद पर पढ़े ग्रन्थ आंखों के सामने भूत की तरह नाच रहे थे ।

कुंअर साहब की तसवीर के पास चार-पांच ब्राह्मण वेद-मन्त्र पढ रहे थे । नारियल हाथ में थे । नंगे बदन, कंधे पर लाल शाल । धूपदीप, पूजापाती का सारा सरंजाम । हाल के दूसरे सिरे पर मुजरे का प्रबन्ध था । सोलह सौ कलियों का गोटे-दार किनारी का घाघरा और सस्ती ओढ़नी, गिलट के गहने पहने मेनका, उर्वशी, रम्भा का स्थानीय सस्करण अपना पान रंगा मुख और 'काजल सुरमा अंजित लोचन द्वै' लेकर रीतिकालीन सन् १९४६ में निर्माण करने का निष्फल यत्न कर रही थी ।

एक-एक कर लोगों के नाम पुकारे जाते और दरबार ड्रेस में लैस अफसर तसवीर के सामने तीन बार झुककर कोर्निश करते और लौट जाते ।

प्रिन्सपिल बिरियानी का नम्बर ज्यों-ज्यों पास आ रहा था, उनका दिल बैठा जा रहा था। उन्हें पसीना छूट रहा था। आखिर में उनका नाम पुकारा गया।

वह उठ खड़े हुये आगे बढ़कर जैसे ही उन्होंने झुककर महाराज कुंअर की तसवीर को सलाम करने के लिये हाथ उठाया कि झटके के साथ उनका हाथ तलवार की मूठ पर जा पहुँचा। बिरियानी की निगाह दरबार हाल में चारों ओर घूमी। दरबार में आये हुए लोगों की भौंहें तन गईं, पर अगले ही क्षण बिरियानी सपाटे के साथ दरबार से बाहर हो गये।

बाद में मालूम हुआ कि तलवार की मूठ पर हाथ जाने का आशय यह नहीं था कि बिरियानी महाराज कुंअर के खिलाफ बग़ावत करना चाहते थे, बल्कि कमर पट्टा अचानक खुल जाने के कारण वह म्यान को अपनी जगह से खिसकने से रोकना चाहते थे, और इसी घबराहट में वहां से भाग खड़े हुए थे।
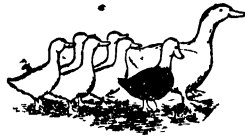
जयन्त वाचस्पति

मंगला का मजार

●

ताज बीबी की मृत्यु का समाचार चारों ओर, सम्पूर्ण साम्राज्य में, पल भर में फैल गया। "खुदा मलका को जन्नत बख्शे" यही शब्द सब के मुंह से निकल रहे थे। कुछ लोग तो जैसे मानने को तय्यार ही नहीं थे कि उनकी मलका, ताज बीबी मर गईं। यह जानते हुए भी कि मलका की याद कभी नहीं मरेगी वे दुखी थे और यह स्वाभाविक है।

संसार इस देह के कार्यहीन हो जाने पर रोता है; वही संसार जो सदा, देह नहीं बल्कि आत्मा की मुक्ति के लिये मिन्नतें मनाया करता है। वह इस संसार से ऊंचा उठने का प्रयत्न करता हुआ कहता है, "शरीर नश्वर है, उसका क्या मोह चिन्ता तो आत्मा की होनी चाहिये, जो तरेगी या डूबेगी।"

मलका के जीवन की कहानी के दुख भरे अन्त से कुछ पहले। शाहंशाह को मलका के पास से गये कुछ ही देर हुई थी कि बांदी फिर उन्हें बुलाने आई। वह अपनी रोते-रोते लाल हुई आंखों को पोंछते हुए मलका के पलंग के पास आये। मलका ने अपना हाथ मसहरी से बाहर निकाला और अपने प्यारे के आगे बढ़ाये हाथ पर रख दिया।

एक बाँदी आई और उसने खबर दी, "हुजूर की खिदमत में जयपुर का एक वैद्य आया है।"

शाहंशाह उठकर वैद्य से मिलने जाने लगे कि मलका ने कहा, "आप बाहर न जायें। कुछ देर की जिन्दगी है, फिर किसी के आने-बुलाने की जरूरत नहीं रहेगी।"

मलका के पास किसी को आने की इजाजत नहीं थी, सिर्फ गिने-चुने राजघराने के लोग, शाहंशाह के कुछ खास सलाहकार और बाँदियें ही आ सकती थी।

शाहंशाह को बाहर जाते और लौटने में कुछ ही मिनट लगे होंगे। वापिस आने पर, बांदियों और राजघराने की स्त्रियों को मलका के पैरों के पास पाटी पर सिर पटक-पटककर रोते देख वह पछाड़ खाकर गिर पड़े।

जिस समय मलका की मृत्यु हुई उस समय वह सोच रही थी, 'काश मैं यह

देख सकती कि मेरे मरने के बाद शाहंशाह शाहजहां की क्या अवस्था होती है।" अपने जीवन में भी न जाने कितनी बार मुमताज ने सोचा कि उसके मरने के बाद उसके पति की क्या हालत होगी वह यह देख सके। उसके हृदय में यह सब देखने की इच्छा और भी बलवती हो जाती थी जब कि शाहजहां उसे यह विश्वास दिलाते कि उसकी मृत्यु के बाद वह जीवित न रह सकेंगे।

इस प्रबल अभिलाषा के ही कारण—

मुमताज़ के उस मूक व अमर अंधे प्रेमी शीराज ने अपनी प्रेमपूर्ण, अपूर्व भेंट की क़ब्र का नमूना तैयार करके शाहंशाह के दरबार में पेश किया। ताजमहल की इमारत बन रही थी। शाहजहां बेचैनी से उस इमारत को पूरा होने की इन्तजार कर रहा था।

ताज बीबी की रूह को महल में चैन नहीं मिलता था। अपनी यादगार में बने सुन्दर ताजमहल में उसे कुछ शान्ति मिलती थी। परन्तु अधिक देर वहां भी न बैठती, क्योंकि वियोगी शाहंशाह को अपनी याद में रोते और इधर-उधर भटकता देखकर उसकी बेचैन रूह को बहुत आनन्द आता था।

एक बार शाहजहां ने अपने एक दरबारी को कहा, "मुझे तो यही मालूम होता है कि मेरी ताज मेरे ही पास है। आंख बन्द करके बैठ जाता हूं तो यही महसूस होता है कि जैसे उसका सांस आ-आकर मेरे गालों से टकराता है।" उस समय से मलका की आत्मा शाहंशाह से कुछ अन्तर पर रहने लगी।

एक रात शाहजहाँ बागीचे में बैठे थे और मुमताज की याद कर रहे थे। पुरानी कुछ स्मृतियां इस प्रकार जागृत हो उठीं और उन पर हावी होती गईं, कि वह रोते-रोते बेहोश हो गये। अब जैसे उस बेचैन आत्मा को विश्वास हो गया था कि शाहजहां उसे सचमुच प्यार करता है। जब वह अभिलाषा भी पूरी हो गई तो उसे आत्मा के लिये भटकना असम्भव था। हसरतें निकल गईं और कयामत तक न उठने का ख्याल करके अपनी क़ब्र में जा लेटी।

+ + +

ताजमहल के सामने के हिस्से में मजदूरों की एक छोटी सी बस्ती थी। वहां मनोरा नाम का एक गरीब सा मजदूर अपनी पत्नि के साथ रहता था। मनोरा भी ताजमहल की इमारत के बनाने वाले मजदूरों में से ही एक था।

एक रात मनोरा की स्त्री की गोद भरी। मनोरा एक फूल सी सुन्दर लड़की का पिता बन गया था।

मंगलवार की रात को जिस समय शाहंशाह के बेहोश हो जाने पर मलका की

रूह कब्र में गई उसी समय उसके लिये एक दूसरी जीवन कहानी की नायिका बनने का परवाना हाज़िर था। उसी क्षण उसे मनोरा की स्त्री के गर्भ में जाना पड़ा। फिर इस संसार में लौटी तो मंगल के दिन पैदा होने के कारण मनोरा ने उसका नाम मंगला रखा। नन्हीं सी मंगला टूटी हुई छोटी सी झोंपड़ी के सामने एक गूदड़ी पर लेटी उस शानदार इमारत को देखा करती थी। वह सोचा करती, जिसकी यादगार में यह इतनी शानदार इमारत बन रही है—उसके भाग्य का दूसरा परिच्छेद मनोरा के घर आरम्भ हो गया है। कितना गहन अन्तर है, परन्तु कितना सत्य है। इनकी परिस्थितियों में यह सोच मंगला गुदड़ी पर पड़ी पड़ी मुस्करा दिया करती। मनोरा और उसकी स्त्री उसे मुस्कराता देख उसका मुंह चूम लिया करते। मंगला ताजमहल के संगमरमर से भी अधिक गोरी और मुमताजमहल से भी अधिक सुन्दर थी।

ताजमहल की इमारत समाप्त होने में लगभग चार दिन और काम था। शाहंशाह की तबीयत उस दिन कुछ खराब थी। शाम का समय था, सूर्यास्त होना ही चाहता था। मंगला की मां उसे गोद में लेकर ताजमहल के सामने एक पेड़ के पास आ बैठी। मनोरा ने अपनी स्त्री को मना भी किया कि वह राजमार्ग के समीप न जाये, परन्तु उसने कहा कि शाहंशाह के आने का तो यह समय नहीं है, मज़दूर काम समाप्त कर चुके हैं; सूर्य अभी-अभी छुपा है, चांद उगा चाहता है, अब उसके बैठने में कोई हानि नहीं।

मंगला की आंखें ताजमहल को निहार रही थीं और उसकी मां कभी छुपते सूर्य और कभी उगते चांद को देख रही थी।

अचानक शाहजहां का दिल ताजमहल में आने को किया। फव्वारों के पास से हो वह ताज की ओर चले जा रहे थे। जब वह मंगला और उसकी मां के पास आये तो शाम के सूर्य की सुनहरी किरणों के पड़ने के कारण जगमगाती सी, चिथड़ों में लिपटी मंगला पर उनकी दृष्टि पड़ी। मंगला के होंठ हिले कुछ इस प्रकार कि शाहजहां को याद आया उनकी प्यारी मलका कभी-कभी बिल्कुल इसी प्रकार मुंह ही मुंह में कुछ कह जाया करती थी। मंगला मुस्कराई। शाहंशाह ठिठक गये और खोये से मंगला की ओर बढ़े। परन्तु, उसी समय उन्हें ख्याल आया कि उनके सब साथी यह तमाशा देख रहे हैं। वह कुछ विस्मित से लौटे और खोये से ताजमहल की ओर चल दिये।

शाहंशाह के कुछ दूर आगे जाने पर एक सिपाही ने पीछे से आकर गुस्से से एक कोड़ा मंगला की माँ की पीठ पर फटकार दिया। उसने कहा, "हरामज़ादी,

वीरेन्द्र त्रिपाठी

सपनों की तस्वीर

●

तसवीरें रंग से कागज पर उतारी जाती हैं और मैं उतारने चला हूं उन्हें अपनी आंखों में। आंखों की तसवीर का असर मन पर पड़ता है, मस्तिष्क और शरीर भी इससे नहीं बचते। मन टटोलना जानता है, मस्तिष्क समझना और शरीर उसे बाहर फेंक देना। सब का अपना-अपना अलग काम है।

मैं थोड़े दिन पहले एक देहात में था, अब शहर में हूँ। देहात में धूल उड़ती है, शहर की चिकनी सड़कें फिसलती हैं। गांव बैलगाड़ियों को देखने का आदी है और शहर तांगे, इक्के, बग्घी, फिटन, कार और लारियों की आवाज में जागता-सोता है। देहात की जवान लड़कियां पानी भरने जाती हैं तब गाती हैं। एक मटकी कमर पर और एक सिर पर रखे जब वे अपनी चाल से निर्लेप गुजरती हैं तो शहर का रहने वाला ज़रूर थोड़ा-सा चौंक जाता है, खुश होता है और फिर उसके मन में भी देहाती के प्रति एक ममत्व की भावना चेतन होने की बेकार कोशिश करती है।

देहाती जब शहर पहुँचता है तो उसे भी मजा आता है, हर चीज उसके लिए नई होती है। नए खिलौने को आश्चर्य से देखने वाले बालक की नाईं उसका मन भी मचल उठता है। शहर की साड़ी-सलवार और गाउन में लिपटी स्त्रियों को देखकर कुतूहल की तरंग जागी है, वह औरतों के लिए नहीं उनके कपड़ों और पौशाक के लिए बेकरार हो उठता है।

देहाती औरत जब शहर में छैल-छबीली फैशनपरस्त औरत को एक आदमी के हाथ में हाथ डाले घूमते-फुदकते देखती है तो पहले लोक-लाज का ध्यान होने के कारण उसे उस औरत से घृणा होती है, लेकिन फिर उसका दिल भी यह चाहने लगता है कि एक बार वह भी तो करके देखे ऐसा ही—ठीक ऐसा ही। शहर की पुतली देहाती से सिर्फ नफरत करना जानती है—'अरे बाप रे, इतनी गलीज—कैसे रहती है—छि: बदबू आती है।

फिर नाक सिकोड़कर एक हिकारत की नज़र डालकर गाँव को शहर से नीचा दिखाकर वह सब्र कर लेती हैं।

हां, तो मैं थोड़े दिन पहले देहात में था। चैत का महीना था। पीली सरसों की ओढ़नी डाले, कासनी रंग के फूलों की माला पहने गांव की देवी बहार पेंगे मार रही थी, हर ओर हरा रंग छाया था, आम बौरा गये थे, साथ ही कोयल की मदमाती कुउ-कुउ देहातिनों के वक्षस्थलों में धड़कने वाली जगह को इधर से उधर, उधर से इधर करने में बड़ा रस ले रही थी, गाँव फूल रहा था, गांव के रहने वाले भी जवानी पर थे।

गाँव की लड़कियाँ अभी से ही आनेवाले सावन के लिए तैयार हो रही थी सावन की बहार—मौसम की रंगीन कहानियां—सबकी ज़बान पर इठला रही थीं। आनेवाले दिनों की रंग-बिरंगी तसवीरें उनकी आँखों के भूले पर भूलकर उन्हें बेताब कर रही थी कि कब सावन आये और वे हिंडोला डालें।

प्रतीक्षा के दिन बड़ी मुश्किल से कटते हैं, लेकिन गांव की सयानी लड़कियों को पता भी नही चल पाया कि कब चुपके से सावन आकर छा गया, कोयल की बोली और भी गदरा गई।

ऐसे ही एक दिन मैं खेतों की मेंड़ों पर जाकर लौट रहा था शाम का वक्त था, धुंधलका कुछ तेज होता जा रहा था, दो-एक तारे भी क्षितिज पर अपनी हलकी रोशनी के साथ कुछ उल्लास लिए से चमकने लगे थे, जिस मेड़ पर से लौट रहा था, वह छोटी थी। इतनी छोटी कि सिर्फ एक आदमी ही उस पर चल सके यदि कोई सामने से आ जाय तो अवश्य थोड़ा-सा हिस्सा बदन से लग जाय, इतने दिनों से कोई खास बात नहीं थी। लेकिन शायद वह दिन कैलेण्डर में मेरे लिए 'कुछ' बनकर आया था सो सब कुछ हो गया। हो यह गया कि जैसे ही मैं लौट रहा था, मुझे कुछ जान पड़ा कि सामने की ओर से कोई गुनगुनाता आ रहा है—'बाट तकत मोरे नयना थके, पर आये न श्याम मुरारी।'

आवाज धीमी थी, फिर भी अनुमान कर लिया न किसी नई लड़की की! नई लड़की से मतलब है यही सोलह-सत्रह साल, सोलह-सत्रह की देहाती लड़की जीवन के उस दरवाजे पर कदम रख चुकी होती है जिससे उछाह के दिन, मिलन के दिन और किसी के लिए तड़पने के अरमान दिल में संजोने के दिन कहते हैं।

जैसे ही गीत की लड़ी पास आती गई, मैं उत्सुकता दबाकर पता नही किस ओर झुकने लगा। गीत की ध्वनि, 'नयना थके पर...' यही रुक गई। मेरी आंखें अपने आप ऊपर उठीं और फिर नीचे गिरीं, इसी बीच वह लड़की भी ठिठक गई थी, गालों पर सुर्खी फैल गई थी, कान कुछ लम्बे से हो गये जान पड़ते थे।

मैंने चाहा कि मैं नीचे खेत में उतर जाऊं, लेकिन मेंड़ काफी ऊंची थी, इस

अवश्य, यह विनू का आवाज था। मैं नीचे उतर आया। मामीजी फिर गैर हाजिर थीं। विनू अकेली होने पर किसी की फिकर नहीं करती। कई रोटियां सेकते समय जल गईं, लेकिन उसका बोलना बंद न हुआ। जब उठने को हुआ तो उसने कहा—"शरबती को आज मैंने घर बुलाया है। वह दोपहर को आयेगी।"

"तो मैं क्या करूं ?" झल्लाकर मैं बोला और फिर कमरे में बिछे तख्त पर जा लेटा।

शरबती विनू के पास आयेगी। आने दो, मुझे इससे क्या। लेकिन...।

मैं ऐसी बातें सोचते सोचते ही सो गया। किसी की खिलखिलाहट से मेरी नींद टूट गई। दो लड़कियां ऊपर के कमरे में हंस रही थीं। पता नहीं क्यों, मेरे पैर अपने आप ऊपर को उठ गए। कमरे की देहलीज पर कदम रखते ही सब व्यापार रुक गया। मैंने देखा, मेरी सब चीजें अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। कागज-मासिकपत्र सभी तो छितर रहे हैं। विनू मुझे देखते ही हंस पड़ी। शरबती सिकुड़कर विनू की पीठ में समाने की सोचने लगी।

और कोई समय होता तो मैं बिनू को करारी फटकार देता। शायद दो तमाचे भी जड़ देता, लेकिन शरबती....जो खड़ी थी। उसने भी तो विनू को सहयोग दिया होगा। फिर....जब कुछ न सोच सका तो नीचे उतरने लगा। आखिरी सीढ़ी के ऊपर ही खड़ा ही रह गया, न जाने क्यों ?

विनू ने समझा, भैया गए नीचे के कमरे में, इसलिए शरबती से कहने लगी—"देखा, तुम्हारे कारण आज भैया ने डाटा भी नहीं। और कोई दिन होता न, तो आसमान ही सर पर उठा लेते। अखबारों को बहुत चाहते है। दिन रात बस पढ़ना ही पढ़ना। इसी साल बी० ए० का इम्तहान देंगे। बीमार-से हो गये थे, सो एक महीने की छुट्टी लेकर यहां चले आये। शहर में इनका बड़ा अच्छा बंगला है। पिछले साल मैं भी गई थी। पहले तो मोटरें देखकर दंग ही रह गई...!"

फिर एकाएक रुक कर बोली—"तू इस तरह मुझे क्यों घूर रही है शरबती ! मेरी बात पर यकीन नहीं आता। चल न अबकी बार मेरे साथ, शहर में सब दिखा लाऊं। मैं तो भैया के साथ जाऊंगी इस बार भी। वहीं पढूंगी। पिता जी ने इजाजत दे दी है। भैया की एक छोटी बहन भी है रेणू—मेरे ही बराबर है लेकिन दसवीं पास कर चुकी है।"

शरबती शायद सुनते-सुनते थक गई थी इसलिए बोली—"यह सब तो ठीक है, पर तूने न डांटने पर जो मेरा बचाव बताया सो क्या तेरे भैया ने और कभी भी किसी के सामने ऐसा किया है ?"

"नहीं तो, और सच बात तो यह है कि ऐसा मौका भी कभी नहीं आया। मेरा ख्याल ऐसा है। तूने गुण्डा कहा था, इसलिए शायद अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए नहीं डाँटा, वरना..."

मैं अधिक जब्त न कर सका। फौरन ऊपर पहुँच कर चिल्लाया—"वरना... वरना....वरना... तेरा सिर काट लेता ?"

अब तो विनू बनावटी रोना रोने लगी—"चोरी-चोरी हमारी बातें सुनते लाज भी नहीं आती। बड़े कहीं से चले भैया....।"

वह गाली निकालने जा रही थी, तभी मैंने उसका कान जा पकड़ा और बोला—"मांग माफ़ी ?"

"काहे की माफी ?" यह कहकर वह मिन-मिनाने-सी लगी और मैं भी स्वर में स्वर मिलाकर उसे खिझाने पर उतारु हो गया। माफ़ी माँगने के बाद जब वह ठीक राह पर आई तो मैंने एक नज़र कमरे में डाली। लेकिन शरबती का वहां पर कही पता न था। भाई-बहन के खेल में उलझ जाने पर वह जान बचाकर अपने घर भाग गई थी।

उस दिन के बाद विनू मुझे रोज कुछ न कुछ शरबती के बारे में बताती और धीरे-धीरे मै भी शरबती की बातों मे रस लेने लगा। विनू ने मुझे बताया कि वह गांव के एक समर्थ किसान की इकलौती बेटी है। अभी तक बिना किसी फिकर के उस का जीवन बीता है। शादी के बारे में उसका ख्याल है कि शहर के आदमी से कभी भी न करनी चाहिए। शहर के आदमी निर्मोही होते है उन्हें किसी की चिन्ता नहीं होती।

और जब-तब मै शरबती की याद में खयाली तसवीरें बनाने-बिगाड़ने लगा। जब देहात छोड़ने में सिर्फ तीन दिन बाकी रह गये तो मेरे मन में बिछुड़ने का दुख-सा उमड़ कुछ आया। मैंने सोचा शरबती अब जाने, देखने को मिलेगी या नही। दूसरे साल तक जब आऊंगा, शायद उसकी शादी हो जायगी। फिर तो पति की ही होकर वहीं रहेगी। कुछ साल बीतेंगे, वह माँ बनकर बच्चों की दुनिया में रम जायगी। फिर किसे याद आयेगा कि कोई शहर का गुंडा एक दिन उसे मेंड़ पर गिरने से बचाकर फिर वापस चला गया था। उसकी बहन ने उसे तंग किया था। कैसा था वह शहर का...।

उसी शाम मैं फिर उसी पुरानी मेंड़ पर होकर आ रहा था। उसी तुकुली और सुरीली आवाज़ में कोई गाता आ रहा था—

'ओ परदेशी भूल न जाना !

दिल की छोटी-सी दुनियाँ की हलचल, तुम भी लेते जाना !'

केशव गोपाल निगम

उस्ताद मँगलू

●

शाम को जब लाला हजारीमल ने उस्ताद मंगलू को उस जेब में से बीस रुपये देने चाहे तो उस्ताद ने साफ इन्कार कर दिया। लाला हजारीमल ने बहुतेरा कहा परन्तु उस्ताद मंगलू ने स्पष्ट कह दिया कि उसमें से एक पैसा भी लेना मेरे लिये गाय के मांस के बराबर है।

सुबह लाला हजारीमल मन्दिर में पूजा करने गये थे। वहां भीड़ में किसी ने उनकी जेब साफ करदी। जब उस्ताद मंगलू से कहा गया कि तुम्हारे इलाके में रहते हुए भी जेब कट जाय तो मुस्करा कर बोले--चिन्ता न कीजिये। मुझे खबर मिल चुकी है और आप के कहने से पहले ही मैंने माल मंगवा लिया है। और में न भी मंगवाता तो शाम को तो पत्ती के लिये मेरे पास आता ही।'

शाम को उस्ताद मंगलू ने जेब के सारे रुपये और कागज ज्यों के त्यों लाकर लालाजी को सौप दिये। रात को लालाजी सिनेमा गये थे और सिनेमा के आधे टिकट भी उनकी जेब में थे। वे टिकट भी वापस आ गये थे।

बिना उस्ताद मंगलू की इजाजत के उसमें से एक पर्चा भी नहीं हटाया जा सकता था। इससे पहले भी एक बार बाजार में किसी मुहल्ले वाले की छतरी खो गयी जो शाम को उस्ताद मंगलू ने लाकर दे दी थी।

एक बार लाला हजारीमल का ही एक नौकर कोई सौ रुपये चट कर गया और झूठ-मूठ ही उड़ा दिया कि मेरी जेब कट गयी। उस्ताद मंगलू को जब मालूम हुआ तो तुरन्त सारी बातें पूछ कर आदमी दौड़ाया। आदमी यह खबर लेकर आया कि ऐसी कोई जेब नहीं कटी। बसत फिर क्या था। उस्ताद मंगलू ने लाला हजारीमल के नौकर का गला आ दबोचा। उस्ताद मंगलू का यही कहना था कि दूसरा आदमी मेरे इलाके में हाथ नहीं डाल सकता और मेरे पट्टों का इतना साहस नहीं हो सकता कि वे मुझ से झूठ बोलें। जरूर इस नौकर की बदमाशी है। बेकार जेब कतरों को बदनाम करता है। आखिर उस्ताद मंगलू की ही बात सच निकली और उस नौकर को सही-सही बात कबूलनी पड़ी।

उस्ताद मंगलू के माता पिता-पिता पूरब के रहने वाले थे। और रोजी की तलाश में इस नगर में आगये थे। उस्ताद मंगलू का जन्म इसी मुहल्ले में हुआ था। बाप एक कपड़े की कोठी में चौकीदार का काम करते थे परन्तु वह चाहते थे कि उनका मंगलू पढ़-लिख कर आदमी बने। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने मंगलू को स्कूल में भर्ती भी कराया था। अपनी कक्षा में उस्ताद मंगलू होशियार विद्यार्थी समझे जाते थे और आज तीस वर्ष बाद भी उस्ताद मंगलू को अंग्रेजी के वे शब्द याद थे जो उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में पढ़े थे। धर्मकथा की अब भी उन्हें सारी बातें कंठस्थ थीं। एकाध बार कक्षा में उन्हें पारितोषिक भी मिला था।

जब उस्ताद मंगलू आठवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तो अकस्मात उनके पिता का हैजे के कारण देहान्त हो गया। पिता के मरने से आय का साधन बन्द हो गया परन्तु साहसी माता ने धीरज नहीं छोड़ा और मेहनत मजदूरी करके अपना और अपने मंगलू का पेट पालने लगी। उसने अपने मंगलू की पढ़ाई में बाधा न आने दी और उस्ताद मंगलू भी पिता का साया उठने के बावजूद स्कूल में डटे रहे। उनके मास्टर तक उनकी प्रतिभा के कायल थे परन्तु यह क्रम छः महीने भी न चल सका और उस्ताद मंगलू ने स्कूल से सदा के लिये बिदा ली।

एक दिन धर्म का घण्टा था और मास्टर साहब ईश्वर की सर्व व्यापकता पर भाषण दे रहे थे। मास्टर साहब जोर-जोर से कह रहे थे—ईश्वर मुझ में भी है, शेर में भी है, बकरी में भी है, रोटी में भी है और दांत में भी...'

इस स्थान पर उस्ताद मंगलू के हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन्होंने चट मास्टर साहब से एक प्रश्न पूछ डाला—'अगर शेर और बकरी दोनों में ही ईश्वर हैं तो शेर के बकरी को मार देने पर किसका ईश्वर मर जाता है, और शेर तो बकरी को खा भी जाता है, तो क्या ईश्वर ईश्वर को खा भी सकता है ?'

मास्टर साहब इस प्रश्न से कुछ बौखला से गये और बात बनाते हुए बोले—'न कोई किसी को मारता है और न कोई मरता है। सारा संसार उसकी इच्छा से चल रहा है। उसकी आज्ञा के बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिलता।

'तो जो कुछ करता है ईश्वर करता है, हमारा कोई दोष नहीं ?'

'मूर्ख, बुरे कर्म तू कर और उनका दोष भगवान के सिर रख। अभी तू चोरी करेगा तो जेल तुझे होगी या भगवान को !'

'अभी आपने कहा था कि जो कुछ होता है उसकी इच्छा से ही, ईश्वर की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता।'

मास्टर साहब ने देखा कि यह इस प्रकार दबने वाला नहीं है और सारी कक्षा

के सामने किरकिरी हुई जा रही है। तुरन्त दूसरा मार्ग अपनाया—'मलेच्छ तेरी समझ में यह धर्म की बात नहीं आ सकती। चुप लगा। औरों को तो समझने दे।'

उस्ताद मंगलू भी चुप रहने वाले न थे। दूसरे, कक्षा के विद्यार्थी बराबर इशारों से उकसा रहे थे—लेकिन मास्टर साहब....'

उस्ताद मंगलू अपना प्रश्न पूरा भी न कर पाये थे कि मास्टर साहब का मोटा डंडा उस्ताद मंगलू पर बरसने लगा और उसके आगे उस्ताद मंगलू को भी झुकना पड़ा। उस्ताद मंगलू की काफी मरम्मत कर लेने के बाद मास्टर साहब ने उस गुस्ताख लड़के को हेडमास्टर साहब के सामने पेश किया। हेडमास्टर साहब भी मंगलू की प्रतिभा के कायल थे। उन्होंने मंगलू को डांट-डपट कर ही छोड़ देना चाहा, परन्तु जब मास्टर साहब ने नियन्त्रण की दुहाई देते हुए कहा कि अगर इसे यों ही छोड़ दिया गया तब तो और लड़के शेर हो जायगें और मैं तो कक्षा को न पढ़ा सकूँगा तो हैडमास्टर साहब को भी झुकना पड़ा। उस्ताद मंगलू गुस्ताखी के अपराध में स्कूल से निकाल दिये गये।

जब उस्ताद मंगलू की माता को यह समाचार मिला तो वे दौड़ी-दौड़ी हेडमास्टर साहब के पास पहुँची और किसी प्रकार उन्हें इस बात पर राजी कर लिया कि मंगलू अपने मास्टर साहब से क्षमा मांगे और भविष्य में किसी प्रकार की गुस्ताखी न करने का आश्वासन दे। उस्ताद मंगलू से जब क्षमा मांगने को कहा गया तो उनके स्वाभिमान ने यह गवारा नहीं किया और उन्होंने साफ जवाब दे दिया। इसके साथ माता से यह भी कह दिया कि अब मैं स्कूल में कदापि नहीं पढ़ूंगा। माता ने बहुतेरा समझाया परन्तु उस्ताद मंगलू ने एक न मानी। बाप पहले ही मर चुके थे, दूसरा कोई सिर पर नहीं था। आखिर बेचारी माता ने उस्ताद मंगलू का स्कूल छोड़ना स्वीकार कर ही लिया और यह समझ लिया कि यह लड़का भी वही करेगा जो आजतक इसके बाप-दादा करते आये हैं।

स्कूल छोड़ने के बाद उस्ताद मंगलू एक पनवाड़ी की दुकान पर नौकर करा दिये गये और इस दुकान पर ही स्कूल का मंगलू, मंगलू बन गया। पनवाड़ी की दुकान पर तरह-तरह के आदमी आते थे जिनमें से किसी की निगाहों ने ताड़ लिया कि मंगलू में प्रतिभा है और अगर इसे काम सिखा दिया जाय तो हमारे लिये काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। परन्तु डोरे डाले गये और दुनियां की चाल-बाजियों से अनभिज्ञ माता-पुत्र उसमें फंस गये। मंगलू की माता से कह सुन कर दूसरी दुकान पर ज्यादा वेतन पर नौकर करा दिया गया। इसके साथ ही सीधे-सादे मंगलू को तरह-तरह के शौक लगाये गये। सिर पर मशीन फिरवाने की जगह अंग्रेजी बाल रखवाये गये

और उनमें बढ़िया खुशबूदार तेल पड़ने लगे। सिगरेट आदि का भी चस्का लगाया गया। दूसरे तीसरे दिन सिनेमा भी दिखाया जाने लगा। आरम्भ में माता ने उसका तीव्र विरोध किया परन्तु दुर्व्यसन में इतना आकर्षण होता है कि उसने उस्ताद मंगलू में माता की उपेक्षा करवा दी और बेचारी मां को चुप्पी साधनी पड़ी। जब यह दुर्व्यसन जड़ पकड़ गया तो पैसे की खींच होने लगी अब तक उस्ताद मंगलू ऐसी स्थिति में खिंच आये थे कि पैसे के लिये वह कुछ भी करने को वाधित किये जा सकते थे। ऐसे समय में ही पंछी के आगे दाना और जाल फैलाया गया और उसमें वह फँस गया। आरम्भ में तो उस्ताद मंगलू ने कुछ हिचकिचाहट दिखायी परन्तु संगत के बल और रुपये के लोभ के कारण उस्ताद मंगलू ने इस सम्मानित पेशे को अपना ही लिया। उस्ताद मंगलू में प्रतिभा की कमी तो थी नहीं, बहुत शीघ्र ही वे इस लाइन में नाम पा गये। माँ को तब पता चला, जब एक दिन उस्ताद मंगलू धर लिये गये। बेचारी करम ठोंक कर रह गई।

एक बार जेल जाने के बाद तो उस्ताद मंगलू का यही नियम बंध गया कि छः महीने बाहर तो छः महीने अन्दर। बेचारी माता इसी शोक में घुल-घुल कर स्वर्ग सिधार गई। उस्ताद मंगलू पहले ही किसी अन्य कार्य करने के योग्य नहीं रह थे और जेल का ठप्पा लग जाने पर तो वे बिलकुल अस्पृश्य बन गये। अब केवल उनके चारा था कि फिर वही काम करें और जिस दिन पकड़े जायें उस दिन से जेल को आबाद करें। जब प्रथम बार उस्ताद मंगलू पुलिस के हाथ लगे थे उस समय उनकी अवस्था सोलह, सतरह वर्ष की थी और आज चौवालीस, पैंतालीस, की अवस्था तक अपने जीवन के तीस वर्षों मे उन्होंने कम नही तो पन्द्रह वर्ष जेल में अवश्य बिताये थे। पुलिस के रजिस्टर में उनका नाम चढ़ चुका था और रोज रात को आवाज पड़ती थी।

उस्ताद मंगलू ने शादी नहीं की अलबत्ता कई स्त्रियां जरूर रखीं। एक तो उन्हें अवकाश ही कहा था और दूसरे बहुधा ऐसा होता था कि जेल से छूट पूरा महीना हुआ नहीं है कि फिर अन्दर पहुंच गये। दो-तीन स्त्रियां उन्हें छोड़ कर और घर का माल समेट कर, चम्पत हो गई और दो-तीन को इन्होंने ही मार कर भगा दिया। प्रत्येक स्त्री के बारे में यही सुना जाता था कि उससे पहले कई पतियों का परित्याग कर चुकी है, वेश्यावृत्ति अपना चुकी है, और स्वयं भी जेब काटती है। लेकिन यह एक रहस्य ही बना रहा कि उस्ताद मंगल को ये स्त्रियाँ मिल कहां से जाती थीं। उन्हें न किसी स्त्री के मिलने की विशेष प्रसन्नता होती थी और न किसी के जाने का विशेष रंज ही। वे जितनी सरलता से मिल जाती थीं उतनी ही सरलता से चली भी जाती थीं।

यद्यपि धर्म के ठेकेदार, उस्ताद मंगलू को किसी प्रकार भी धर्म के ज्ञान का अधिकारी नही मानेंगे, परन्तु धर्म के प्रति उनके हृदय में बड़ी आस्था थी। उनके द्वार से कोई फकीर खाली हाथ न लौटता था। जितने दिन बाहर रहते रोज नियम से शिवजी पर जल चढ़ाते थे और चाहे जितना आवश्यक कार्य हो, क्या मजाल कि उस्ताद मंगलू बिना मन्दिर की खिड़की के आगे माथा टेके निकल जायं। दोनों समय माला का जपना कभी न भूलते थे—'नो सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली, बगल में करनी मुंह मे राम, परन्तु उस्ताद मंगलू ने हमेशा हस कर टाला। उनके भीतर का मानव धर्मपरायण था इसमें सन्देह नही किया जा सकता। गली में रामलीला हो; कथा हो, उस्ताद मंगलू का चढावा सब से अधिक रहता था, यों कहने को अच्छे-अच्छे लखपती मुहल्ले मे भरे पड़े थे। स्वयं भी महीने में एक बार कथा अथवा कीर्तन अवश्य करवाते थे। शायद ही कोई ऐसा तीर्थ छूटा हो जिसकी यात्रा उस्ताद मंगलू ने न की हो। तीर्थ पर जाकर किसी का एक पैसा भी छुआ हो तो उस्ताद मंगलू कसम खा सकते हैं। रास्ते मे भी न कमायेंगे तो खर्च कहां मे आयेगा?

वैसे भी उस्ताद मंगलू पैसे को अधिक महत्व नहीं देते थे। हजारों गरीबों का आड़े मे उन्होंने साथ दिया होगा और कभी नाम की इच्छा तक नही की। उस्ताद मंगलू के पास शाम को कोई पहुँचना चाहिये, वह निराश नही लौट सकता। शाम को सब पट्ठे दिन भर की कमाई लेकर उनकी पत्ती देने उनके पास आते थे। बस शाम को जो पहुँच गया उसी को मुंह मांगी मुराद मिल गई। वास्तव में यदि देखा जाय तो ऐसे आदमियो की संख्या कम थी जिनका उस्ताद मंगलू ने दिल दुखाया था और ऐसे की संख्या अधिक आदमियों थी जिनको उस्ताद मंगलू से लाभ पहुँचा था।

उस्ताद मंगलू का कहना था कि हम ऐसे वसे आसामी पर तो हाथ भी नहीं डालते, कोई मोटी आसामी ही देखते हैं। ऐसे वैसे आदमियों के लिये छुटभैये क्या कम हैं? आसामी के मामले में उन्हे आज तक कभी धोका नहीं हुआ। जिस फटेहाल को देख कर कह दिया कि उसकी जेब में हजार रुपये तो होंगे ही उसकी जेब में नकद दो हजार रुपये निकले और जिस ठाट-बाट वाले के बारे में कह दिया कि भैया 'भड़क भारी और खीसा खाली, तो उसकी जेब मे बस रुपये की बाकी ही मिली। सैकड़ों बार की आजमाई हुई बात थी। उस्ताद मंगलू की निगाह और ईमानदारी के उनके प्रतिद्वन्द्वी भी कायल थे। क्या मजाल की किसी गैर के इलाके में एक स्टेशन भी किसी आसामी का पीछा किया हो। उनके प्रतिद्वन्दियों का कहना था कि उस्ताद मंगलू ने आज तक जिस आसामी के बारे में जो अन्दाज़ दिया वह हमेशा सही निकला। इस कारण उस्ताद मंगलू की ईमानदारी और अन्दाज पर हजारों के सौदे हो जाते थे और आज तक

यह नहीं हुआ था कि आसामी के पास उनके बताये अन्दाज से कम माल निकला हो और उनसे खरीदी हुई आसामी में घाटा उठाना पड़ा हो।

आदमी को परखने की उस्ताद मंगलू में एक विशेष क्षमता थी। अपने शागिर्द एवं उत्तराधिकारी रहमान को उन्होंने जेल में देखते ही भांप लिया था कि यह लड़का काम का है। जेल में रहमान एक फौजदारी के मुकदमे में दण्डित होकर आया था और उस समय उसकी अवस्था १९-२० वर्ष की थी। उस्ताद मंगलू ने देखते ही भांप लिया और तुरत उस पर हाथ रख दिया। पहले तो रहमान ने आनाकानी की परन्तु जब बाद में देखा कि जेल में उस्ताद मंगलू के कारण बहुत से सुभीते मिल जायेंगे तो एक दिन उस्ताद के पैर छू ही तो लिये और उस्ताद ने भी बड़ी आशाओं के साथ शागिर्द के सर पर हाथ फेर दिया।

जेल में ही शिक्षा प्रारम्भ कर दी गई। वहाँ रुपये कहां से आते, परन्तु उस्ताद मंगलू की प्रतिभा ने तुरत एक रास्ता निकाल लिया। जेल में ठीकरों की कमी नहीं थी। तुरत उस्ताद-शागिर्द ने मिल कर बहुत से ठीकरों को घिस कर रुपये बना लिये और वहीं रोज ट्रेनिङ्ग दी जाने लगी। उस्ताद शागिर्द से कुछ दिन पहले छूटे और रहमान कुछ दिन बाद। जिस दिन रहमान छूटा तो उस्ताद स्वयं कपड़े और खाना लेकर जेल के दरवाजे पर रहमान का स्वागत करने पहुँचे और शागिर्द ने भी उसी दिन रास्ते में ही अपनी योग्यता का परिचय दे दिया। पहला मोर्चा इस खूबी से मारा कि उसी क्षण उस्ताद ने खुश होकर उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

उस्ताद मंगलू का दूर-दूर तक नाम था और यह निश्चित था कि अगर कभी कोई 'अखिल भारतीय पाकेटमार सम्मेलन' होता तो उस्ताद मंगलू एकमत से उसके सभापति चुने जाते। एक बार बम्बई के कोई नामी उस्ताद घूमने आये और उस्ताद मंगलू के पास ठहरे। बातों-बातों में बम्बई के उस्ताद ने कहा—'हिन्दोस्तान में अभी इस कला के उस्ताद ही नहीं हैं। विलायत में एक से एक बड़ा उस्ताद पड़ा है। अमेरिका में एक बड़े नगर के चौराहे पर एक काफी जोर बढ़ गया। बड़े-बड़े पुलिस के घाघ मात खाकर चले गये। आखिर बड़े अफसरों ने इस काम के लिये एक खास अफसर नियुक्त किया और जैसे ही वह अफसर उस चौराहे पर पहले दिन आकर खड़ा हुआ कि एक भद्र आदमी से उसकी यों ही मुठभेड़-सी हो गई। वह आदमी 'क्षमा कीजिये' कह कर चला गया और वह अफसर गिद्ध-दृष्टि से अपना काम करने लगा कुछ क्षण बाद ही किसी कार्य से उस अफसर ने अपनी जेब में जो हाथ डाला तो माल नदारद था। हिन्दुस्तान में इसके पासंग का भी काम नहीं होता।'

यह कह कर उस बम्बई के उस्ताद ने एक व्यंगात्मक दृष्टि उस्ताद मंगलू पर डाली परन्तु उस समय उस्ताद मंगलू चुप ही रहे। थोड़ी देर बाद जब वह बम्बई का उस्ताद चौक घूमने जाने लगा तो उस्ताद मंगलू ने अपने जेब से सात अशरफियां निकाल कर उस के पास अमानत धरवा दीं। स्पष्ट ही यह उस्ताद मंगलू की उसे

चुनौती थी जिसे उसने स्वीकार करते हुए अशरफियां लेकर अपनी जेब में रख लीं और बाजार की राह ली।

उस्ताद मंगलू भेष बदलने की कला में इतने निपुण थे कि अगर चन्द्रकान्ता संतति के ऐय्यार भी आ जाते तो वे भी उनको अपना गुरु मान लेते। भेस बदलने के बाद उस्ताद मंगलू रहमान के घर पहुँचे। एक बार तो रहमान भी धोका खा गया परन्तु लायक उस्ताद का लायक शागिद होने के कारण तुरत पहचान लिया और दोनों उस्ताद शागिद ने बम्बई के उस्ताद को चौक घूमते हुए जा पकड़ा।

बम्बई वाले उस्ताद चौक पर घूम रहे थे और जहां जरा भी कोई उनसे लग कर निकला कि उनका हाथ जेब पर गया। हर बार वह अपनी अभ्यस्त उंगलियों से जेब में ही सात अशरफियां टटोल कर सन्तुष्ट हो जाते। जब वह चौक घूम चुके तो उन्होंने घर की राह ली। बड़े प्रसन्न थे कि उस्ताद मंगलू को नीचा दिखा दिया। बार-बार टटोल कर देखते कि सातों अशरफियां मौजूद हैं न ? घर में घुसने से पहले एक बार उन्होंने अच्छी तरह टटोल कर देख लिया और फिर घर में प्रवेश किया।

घर के आंगन में उस्ताद मंगलू बैठे हुक्का पी रहे थे। उन्हें देखते ही बम्बई के उस्ताद तमक कर बोले—'बस देख लिया।'

यह कह कर जब उन्होंने जेब में मे सात अशरफियां निकाली तो उनक आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अशरफियों की जगह ताम्बे के सात मोटे-मोटे पैसे निकले। बम्बई के उस्ताद के चेहरे का रंग एक दम उतर गया और तभी उस्ताद मंगलू ने एक विजयी की मुस्कान के साथ अपनी अंटी से सातों अशरफियां निकाल कर उसके सामने डाल दीं।

कहते हैं कि बुरे आदमी का अन्त बहुत बुरा होता है। उस्ताद मंगलू के बारे में भी लोगों की यह राय थी परन्तु एक दिन सुबह सुना कि उस्ताद मंगलू रात को अच्छे भले सोये मगर उठ न सके। अन्य लोगों ने जब देखा तो उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

उस्ताद मंगलू ने जिन लोगों को लूटा था उनकी अपेक्षा उनकी संख्या अधिक थी जिन लोगों को उस्ताद मंगलू ने लाभ पहुँचाया था। फिर जिन लोगों को लूटा था वह नहीं जानते थे कि हमें उस्ताद मंगलू ने ही लूटा है, अन्यथा पकड़वा न देते, परन्तु जिनको लाभ पहुँचाया था वे तो जानते थे। उनके लिये तो उस्ताद मंगलू किसी दैवी दूत से कम न थे। उस्ताद मंगलू की अर्थी उनके शागिदों ने बड़ी धूमधाम से उठाई और उनकी अर्थी के साथ हजारों आदमियों की भीड़ थी। कुछ लोगों ने कहा—'चलो समाज का कोढ़ दूर हो गया परन्तु आंसू बहानेवालों की संख्या कहीं अधिक थी।'

उस्ताद मंगलू में आसाधरण प्रतिभा थी, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता उनकी प्रतिभा का सदुपयोग न होने देने के लिये कोई दोषी हो, उस्ताद मंगलू को किसी भी दशा में दोषी नहीं ठहराया जा सकता। समाज ने प्रतीभा की उपेक्षा की उसके विकास के मार्ग रुद्ध कर दिये, वह दूसरे स्त्रोत में फूट निकली।

सत्यदेव शर्मा

रूप का रोना

●

नारायणदास चारपाई पर लेटा बंधा-बंधा करवटें पलटता रहा, वह अच्छी तरह हिल जुल भी नहीं सकता था, नींद तो उसे आ ही न रही थी। उसने बीते जीवन को कुरेदने और उसकी याद में खो जाने की बहुत कोशिश की परन्तु बीते हुए जीबन में ऐसी एक बात न थी जिसे याद कर वह सुख की मिथ्या प्रवंचना में ही दो क्षण गुजार लेता, बल्कि बीती बातों को याद करके उसके जीवन में इतनी तलखी आ जाती थी कि वह और भी तड़पने लगता और उसके जोडो मे अधिक पीड़ा होने लगती। भविष्य उसका अन्धकारमय था, वह कल्पना के बल पर ही बीत रहे सत्य को झुठला कर एक सुखद जीवन की रचना न कर सकता था। और पास पड़ी सुभागी लेटे-लेटे खुर्राटे भर रही थी, शायद किसी सुख स्वप्न मे लीन हो। उसके सिर के बाल बिजली के पंखे की हवा से उड़-उड जाते थे, और सोये हुए अधर कभी-कभी फड़क उठते। नारायणदास ने उसकी ओर आंख उठाकर देखा तो एक बार ईर्ष्या से उसका दिल जल उठा। कैसी मीठी नींद में गर्क है, इसे कोई पीडा नहीं, कोई दुख नहीं। यदि इसकी टाँग टूट गई होती तो मैं अपने हाथों से इसकी पट्टी करता, इसकी टाँग दबाता, इसे उठाता, बिठाता, लिटा देता, इसका सिर सहलाता और इतना सा स्पर्श मुझे कितना सुख देता। टांग भी टूटी तो मेरी ही, यह भी मेरी सेवा करती है, अपने हाथों से मुझे दबाती है, उठाती बिठाती है, गई रात तक सब काम करती रहती है, किन्तु इसके स्पर्श से मुझे सुख अनुभव नहीं होता। काम सब करती है, परन्तु थकी-सी, हारी-सी, मजबूर-सी, मुंह बिचका कर, शायद इसलिए कि मैं कुरूप हूँ, शरीर की त्वचा लटक गई है, इस पर मेरे पल्ले माल नहीं, यह सोचते सोचते वह तड़फ उठा और उसने सुभागी को जगाने की ठान ली, लेकिन रुक गया। मन में आया, वही तो मेरा एकमात्र सहारा है, थक हार कर सो गई है, तो सोती रहे, इतना ही क्या कम है कि इतना रूप लेकर भी यों साथ चिपटी है, कहीं भाग जाये तो...... यह सोचते ही नारायणदास घबरा गया, उसकी आँखो में अंधेरा छा गया। उसे धरती पर लेटी सुभागी दिखायी न दी।

"सुभागी, सुभागी, कहां चली गई? मेरा गला सूख रहा है, पानी तो पिला दे।"

सुभागी हड़बड़ा कर उठ बैठी, "क्या हो गया तुम्हें, यों ही चिल्लाने लगते हो, जरा आंख लगी कि बस तुम आसमान सिर पर उठा लेते हो। पानी तुम्हारे सिरहाने रक्खा है, उठाकर पी क्यों नहीं लेते ?"

"खुद पी सकता, तो तुम्हें क्यों कष्ट देता !"

इतना कहते नारायणदास कुछ लज्जित-सा भी हो गया, उसने वास्तव में व्यर्थ ही सुभागी को जगाया था, पानी पीने का तो केवल बहाना था। वह अपने आस-पास मंडरा रही शून्यता से डर रहा था, सुभागी को दिलासा देते हुए बोला—

'मैंने तुम्हें कितना कष्ट दिया , सुभागी ?'

'मैं तो कष्ट सहने के लिये ही पैदा हुई हूं, उसने उठ कर पानी की कटोरी नारायणदास के मुख से लगा दी, पानी के दो घूंट पीकर ही नारायणदास ने मुंह फेर लिया और सुभागी को सिर से पाँव तक एक नजर भर कर देखा, और एक लम्बी-सी आह भर कर कहा......

'यह रूप और इतना कष्ट ?'

'तुमने सुना नहीं', सुभागी बोली, 'रूप रोये और कर्म खोये ! भगवान ने रूप देकर कर्म छीन लिया, फिर भी जाने किसने क्यों मेरा नाम सुभागी रख दिया।'

'रूप तो मेरे कर्मों में भी कम नहीं सुभागी—मेरी पहली पत्नी भी कम रूपवान न थी पर मुझे उसे स्पर्श करने का भी अवसर न मिला और वह मुझसे छिन गई।'

'क्या वह मर गई थी, मैंने तो सुना है कि अब भी वह जीवित है।'

'मेरे लिये तो वह वर्षों से मर चुकी, मैंने उसे रुलाया, दुखाया, तंग किया, रूप ही उसका दुश्मन हो गया था। मैं स्वयं कुरूप था, इसके लिये उसके प्रेम पर मुझे संदेह था, मैं समझता था, वह मुझे दिल से नहीं चाहती, वह प्रेम भी करती थी तो मैं उसे नाटक ही समझता था, अपनी कमी को जानते हुए भी ऊपर से बनता था, अकड़ता था, न जानते हुए भी जान बूझ कर उसके प्रेम की उपेक्षा करता था, वास्तव में नाटक मैं कर रहा था, करते-करते यह अभिनय ही मेरे जीवन का एक अंग बन गया, मैं पहरों घर से बाहर रहता, वह मेरी प्रतीक्षा में घंटों गुजार देती, मैं चाहता, मेरी पत्नी रूपवान न होकर कुरूप होती, मुझसे भी गई बीती, वह नहीं, जैसे उसका रूप मुझे काटने दौड़ता, मैंने उससे पीछा छुड़ाने के बहाने खोजने शुरू किये। एक दिन खुद ही दफ्तर से उठकर बाग की सैर को चल दिया, चपरासी से कह दिया, उसे मेरे पास बाग में छोड़ आये। चपरासी बड़ा भलामानस और परखा हुआ पुराना आदमी था। वह उसे लेकर बाग की ओर चला आया, मैं जानबूझकर वृक्षों के एक झुण्ड की आड़ में छिप गया, वे मुझे ढूंढ़ते रहे और निराश होकर घर लौट गये। जब

घर के पास पहुंचे तो मैं भी उनसे जा मिला। तब चपरासी उसे घर नजदीक आया जान, छोड़कर अपने क्वार्टर की ओर चल दिया। मेरे लिये अच्छा बहाना मिल गया, और मैंने घर जाकर उसकी बुरी गत की। उसने बहुतेरी सौगन्धें खाई. रोई धोई, सत्य की दुहाई दी, मैंने एक न सुनी और लज्जा की मारी वह पीहर चली गई। दो एक दिन तो मैंने झूठे गर्व और मिथ्याभिमान में काट दिये। फिर मुझे उसकी याद सताने लगी, मैंने उसे पत्र लिखे, संदेश भिजवाये, पर वह न आई, और न आई......

इतनी बात कहते नारायणदास का गला भर आया। उसकी टूटी हुई टांग में पीड़ा होने लगी, सुभागी ने उसे पाँसा दिलाया, टांग दबाई और पानी की कटोरी मुंह से लगा दी।

अब सुभागी की नींद भी उचाट हो गई थी, पर यह चुपचाप पति के मुंह की ओर देखे जा रही थी......

नारायणदास जरा सावधान हो गया था, उसकी रातें यों ही कटती थीं। कभी रोता, कराहता तो कभी बातें करता, कभी सुभागी से लड़ पड़ता, वह जरा-सा पानी लेने या किसी काम से बाहर जाती और एक मिनट की भी देर हो जाती तो आवाजें देने लगता था, जैसे सुभागी कहीं भाग न जाये। उसके आने पर जिस लाठी के सहारे जरा बैठ जाता था, उसी से उसे मारने पर उतारू हो जाता, सुभागी हंस देती, निराश और मजबूर आदमी के गुस्से पर। वह तो जैसे सुभागी को अपनी चारपाई के साथ बंधी हुई देखना चाहता हो।

नारायणदास को चुप देख कर सुभागी ने मौन भंग किया, 'यदि उसके साथ तुम्हारा निर्वाह न हो सका तो फिर मुझे क्यों ले आये थे? रूप तो मेरा तब अच्छा ही रहा होगा।'

'तुम तब की बात कह रही हो, अब भी तुम्हारे रूप में जो आकर्षण है, उसका जवाब नहीं। मेरा भाग्य देखो, रूप अब भी मेरे आगे-पीछे फिर रहा है। ठीक जैसे ट्रैफिक के सिपाही के आस-पास कारें फिरती हैं या मुनीम की लाखों पर कलम चलती है, चाहे पल्ले कुछ भी न पड़े।

मुझे आशा न थी कि मेरे पल्ले फिर इतना रूप पल्ले पड़ जायेगा, मैं तो औरत की तलाश में था जिसके बिना मुझे घर खाने को आता था, जिन्दगी दूभर जान पड़ती थी। मेरे जैसे कुरूप और निकम्मे आदमी को कौन अपनी लड़की ब्याह देता, जिसने पहली पत्नी छोड़ रक्खी थी, फिर भी मैं औरत के लिये पागल हो रहा था। इतने में एक मित्र ने आकर कहा कि 'चलो आज एक औरत तुम्हें खरीद दें। 'मैं हैरान था, पर औरत का नाम उसके मुंह से सुनते ही जैसे राक्षस को आदम बू चढ़

जाती है, मुझे भी औरत की गंध आने लगी, मैं उसके साथ हो लिया। वहां मेरे जैसे नहीं, मुझसे बहुत तगड़े सुन्दर, स्वस्थ और रूपवान व्यक्ति थे। जब तुम वहां आईं तो तुम्हें देखकर मन में एक जिद्द-सी बैठ गई थी, कि तुम्हें लेकर ही जाऊंगा। तब आपस में कनखियों से बातें होने लगीं, चाहे दूसरे तुम्हें किसीलिये ले जाना चाहते हों। शायद नफा कमाने के लिये, आगे बेचने के लिये, परन्तु मैं तो उजड़ा घर बसाना चाहता था। दूसरे माल का नीलाम तो बड़े जोर शोर से बोली देकर होता है, परन्तु औरत की बोली चुपचाप पड़ती है। चुपचाप कनखियों से ही बोलियाँ पड़ने लगीं। तुम तब तक एक बार झलक दिखाकर जा चुकी थीं, मैंने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया। बूते से बाहर बोली दी, मेरा विचार था, तुम्हारा रूप मेरे भाग्य को भी चमका देगा, मेरी बोली के सामने कोई न ठहरा, मैंने बाजी मार ली। तब शायद एक पंडित को बुला कर ब्याह का नाटक भी रचा गया था।

और मैं उसी नाटक को सत्य मान कर तुम्हारे साथ निर्वाह किये जा रही हूँ। मै यह न जानती थी कि मुझे जिन्स की तरह बेचा जा रहा है।'

'क्या सच ?'

'नही तो अब तक तुम्हारे साथ बंधी-बंधी क्यों फिरती, और तुम्हें भी शायद यह पता नही, मुझे बेचने वाले और ब्याहने वाले कौन थे ?'

'कौन थे ?'

'मेरे बेटे, मेरे पति की सन्तान, जिन्होंने पहले मेरे बूढ़े पति को इसलिये जान से मार दिया कि अब उसकी जायदाद की नयी मालकिन आ गई है, उस समय मेरा विवाह हुए कुछ दिन ही हुए थे। बूढ़े ने अपने बेटे और बहुओं के व्यवहार से तंग आकर ब्याह किया था, मेरे रूप को खरीदा था और हलवाई की दूकान पर सजी हुई मिठाई को देख-देख कर खुश होने वाले उस बालक की तरह खुश हो रहा था, जिसकी जेब मे मिठाई खरीदने को पैसा पास न हो। उसकी इतनी-सी खुशी इसलिये छीन ली गई कि वह अपनी जायदाद मेरे नाम पर कर देने की बात सोच ही नहीं रहा था, मुझसे कहता भी था। मेरे कारण उस पर भी मुसीबत आई, और दवा के बहाने उसे जाने क्या दे दिया कि वह चलता बना और मुझ पर ऐसी कड़ी निगाह रक्खी गई जैसे कत्ल का कोई अपराधी हो।'

'और तब बेटों ने मां को ब्याह दिया ?'

'हां, ऐसा ही हुआ।'

मुझे यदि ऐसा मालूम होता तो मैं यह घृणित काडं कभी न करता। रूप के छल में मैं सचमुच दुर्भाग्य ही खरीद लाया। अभी तीसरा ही दिन था तुम्हें आये हुए

कि कुछ मित्रों को घर पर ले आया। तुम्हारे आने की खुशी मनाने के लिए, इसी खुशी में थोड़ी पी भी गया था, तुम्हें साथ ले जाकर बाहर घूमने जाने का विचार भी था। मित्रों को बाहर छोड़ घर को लौटा, तुम्हें आवाज दी, तुमने अपूर्व सजधज से अपने रूप का शृंगार किया था, मैं तुम्हें लेने आगे बढ़ा, तुम्हारे रूप की ताब न ला सका। लड़खड़ाकर सीढ़ियों में गिर पड़ा और मेरी टाँग टूट गई। तब से मैं अशक्त पड़ा हूँ। मुहताज, रूप को देख देख कर जलता रहता हूँ। रूप मेरा पानी भरता है, मेरी सेवा करता है, पर मैं रूप को गले का हार बनाकर झूम नहीं सकता... इतना कह नारायणदास ने एक ठण्डी सांस ली।

थोड़ी देर खामोश रहने के बाद खुद ही बोला--'सुभागी ! मैंने रुपए से रूप खरीदा, तुम रूप से भाग्य खरीद सकी, सुख न वर सकीं....'

मैंने स्वयं अपने रूप को नहीं जाना, न इसे समझा, न इसे परखा। मेरे रूप को बेच कर मेरे भाई और फिर मेरे बेटे मालामाल हुए और मेरे पल्ले पड़ा--दुर्भाग्य, जिसका रूप तुम हो, और अब जब मै अपने रूप को जान सकी हूँ, तो इस पाप के मारे तुम्हें छोड़कर नहीं जाती कि मेरे रूप ने एक के प्राण लिये, दूसरे को जीवन भर के लिए पंगु बना दिया। इसी तरह यह रूप दुख का कारण बनता रहा तो इतना पाप सिर पर लाद कर भगवान को कैसे मुंह दिखाऊंगी ?'

'भगवान, फिर भगवान ? हां, सुबह हो गई, भगवान का नाम लो, और मुझे सोने दो, रात भर तो चैन नहीं लेने दिया।

चिरंजीलाल पाराशर

चुनाव की मोटर

●

जिस समय बुद्धि विशारद जनता को अपना 'भाषण-मिक्सचर' पिला कर नगरों में चुनाव बुखार का प्रसार कर रहे थे, उस समय देश में अन्न और वस्त्र के अभाव के अलावा दो वस्तुओं का अकाल और पड़ गया था—एक मोटरों का और दूसरा कवियों का—इनकी जरूरत मुर्दे के कफन की तरह प्रत्येक उम्मीदवार को थी।

कबाड़ियों के यहाँ जितनी भी मोटरें थीं; वह या तो पुराने-धुराने पुर्जे डालकर उन्होंने स्वयं ही टैक्सी बना डाली थीं या स्वतन्त्र उम्मीदवार उन्हें स्वयं ही खरीद कर ले गये थे। यही हाल कवियों का था, एक-एक रात में आठ-आठ और दस-दस मुजरे उड़ा रहे थे।

समय की बात है, बुद्धू को अपने एक साथी के साथ इसी चुनाव-बुखार के दौरान में वोट भिक्षा के लिये जाने की आवश्यकता आ पड़ी। सवाल जाने का ही नहीं था, जल्दी जाने का था—ताकि हम से पहले दूसरे भिखारी न पहुँच जायें। वैसे जाने को पैदल भी जाया जा सकता था लेकिन पैदल जब तक पहुँचते तब तक पोलिंग भी समाप्त हो जाता, इसलिये एक टैक्सी की जरूरत थी।

कहते हैं कि प्रयत्न से परमात्मा मिल जाता है, इसलिये हम ने प्रयत्न आरम्भ किया और मद्रासी कम्युनिस्टों की तरह हमारा प्रयत्न सफल भी हुआ। हमारे प्रयत्न के फलस्वरूप परमात्मा की जगह एक सरदार हाथ लगा। टैक्सी की तो पता नहीं वह उसकी थी या किसी और की, लेकिन थी टैक्सी और उन दिनों चुनावों के ही किराये चल रही थी।

सरदारजी से सौदेबाजी शुरू हुई—

मैंने कहा—"सरदार, सवेरे से शाम के ९ बजे तक गाड़ी चाहिये तैयार हो न ?"

"असी तो रात नूं भी तैयार हैं।"

"क्या लोगे ?"

"बैतालीस रुपये अट्ठ घंटे दे।"

"पैट्रौल भी इसी में है या नहीं ?"

"पिटरौल साडा होगा।"

"अगर पैट्रोल हम दें ?"

"तो बी रुपये।"

"अच्छा चलो।"

"पहले तुसी अपने झंडे-झुन्डियाँ पा लो और अपने बाजों-साजों को सजा लो असी जरा अगले पहिये में हवा डाल लेवें !" सरदार जी बोले।

"बस हमें तो तैयार ही समझो, सरदार।"

"अभी तो तुसी हल्ला मचाने वाले छोकरे-छाकरे भी लाओगे ?" सरदार जी ने फिर चुनाव-साधनों की हमें याद दिलाई।

"नहीं, हमें हल्ला नहीं मचाना है चुपके-चुपके काम करेंगे।"

"अच्छा जी, सानू कोई ऐतराज नहीं, हूण चलदे हैं। तुसी जेड़ी मर्जी आवे करना।"

सरदार जी ने गाड़ी स्टार्ट की और हमारे रिकार्ड बजने शुरू हुए। पहले हम अपने स्थान से दो मील के एक गांव में गये। हमारा स्वागत वहाँ ग्राम के कुत्तों ने किया। कुछ ने तो एक बार हमारी ओर देखा और उपेक्षा सी दिखा कर चल दिये; मानो आचार्य विनोबा भावे की जमीन मांगने वाली सभा से उठ कर पुराने जमींदार आ रहे हों। कुछ ने जरा हमारे इस तरह गांव में घुसने पर पुर्तगालियों की तरह से असन्तोष प्रकट किया। बहुत भूकें और ड्राइवर से प्रेमालाप तक करने को तैयार हो गये। यही हाल उस गांव के आदमियों का रहा। कुछ बच्चे रिकार्ड सुनने आये। कुछ लड़कियाँ और बहुएं भी पानी भरने जाती गाने सुनने को रुकीं या आती हुई रुकीं। क्योंकि 'मेरा लाल दुपट्टा मल मल का, हवा में उड़ता जाय रे' कौन जाने सुनने को फिर कब मिलता। किन्तु कोई भी ऐसा आदमी हमारे पास नहीं अटका जिसे देख कर हम यह अन्दाज़ा लगा लेते कि चलो एक कबूतर तो उतरा छतरी पर ! मालूम ऐसा होता था कि मोटरों के धुंए से और इन रेकार्डों से वह लोग ऐसे झुंझलाये बैठे थे कि कुछ ज्यादा कहा तो काट खायेंगे।

बहुत देर के बाद एक लाल बुझक्कड़ का भाई आया। पहले तो उसने हम दोनों को ऐसे ध्यान से देखा जैसे उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों के सिपाही डाकू बशीर की बेगम के फोटू को देखते थे। उसके बाद उसने सरदार जी की जो डाक्टरी आरम्भ की तो बस खिल-खिला पड़ा।

"अरे ओ खचेडू, अरे यो तो वे ही हैं सरदार कल वाला जो कल रेल के अंझन वालों को लाया था।"

खचेड़ू पास आकर बोले—"हम बै, अरे यो तो मोटर भी वोई बुढ़िया है कल वाली !"

"अरे खचेड़ू, अरे, ये क्या कहे हैं ?" पहला फिर बोला।

"अरे सारे-सुसरे वोट ही माँगने आवे हैं। दिन निकलने नहीं देते सवेरे ही आय बालकों को जगावे हैं। पता नहीं गामन के पिछवाड़े ही पड़े रहे हैं क्या रात कूं !"

चुनाव-प्रचार में यहां तो पहले ही मक्षिकापात हुआ। गांव वालों के इस स्वागत से अपने यार का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया और उस मोटर में बैठे-बैठे ही चुनाव हार गये। लेकिन मोटर का बिल बैतालिस रुपये का ठहर चुका था इसलिये दिन भर तो गाड़ी का पहिया घुमवाना ही था।

अब की बार अगले वाले गांव में गये। कुत्ते वहां के भी आज घर ही थे, अन्तर केवल इतना ही था कि यहाँ के कुत्तों की परिषद् एक बन्द पड़े कोल्हू के गन्ने के छिलकों पर बैठी हुई कोई गहन समस्या को सुलझा रही थी। दूर से देखने पर ऐसा लगता था मानो यह जाति भी चुनाव-समस्या से ही उलझ रही है। या तो यह इस बात का विरोध कर रहे हैं कि राजनीतिक नेताओं या स्वतन्त्र उम्मीदवारों ने हमें अपने चुनाव-चिन्हों में स्थान न देकर हमारा अपमान किया है अथवा यह सवाल चल रहा होगा कि कुत्ता-परिषद अब किस राजनीतिक दल को सहयोग दे !

कुछ भी हो हमारी मोटर इनकी आंखों में भी खटकी। इन्होंने भी वही रवैया अपनाया जो इनके बिरादरी वालों ने पिछले गांव में अपनाया था। परन्तु एक यहाँ अच्छी हुई और वह यह कि यहाँ नाबालिगों के बजाय तमाशा देखने बालिग अधिक आये। बालिग ही अधिक क्यों आये इसके रहस्य का पता बाद में हमें चला सरदारजी से। सरदार ने बताया कि छीच्छरवार को जड़ी पार्टी वाले साडे नाल आये थे, दंगई अर्का (शराब) की बोतलों को भी अपने कोल लाये थे और खूब जल्सा किया था इनका।

खैर, वह आये और झाँक-झाँक कर हमें देखते रहे, अब हमारा रिकार्ड गाने का बन्द था और जबान का खुल चुका था। चुनाव-मिक्शचर उनके गलों में धकेला जा रहा था, कि अचानक कहीं से पता नहीं कब आवारा लड़कों की एक टोली आ निकली !

"अरे बैजू, देख तो बाबूजी का गला कैसा फटाफट बोले है जैसे गधे को दो डंडे मार कर बुलाया जा रहा हो। पता नहीं क्या रेंक रहा है !" एक ने कहा।

बैजू ने कुछ समझदारी का परिचय दिया—"चुप रह बे, देखता नहीं किराये

की मोटर में वोट मांगने आये हैं। शाम को बाबू जी को भी दो रुपये मिलेंगे रेंकने के।"

"अरे यह सरदार तो परसों भी आया था।"

"तो इससे क्या ?"

"इससे तो यही अच्छा है, इसे ही भेज दिया करें रेकार्ड देकर।"

अभी यह शैतान-मण्डली हमारे धैर्य की परख कर ही रही थी कि एक दूसरे दल का ठेला हल्ला मचाते हुए गांव में आ घुसा और हम वहाँ से भी पिटे से अपना मुंह लेकर चल दिये !

अब अगला गांव लक्ष्य बनाया। वहां भी पहुँचे, कुत्ते यहाँ के पता नहीं कहां गये थे। आदमी, औरतें और बच्चे जरूर यहाँ थे। यहाँ भी पहले ही छींक हुई। एक अर्ध अक्षर ज्ञान व्यक्ति ने पहले ही आवाज़ कसी—"ये आये बरसाती" परन्तु यहाँ का मामला सरदार ने सम्भाल दिया। बजाय हमारे प्रचार का काम उसने शुरू किया !

सरदार ने भाषण देना शुरू किया और बिना दम लिये ही अपनी कहता ही चला गया —"अरे गांव वालो, अरे मूर्खो, अरे ना समझो, तुम्हारे बैल कहाँ गये, तुम्हारे कपड़े कहाँ गये, अरे आज तुम्हारे मुर्दे भी नंगे जाते हैं मरघट को। तुम्हारी यह दशा ! अरे इसी दशा को सुधारने हम आज निकले हैं। हम तुम्हें असली आज़ादी देने आये हैं, पूरी देने आये हैं, लंडूरी देने नहीं। तुम आजाद बनो, नाशाद बनो, बर्बाद बनो, कुछ तो बनो। तुम नंगे चलो, सर के बल चलो, सीधे चलो, उल्टे चलो, पर चलो तो सही। हम तुम्हें चलाने आये हैं, जिलाने आये हैं, खिलाने आये हैं। हम सब कुछ तुम्हें देंगे, मरेंगे-जियेंगे, पर यह सब तभी होगा जब तुम बस—अपना, अपनी घरवाली का, पड़ौसिन का, पड़ौसी का, भाई-भावज, साले-साली का वोट—वोट, अरे वही वोट हमें दोगे, अरे उसी निशान को दोगे, उसी को जिसका चुनाव-चिन्ह, जिसका निशान 'उल्लू' है !"

सरदार ने अच्छी तरह समां बांध दिया। यहाँ समां बांध कर दूसरे ओर एक गांव की तैयारी की। अब हौंसला बुढ़िया मोटर से भी आगे ही आगे जा रहा था। पहले गांव में हारे अपने साथी उम्मीदवार की जान में जान ही नहीं आई बल्कि वह अब अपने को सचमुच जीता मान रहा था।

अब हमारी मोटर चौथे गांव का चक्कर लगा रही थी। माइक फिर सरदार को थमा दिया गया था। सरदार सचमुच प्रचारक पार्टियों के सहवास में आकर आधे के करीब नेता बन गया था। इसलिये हमने अगले दिन के लिये और ब्यालीस रुपये देकर सरदार की वह बुढ़िया कार रिज़र्व करा ली। सरदार ने हमें बताया कि वह

मोटर ही नहीं मीटिंग भी चला सकता है। मतलब यह कि यदि नेताओं की कमी हो तो भाषण भी दे सकता है और दूसरों की मीटिंग को सांडों आदि की सहायता से उखड़वा भी सकता है। उसके पास सभाओं में शोर मचाने वाले आदमी भी हैं और मिटिंग में वक्ता से सवालात करने वाले भी पढ़े-लिखे बेरोजगार दो रुपये खुराक पर ला देगा साथ ही रुपये डेढ़ रुपये पर ढेले भी फिकवाये जा सकते हैं।

चुनाव जिताने के नुस्खे और उनकी तुरन्त डिलिवरी के उपाय सरदार जी हमें बताते चले जा रहे थे और हम उनकी समझदारी, होशियारी और गुणों की दाद दिल ही दिल में कर रहे थे कि अचानक एक जोर का झटका लगा, सरदार जी की बुढ़िया मोटर गांव के रास्ते में पड़े एक गांव वालों के ढेले फोड़ने वाले कोल्हू पर चढ़ बैठी !

मोटर के दो पहियों ने तुरन्त उससे असहयोग करके खेतों की ओर रास्ता नापना शुरू किया। मैंने अपना शरीर अपने साथी के ऊपर डाला और सरदार जी के ऊपर एंजिन का थोड़ा-सा हिस्सा टूट कर आ गिरा। कई मिनिट के बाद हम लोगों को होश आया, गांव वाले भागे-भागे आये कि वोट मांगने वाले दब गये ! सरदारजी भी निकाले गये। कुछ लोगों की सहायता से उन असहयोगी पहियों को भी ठिकाने पर लाया गया और अन्त में सरदार जी के उस असहाय शरीर को मोटर में डाल कर मोटर को दस रुपयों में बैलों से खिचवा कर सरदार के घर तक लाये। सरदार को अस्पताल ले गये।

सरदार अभी तक सुना है अस्पताल में ही है, मोटर पता नहीं कबाड़ियों के यहाँ पहुँचा दी गई या अगले चुनावों के लिये फिर रख दी गई....!

राजाराम शास्त्री

झल्लीवाला

●

वह पसीने में नहाया था। उसका शरीर तवे की तरह तप रहा था। जैसे जेठ की गरमी सिमिट कर उसके शरीर में केन्द्रित हो गई हो। उसने अपनी झल्ली सड़क के किनारे वृक्ष की जड़ में पटक दी और स्वयं एक लम्बी गहरी सांस ली। और चारों अंगुलियाँ जोड़ कर माथे से पसीना पोंछा। अंगुलियों से होकर पसीने की धारा वृक्ष की जड़ को सींचती हुई भूमि में समा गई। उसने और उसके साथियों ने कई बार इसी वृक्ष की जड़ को अपने पसीने से सींचा था। इन्हीं लोगों के पसीने के बल पर यह वृक्ष शहर की पक्की सड़क के किनारे अपने सहारे खड़ा हो पाया था। उसने दोनों कूल्हों पर हाथ रख कर एक दीर्घ सांस ली और तब वह वृक्ष की जड़ में झल्ली को सिरहाने रख कर सीधा हो गया।

उसे दो दिन से ज्वर हो आया था। धमार्थ औषधालय में तीन घंटे बैठ कर वह छोटी छोटी तीन पुड़ियां ले पाया था। वैद्य ने थकान को ज्वर का कारण बताया था और बताया था आराम और दूध के साथ औषध का प्रयोग। किन्तु ये दोनों काम उसके भाग्य में न बदे थे। वह दूध पी सकता तो बीमार ही क्यों होता। पुड़ियाँ उसे मुफ्त अवश्य मिल गई थीं, पर उसे औषधालय से एक मील दूर वैद्य के घर तक केवल बोझ छोड़ कर आना पड़ा था। उसी से वह हांप गया था और वृक्ष की छाया में वैद्य जी का प्रथम प्रयोग आराम करने के लिये वह सीधा हो गया था।

धूप के भय से लू का झोंका वृक्ष की ओर आता पर उसके शरीर की तपश से और जलता हुआ तेजी से निकल जाता। उसकी आंखें झपकने लगीं। अर्धनिद्रा में बीते क्षण आंखों के सामने प्रत्यक्ष होने लगे। उसका पांच वर्ष की जमना बिना अनुपान के चल बसा था। उसने उसे बचाने के लिये कितनी दौड़ धूप की थी। वह धमार्थ औषधालय से घंटों बैठ कर रोज दवाई लाता। फिर दिन भर बोझ में झल्ली उठाए मारा मारा फिरता। उसने अपनी मजदूरी के पैसे कम कर दिये थे। उसे काम चाहिये था। उसका विश्वास था कि काम पूरा करने पर मजदूरी भी पूरी मिलेगी ही। बेरोजगारी के साथ साथ शहर में झल्ली वालों की संख्या भी बढ़ती जा

रही थी। जिससे बोझ मिलना दूभर हो गया था, और फिर भी जाता तो मजरी तै किये बिना उजरत पूरी न मिलती और शाम तक भाग दौड़ कर भी वह भोजन और दूध के पैसे न कमा पाता था। रातों पति-पत्नि इकलौती बेटी जमना के सिरहाने बैठे रहते। पत्नि कहती, 'तुम दिन भर के थके हो, थोड़ी देर आराम कर लो। पर वह यह जानते हुए भी कि पत्नि को दिन भर घर का धन्धा करते हुए जमना की देख रेख करनी पड़ती है जमना की मां को जगते छोड़ कैसे सो सकता था। बैठे बैठे किसी को झपकी आ गई तो क्षण भर के लिये वहीं पांव फैला दिये। आंख खुली तो फिर उठ बैठे। कभी बच्ची को पानी चाहिये कभी माँ बाप का प्यार। पानी और प्यार के अतिरिक्त उनके पास और था भी क्या? पर प्यार से अनुपान की स्थानपूर्ति न हो सकती थी, न हुई। और दुःख आते देर नहीं लगती और जाते हुए वह अपना कोई चिन्ह छोड़ जाता है। स्थायी, सदा कांटे के समान खटकने वाला। उसी की देख रेख में जमना की मां भी धीरे धीरे थकावट अनुभव करने लगी थी। उसकी आंखें बोझल रहने लगीं। शरीर तपने लगा, किन्तु जमना के पिता को तभी पता चला जब उसने भी चारपाई पकड़ ली। अब वह क्या करे। जमना को संभाले, जमना की मां को संभाले या उनकी दवाई और अनुपान का प्रबन्ध करे। धीरे धीरे जमना भी गई और जमना की मां भी। अब वह संसार में अकेला था। थका—माँदा बीमार।

विचार धारा चल रही थी। बीते क्षण एक एक कर आंख के सामने आते जा रहे थे। उसे प्रतीत हुआ जैसे गरम गरम सीसा उसके कानों में किसी ने उंडेल दिया हो। कोई खड़ा चिल्ला रहा था, झल्ली! ओ झल्ली!!

उसने धीरे से अपनी ओझल पलकें ऊपर को उठाईं। थोड़ी दूर खड़े लाला जी पुकार रहे थे, झल्ली! आंखें खुली देख लाला ने फिर पुकारा। अरे! बस स्टेंड चलेगा। उसने हाथ ऊपर को उठा कर धीरे से सिर हिला दिया और आंखें बन्द करके लेट गया। वह आराम चाहता था और चाहता था दूध की कमी भी आराम पूरी कर दे। उसने फिर सुना, लाला जी कह रहे थे 'अरे एक चवन्नी मिलेगी। यह दो कदम पर रहा बस स्टेंड, पर उसने आंखें बन्द किये हाथ हिला दिया। लाला जी ने इधर उधर दूर तक दृष्टि घुमाई पर कोई दूसरा मजदूर दिखाई न पड़ा। उसने फिर पुकारा 'अरे चलेगा कि नहीं, चार कदम के छः आने मिलेंगे। वह बड़बड़ाया पूरा मील भर है लाला! इस दोपहरी में कौन जाएगा।'

'अरे मुफत थोड़े ही ले जा रहा हूँ और दुअन्नी ले लेना, और क्या लूटेगा इतनी दूर की अठन्नी मिल रही है।

उसने आंखें खोल दीं। एक बार लाला जी को ऊपर से नीचे तक देखा और

फिर वह धीरे धीरे उठ बैठा । दस आने दो लाला ! उसके मुंह ले निकल गया दो आने सिगरेट तम्बाकू के ।

अरे चवन्नी से ज्यादा का काम नहीं और तुझे अठन्नी मिल रही है । चल सिगरेट मैं पिला दूंगा ।

वह धीरे धीरे उठ खड़ा हुआ । उसने सिर का ईंडू ठीक किया और वजन को हाथों पर तोल कर देखा । लाला बोल उठे, तीस सेर से अधिक नहीं है । पर उसके जानकार हाथों ने बता दिया था बोझ सवा मन से कम न था । उसने कहा, बाबू ! जबान दे चुका हूँ नहीं तो दस आने से एक दमड़ी कम न लेता । लाला जी बात पी गए । वे बीच में टोक कर अपना काम क्यों बिगाड़ते । शिखर दोपहरी में दूसरा आदमी मिलना असम्भव था । उन्होंने बोझ को हाथ लगाया और उसके सिर पर रखवा दिया । वह एक बार कांपा और सिर के बोझ को तोला और चल दिया । झल्ली बोझ पर ओंधी धर दी गई थी ।

वह चला जा रहा था । ऊपर सूर्य तप रहा था नीचे पृथ्वी और उन्हीं के समान उसका शरीर भी तप रहा था । पर अठन्नी के छोटे से सिक्के ने उसके पांव में पर लगा दिये थे । अब वह दूध के साथ दवाई ले सकेगा । तब वह कल तक स्वस्थ होकर अपने काम पर पूरी शक्ति से लग सकेगा । इस समय बच्ची की मृत्यु का दृश्य उसकी आंखों से ओझल हो गया था, वह पत्नी के कष्टों को भूल गया था । उसे ध्यान था मिलने वाली अठन्नी का और उससे आराम से बिताए जाने वाले आगामी चौबीस घंटों का । वह आगे बढ़ता जा रहा था, पर उसकी चाल मन्द पड़ती जा रहा थी, कुछ दूर चल कर वह बहुत थकावट अनुभव करने लगा । किन्तु लाला जी के उत्साह वर्द्धकवाक्यों से उसमें नई शक्ति का संचार हो आया था । बस स्टेंड पहुँचने में अब देर ही कितनी थी । और तब उसे फिर आने वाले चौबीस घंटों का ध्यान हो आया । तब वह पूरी तरह आराम कर सकेगा । उसे फिर झल्ली ढ़ोने की जरूर न होगी । उसे औपधि के साथ दूध मिल सकेगा । उसका ताप दूर होगा । उसकी चाल फिर तेज हो गई थी । उसका एक एक पग लक्ष्य के निकट पड़ रहा था जहाँ पहुँच कर उसे आराम मिल सकेगा । किन्तु फिर उसकी चाल धीमी पड़ने लगी । बोझ और धूप के मारे उसकी सांस पतली पड़ कर रुकने सी लगी थी । प्यास के मारे गले में कांटे उठ आए थे । अब उसका एक पग मन मन का पड़ रहा था लाला जी ने फिर बढ़ावा दिया, अब तो पहुंचे ही समझो, वह रहा सामने बस स्टैंड, उसने तपती बोझल पलकें ऊंची उठा कर देखा, लक्ष्य समीप था, उसकी हिम्मत बंधी । वह पूरी शक्ति समेट कर बोझ को बस तक पहुंचाने का यत्न कर रहा था जो चलने के लिये तैयार थी ।

'बस बस यहीं उतार दो' लाला ने एक ओर संकेत करते हुए कहा। उसके पग उतावली से बढ़ चले और जैसे तैसे यथास्थान बोझ पहुँच गया। उसने गर्दन को एक झटका दिया। पसीना पोंछने के लिये हाथ ऊपर उठाया। सिर चकरा रहा था बिना पसीना पोंछे हाथ नीचे आ गया। गिरने से बचने के लिये उसने सामान का सहारा लिया और वहीं बैठ गया। उसे होश आया तो हाथ पर अठन्नी थी और बस धीमी गति से लाला को लिये जा रही थी। उसके पांव बोझल थे। शरीर भट्ठी सा जल रहा था। गले में कांटे से चुभ रहे थे। उसने इधर उधर अधीर दृष्टि से देखा। सिवा जीभ निकाले हांपते हुए आवारा कुत्तों के उसे और कोई दिखाई न दिया। उसने उठते हुए लाला को पुकारा किन्तु तब तक बस दूर पहुँच चुकी थी। उसका सिर चकरा गया। विवश उसके पांव सीधे हो गये। उसे दिखाई पड़ी बैलों की जोड़ी, खेत, अनाज का ढेर और फिर एक वर्ष अकाल। महाजन और पांच सौ रुपये के ब्याज दर ब्याज में गांव का त्याग। पत्नी और बच्ची। वह बड़बड़ाया 'आ गई, तुम दोनों आ गई। जिनकी खोज में मैं मारा मारा फिरा। अब तो छोड़ कर न जाओगी। अब मैं तुम्हें न जाने दूंगा।' हल्की सी मुस्कराहट के साथ उसने आंखें खोल दीं तब फिर किसी को खोजती सी दृष्टि इधर उधर घूम गई। झल्ली एक ओर को लुढ़क गई थी और इडू एक ओर को। उसने ओठों पर जीभ फिराई और नेत्र बन्द करते हुए एक बार कहा, खोटी! उसकी मुट्ठियाँ खुल गई और अठन्नी एक ओर को लुढ़क गई।

भगवतदत्त 'शिशु'

कजरारे केशराशि

●

चन्द्रमा की दूध-सी उज्ज्वल किरणें तरुओं पर आंख मिचौनी खेल रही थीं। धरा की नीरवता को समीर भंग कर रहा था।

बेगम इनायत बानू अन्तःपुर से निकल कर कुछ दासियों के साथ पास के एक कुंज में चहलकदमी कर रही थी। आकाश में निशानाथ उसके सौन्दर्य को देख कर कुछ लजा रहे थे। किरणें सिमटी जा रही थीं। एक दासी ने दुपट्टे का छोर पकड़ते हुए कहा--'बेगम चोर हैं।' दूसरी ने कनखियों देखा कि बादशाह सलामत स्वयं पीछे खड़े हुए उनकी यह लीला देख रहे थे।

सम्राट को सामने देख कर लौंडियां पीछे हट गईं बादशाह इनायत बानू का हाथ अपने हाथ में लेकर मखमली घास पर बैठ गया और देर तक देखता रहा सौंदर्य की अपूर्व प्रतिमा को। उसके नेत्रों से रस झर रहा था। अधरों पर आभा नाच रही थी और कपोलों की कोमलता कपलों को मात दे रही थी। सम्र ट दूसरे हाथ की अंगुलियां उसके श्यामल केशराशि में डालते हुए कहा--"बेगम तुम नहीं जानती, आज मैं कितना खुश हूँ? बेगम, आज यदि तुम हो, तो सब कुछ है। तुम नहीं हो तो कुछ नहीं। आज मैं मुंगलिया सल्तनत का मालिक हूँ। जब मैं तख्त-ताऊस पर बैठता हूँ तो सामने तुम्हारी ही तस्वीर दिखाई पड़ती है। जी चाहता है घंटों तुम्हारी खूबसूरती को पीता रहूं। बेगम तु हारे ये मुलायम केश जिनसे घटा भी शरमाती है, दिल चाहता है कि सब कुछ छोड़ कर इनमें ही उलझा रहूँ। सच कहता हूँ एक लमहे को भी आंखों से ओझल न होने दूँ!"

बेगम कहती--"मैं तो आपकी लौंडी बनने लायक भी नहीं। जो इज्जत आप ने मुझे बख्शी, भला कनीज़ उसके लायक कहां? आपने तो पांव की धूल को आसमान पर बिठा दिया!" "नहीं बेगम सच मानो, मैं बहुत खुशनसीब हूँ, जो जन्नत की परी के चश्मों में छुपा बैठा हूं।" इनायत लजाती और खिसकने का प्रयत्न करती, पर बादशाहने उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा--"इनायत अगर तुम भी इनायत नहीं करोगी, तो और कौन करेगा? मेरी इनायत, मैं कुछ नहीं चाहता, मैं तो सिर्फ तुम्हें आंखों भर देखते रहना चाहता हूँ। बेगम मुझे. कसम को मसल कर फेंक देना पसन्द नहीं,

मैं तो उसे डाल पर ही मुस्कराते हुए देखना चाहता हूं।" और उसकी घुंघराली लट को माथे पर से हटाते हुए कहता—'अरे ! चाँद घटा में छुपा जा रहा है।'

बादशाह की वे रातें जब इनायत सामने होती तो हंसती थीं, कोकिल सी कूकती थीं और भ्रमर सी गूंजती थीं, वह कभी भी बेगम इनायत बानू को आंखों से ओझल नहीं होने देता था।

सचमुच बेगम का रूप-कुसुम उस समय लाल किले में खिल रहा था। उसका-सा सौन्दर्य उस समय किसी को नसीब नहीं था। वह खुश किस्मत थी, जो सम्राट उस पर अपने प्राण निछावर करने को तैयार था। उसे और क्या चाहिये ? कलिका की तरह भ्रमर का आत्मदान। वह उसे प्राप्त था। यही कारण था कि बादशाह दिन-रात केवल उसको देखता रहता था, जैसे चकोर चाँद को।

मुगल सम्राट लाल किले के अन्तःपुर में इनायत के रूप-सरोवर में डूब रहा था। उधर उसका वजीर अब्दुल्ला खाँ उसको समाप्त करने की सोच रहा था। वह चाहता था कि दिल्ली के बादशाह फरीखसियर को गद्दी से हटा कर खूबसूरत गुलाब पर मैं भी बुलबुल की तरह चहकूं। पर बादशाह उसे अपने समीप न आने देता।

बादशाह ने सोचा, वजीर को लड़ने के लिये दक्षिण भेज दिया जाये। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। ऐसा ही हुआ। लेकिन कुछ समय बाद ही वजीर दक्षिण की विजय से वापस आ गया। बादशाह के होश उड़ गये। अब वजीर अब्दुल्ला खाँ के पौ बारह थे। बड़ी आसानी से उसने बादशाह को बन्दी बना कर कैद में डाल दिया।

मुगल सम्राट कैद में पड़ा मौत की घड़ियाँ गिन रहा था और अब्दुल्ला खाँ किले के अन्तःपुर की एक-एक बेगम को अपने महल में बुला-बुला कर मौज कर रहा था। उसे किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं थी। वह विलास में आकण्ठ निमग्न था।

अब्दुल्ला खाँ ने देखा कि मेरे महल में एक-एक बेगम के पैर पड़ चुके हैं मगर वह गुलाब जिसकी खुशबू से सारा किला महकता है, जिसे देख कर नरगिस भी शरमाती है वह नहीं दिखाई पड़ती। उसने बांदी को बुला कर हुक्म दिया—"बेगम इनायत बानू से कहो, हम उसे रूबरू देखना चाहते हैं। जब तक वह हमारे महल को अपने कदमों से पाक नहीं करती, तब तक हमारा दौलतखाना नापाक रहेगा। हम उसकी खुबसूरती का जाम एक बार नहीं, दो बार नहीं, पीते-पीते दुनिया को छोड़ देना चाहते हैं। हमारी आँखें उसके दीदार के लिये तरस रही हैं।"

लौंडी ने हाथ जोड़ कर 'जो हुक्म' कहा और तुरन्त जाकर बेगम से बोली—"वजीर साहब आपको याद फरमाते हैं।"

बेगम ने क्रोध में कहा—"जाओ कह दो, बेगम नहीं आतीं। मेरे खाविन्द को

मुझ से छीन कर वह और क्या चाहता है ? मेरे मालिक की जान लेकर भी क्या अभी उसकी तसल्ली नहीं हुई ?"

लौंडी ने आकर वजीर साहब से यही अर्ज कर दिया।

अब्दुल्ला खाँ ने पत्र लिखा—"बेगम इनायत बानू ! तुम नहीं जानतीं, तुम्हारी केशराशि की प्रशंसा कितनों की जबानी सुन चुका हूँ। बेगम, तुम्हारी केशराशि पर शायरों की शायरी हो रही है। एक ने लिखा है तुम्हारे केश, सिरीश के पुष्प से भी कोमल हैं। एक ने लिखा है कि रेशम भी उसका मुकाबला नहीं कर सकती। एक लिखते हैं कि बेगम के मुलायम बाल जो एड़ी को चूमते हैं, साँवली घटा के साँवलेपन को घटा रहे हैं। बेगम तुम्हारे केशों में मैं मछली के समान हमेशा के लिये खो जाना चाहता हूँ।

बेगम इनायत बानू ने पत्र को पढ़ कर पास खड़ी लौंडी से कहा—"अरी देख, वह वजीर अब इस देह को नापाक करना चाहता है। जो रूप अपने पति रूपी परमात्मा को चढ़ा चुकी, उसका उपभोग यह वजीर करना चाहता है। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। उनके पीछे उनकी वस्तु की रक्षा करना मेरा धर्म है, जा, कैंची उठा ला।"

अन्तःपुर के दरवाजे पर अब्दुल्ला खाँ खड़ा-खड़ा क्रोध में काँप रहा था। तत्क्षण उसने बेगम को अपने निकट घसीट कर लाने का आदेश लौंडी को दिया।

कुछ क्षण बाद लौंडी ने रूमाल में लिपटी चीज़ लाकर उसे दी। अब्दुल्ला खाँ ने खोल कर देखा, और एक दम गुस्से से आग बबूला हो उठा।

अब्दुल्ला खां ने कजरारी केशराशि को हाथ में पकड़े हुए आगे बढ़ अन्तःपुर में जाकर देखा कि इनायत बानू की जीभ लड़खड़ा रही है और वह अस्पष्ट स्वरमें कह रही है "मैंने···उनके···शरीर··को···नापाक···नहीं····होने····दिया···!"

शरदेन्दु

जीना एक कला है !

●

लाल किले के सामने, सुरेश और मैं भी प्रतीक्षकों की पांत में खड़े हो गए और जब लगभग पांच मिनट में बस आ पाई, हमने देखा कि प्रतीक्षक-पंक्ति काफी लम्बी हो चली है, बुढ़ापे की बढ़ती हुई अतृप्तियों की भांति। कुछ सुन्दरियां भी थी, जिनकी ओर रह-रह कर सब की नज़र उठती थी।

बस के लिए अधिक प्रतीक्षा नही करनी पड़ी। क्यू लम्बा था लेकिन कन्डक्टर ने आवश्यकता से अधिक आदमियों को सवार नहीं होने दिया। कुछ सुन्दरियां भी क्यू में ही खड़ी रह गईं। हां, बस चलने पर कुछ जोशीले नौजवान अवश्य उसमें जबर्दस्ती घुस आए थे, जिनको फुट-बोर्ड पर लटकता देख कुछ यात्रियों ने अपने पास बुला कर स्थान दे दिया।

बस भरी हुई थी। परन्तु जीना एक कला है। उसके लिये सभी बातें सीखनी पड़ती है—अच्छी और बुरी। मनुष्य व्यस्तता में भी अपना मार्ग निकालता है। रुकना, थक कर बैठना उसे नहीं आता। शायद इसीलिए बस में बैठने वालों ने सीख लिया है कि बस की डबल सीटों पर दो के स्थान पर तीन आदमी बैठ सकते हैं, पर जरा हलके-हलके !

बस चली तो हमें अपने समीप एक सुन्दरी की गरमाहट मालूम हुई। आंख उठा कर देखा—यौवन और सौन्दर्य की भव्य प्रतिमा ! इङ्गलेंड मे बना हुआ भारत का नमूना। अत्यन्त महीन रेशमी साड़ी, शरीर से सटा हुआ कोट। पाउडर, लिपिस्टिक नेल पालिश—सभी आधुनिक प्रसाधन। उसने हमारी ओर देखा, हमने उसकी ओर ! उन बड़ी मदभरी आंखों में चंचल याचना की झलक थी। समस्त सीटों पर पहले ही तीन-तीन आदमी बैठे हुए थे, केवल हमारी सीट पर ही हम दो थे।

सुरेश ने हलके से अपने हाथ से मेरा हाथ दबाया। मैने सम्मान के साथ उसके लिए जगह कर दी। वह 'धन्यवाद' कह कर आसीन हो गईं।

अब तक कन्डक्टर हम तक आ पहुँचा। मैं जेब में हाथ डालता ही रह गया और सुरेश ने खट से रुपए का नोट उसके हाथ पर रख दिया—तीन एक्सचेंज। कन्डक्टर ने दस आने लौटा दिये और टिकट देने लगा। सुरेश ने उंगलियों के संकेत से

मना कर दिया। कन्डक्टर खुश होकर चला गया। रूप की प्रतिमा ने भी अपनी एक मुसकराहट में जीवन का सारा रस उंडेल दिया।

'लुडलो कैशल' कन्डक्टर ने एक हल्की आवाज़ दी ही थी कि साथिन उतर गई।

किन्तु थोड़ी देर के उपरान्त अपन एक्चचेंज से उतर कर अन्डरहिल रोड की ओर बढ़े ही थे कि तभी एक भिखारी का बालक सामने आ गया। एकदम काला, वय लगभग पांच वर्ष, नंगे शरीर पर सिर्फ एक फटा हुआ कोट। हमने एक बार घृणा से अपनी आंखें फेर लीं। ऐसे बालकों की संख्या कम नही हैं। उनकी माताओं ने किसी बड़ी दूकान या होटल के बरामदे में अथवा किसी बड़े सघन पेड़ के नीचे अनेकों की तृष्णा शान्त कर बदले में पाये--थाड़े से तांबे और लोहे के टुकड़े और ये घिनौने बालक ! इन्हें अपना पुत्र कह कर शायद ही कोई अपनाने को तैयार हो। उनकी माताओं ने शैशव से ही इन्हें आत्मनिर्भरता की शिक्षा दी है सारे संसार पर निर्भर हो कर। भिक्षा-वृत्ति के प्रति हमारी तनिक भी सहानुभूति न होने पर भी अपनी कला में दक्ष वह बालक तब तक हमारे सामने से नहीं टला जब तक सुरेश ने उसके हाथ पर एक दो पैसे वाला सिक्का नहीं रख दिया।

रात को घर लौट कर बिस्तर पर देर तक नहीं सो सका। शाम की घटनायें एक-एक कर मस्तिष्क में चक्कर काटती रहीं। दीपशिखा, जिसके एक कम्पन पर सहस्रों शलभ जल मरने को तैयार हो सकते हैं--सुरेश, सामने बैठा हुआ, सिन्धी नवयुवक जो रह-रह कर पीछे मुड़ कर ललचाई आंखों से उसे घूर रहा था। कोने में बैठा हुआ गुजराती युवक और मैं भी। कन्डक्टर जो पचास रुपये मासिक पाकर भी डेढ़ रुपये रोज़ होटल में फूंक सकता है। भिखारी का बालक और उसे संसार में अवतीर्ण करने वाली उसकी मां। सब जी रहे हैं अपनी-अपनी कलाओं को लेकर। जीना एक कला है और यह कला सीखना कितना कितना आवश्यक है, कितना अनिवार्य ! अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार। यह कला कितनी सुन्दर है, कितनी कुरूप !

केशवदेव मिश्र 'कमल'

बंदरिया

●

दफ्तर जाता हूँ, तो घर के सामने इमली के पेड़ पर कुछ बन्दर बैठे रहते हैं। आता हूँ, तब भी वे वहीं मिलते हैं। वे दिन-रात वहीं रहते हैं।

उन बन्दरों की कूद-फांद और गति-विधियों पर मेरा अधिक ध्यान नहीं हैं, सिवाय इसके कि उनमें से एक बंदरिया अपने पेट से एक बच्चे को चिपकाये रहती है। सोने-जागते, भागते-दौड़ते वह उसे कभी छोड़ती नहीं देखी गई। विस्मय तो यह है कि वह बच्चा छूट कर कहीं गिर कैसे नहीं पड़ता? किन्तु इसका अभिप्राय यह भी नहीं कि वह बच्चा धरती पर उतरता ही न हो। जब बंदरिया आस-पास कोई खतरा नहीं देखती, तो उसे घूमने को छोड़ देती है। पर उसकी ओर से सचेत वह सदव रहती है। कहीं तनिक सी आहट हुई नहीं कि वह झट लपकी और बच्चा आ कर उसके पेट से चिपक गया।

स्वतन्त्रता-दिवस समारोह के उपलक्ष्य में सरकारी दफ्तर बन्द थे, मैं आफिस नहीं गया था। आलस में नहाने-धोने में देर हो गई और खाने पर भी देर से बैठ पाया। मेरी रसोई कोई विशेष आड़ में नहीं है। उसमें हो कर आँगन और सामने की छत सब कुछ देखा जा सकता है। जैसे ही मेरी दृष्टि थाली पर से हट कर सामने गई मैंने देखा कि धीरे-धीरे एक-एक कर बन्दरों का वह समुदाय उस इमली के पेड़ पर से उतर कर इधर-उधर पास की छतों पर फैलता जा रहा है। देखते-देखते वह सारा पेड़ बन्दरों से रीता हो गया और बन्दर इधर-उधर अपने खाने-पीने की चिन्ता में न जाने किधर चले गये। पर अकेली छत की मुंडेर के पास बच्चे को गोद में लिये बैठी वह बंदरिया मेरे चौके की ओर, शायद कुछ अपेक्षा से, देखती जा रही थी। एकटक, अपलक। उस बंदरिया की दृष्टि में न जाने क्या था कि कोई भी देख कर कह सकता था—"बेचारी कैसी गरीबनी-सी बैठी है?" उसके लिये "बेचारी" शब्द का प्रयोग इसलिये कर रहा हूं कि वह अभी-अभी प्रसव पीड़ा झेल कर उठी है और उसका प्रमाण वह बच्चा उसके पेट से चिपका है।

जब बंदरिया ने देखा कि नटखट बंदर एक-एक कर छत से दूर—बहुत दूर—चले गये, तो उसने बच्चे को किंचित ढीला छोड़ दिया और मेरी थाली की ओर

वह और भी ललचाई दृष्टि से देखने लगी। पर बच्चा जरा भी इधर-उधर जाता तो वह इशारे से अपने पास बुला लेती थी।

जमीन पर बिछे आसन पर मेरी श्रीमती जी भी मेरे पास बैठी स्वेटर बुन रही थीं और बीच-बीच में उस बंदरिया का कौतुक देखती जा रही थीं। कुछ देर तो वह चुपचाप देखती रहीं फिर अचानक उन्होंने मुझ पर एक विचित्र दृष्टि डाली, जैसे कुछ निवेदन करना चाहती हों। ऐसा लगता था जैसे उनके गले में कुछ अटक रहा है, जिसके कारण वह कह नहीं पा रही हैं। पर उनसे रहा न गया और हाथ के स्वेटर को एक ओर रखती हुई बोलीं—"कटोरदान में से आधी रोटी उस बंदरिया को डाल दूं? बच्चे को दूध उतर आयेगा।" और फिर मेरी बिना अनुमति पाये ही उन्होंने एक पूरी रोटी ले कर बंदरिया के सामने फेंक दी। रोटी बंदरिया के पास न गिर कर पास ही खेल रहे उस बच्चे के पास जा गिरी। रोटी की अप्रत्याशित आवाज़ पर पहले वह बच्चा कुछ चौंका। फिर झट उस रोटी को ले खुशी में तीन पैरों से उछलता हुआ थोड़ी दूर पर जा बैठा। पर बंदरिया से यह सहा न गया। और उसने जबरन बच्चे से रोटी छीन कर अपने अधिकार में कर ली और बच्चा अपनी अवशताजन्य खीझ में ज़ोर-ज़ोर से चिचियाता रह गया।

पत्नी को यह सब अरुचिकर लगा। एकाएक तिनक कर बोलीं—"देख लिया न! मरी बंदरिया ने बेचारे बच्चे से कैसी बेरहमी से रोटी छीन ली। वैसे बच्चा इधर-उधर गया तो व्याकुल हो जाती है, पर इस रोटी के पीछे कैसी निरमोहिनी....।"

"निरमोहिनी"—मैंने बात काटते हुए कहा—"बच्चा बंदरिया का है। बंदरिया मादा है, नर नहीं हो सकती। सो, मादा चाहे किसी जाति की हो, मातृत्व की विशिष्टता वह खो नहीं सकती। उसका सम्बन्ध तुम से अधिक है, इसलिये मैं कुछ ज्यादा कहना नही चाहता। लेकिन इतना तो कहूंगा कि तुम्हें उस बंदरिया की मातृत्व की उपेक्षा नही करनी चाहिये।"

इस पर देवी जी बोलीं—"तुम्हें तो बैठे-बिठाये बस यही बातें आती हैं। तुम लोग 'कहानी-लेखक' भी बे-सिर-पैर की ले उड़ते हो। इसमें भी कोई उपेक्षा का प्रश्न था? मैं तो उस बंदरिया की निर्दयता की बात कह रही थी।"

मैंने कहा—'सुनो! वह बंदरिया जरा भी निर्मोही नही है। अपनी ही जाति का दर्शन जब नहीं जानेगी तो और क्या जानेगी? हर मादा अपने बच्चे को चाहती है और सच पूछो तो वह बंदरिया तुम से कहीं अधिक अपने बच्चे को चाहती हैं। समझीं?"

मेरी बात उन्हें अच्छी नहीं लगी' उसमें उनकी ममता पर चोट की गई थी। बोलीं—"अच्छा! मुझ से ज्यादा वह अपने बच्चे को चाहती है? उसके प्यार को मैंने इस रोटी से ही परख लिया है।"

मैंने कहा—"बात मानो, हम मनुष्यों से कहीं अधिक ये जानवर ममता को जानते हैं। हम मनुष्य तो स्वार्थी हैं—निपट स्वार्थी !"

बोलीं—"तो बताओ न ! इस रोटी के छीनने में उसका कौन-सा प्यार छिपा था ? आखिर मैं भी तो जानूं, उसका वह प्रेम !"

मैंने कहा—"तुम समझती हो कि बंदरिया जानवर है, इससे शरीर-विज्ञान का ज्ञान उसे नहीं है ? पर तुम्हें जानना चाहिये कि उसके रोटी छीनने के उद्देश्य में एक मात्र बच्चे की स्वास्थ्य-भावना निहित है, वह जानती है कि रोटी बच्चे को नुकसान कर सकती है। इससे अभी छाती का दूध ही उसे इष्ट है। उस बच्चे को रोटी नहीं, अभी दूध चाहिये।"

मेरे इस तार्किक कथन पर उन्हें कुछ सन्तोष-सा तो हुआ, पर मेरी बात सोलहों आना उनके गले उतर सकी हो, इसमें मुझे सन्देह है।

× × ×

उसके बाद हम दोनों के बीच का यह बंदरिया-प्रसंग समाप्त हो गया। पर यह नहीं कि वह बंदरिया हमारी छत पर फिर कभी आई ही न हो। प्रतिदिन उस के दो-चार चक्कर हो ही जाते थे।

आज कई दिन बाद वह बंदरिया छत पर आई, तो पता चला कि उसका वह बच्चा गोद में मरा लिपटा हुआ है। जान निकल गई है और सिर जिधर होता है उधर ही ढुलक जाता है। यह भी पता चला कि बच्चे को वह उसी तरह तीन दिन से पकड़े घूम रही है और अब भी उसे छोड़ना नही चाहती। मैंने दयार्द्र हो बड़ी उत्सुकता से रोटी का एक टुकड़ा ले उस बंदरिया के पास फेंक दिया। पर उसने तो रोटी की ओर देखा तक नहीं। हां, रोटी की पहुँच पर कृतज्ञता से वह एक-दो बार कूं-कूं करती अवश्य रह गई।

मैंने गृह-स्वामिनी की ओर देखा। वह व्याकुल और रुआंसी-सी हो रही थीं।

मैंने कहा—"अब देख रही हो न ? बच्चा मर गया है, यह जानते हुए भी तीन दिन से इसी तरह लिये घूम रही है। अवश है और जानवर है। बोल नहीं सकती, तो क्या हुआ ? पर उसकी यह ममता तो देखो ! दूसरी ओर हम हैं—मनुष्य, स्वार्थी, जो प्रेम और ममता की दुहाई देते-देते नहीं अघाते पर मरने के बाद आदमी को एक क्षण भी घर में नहीं रख सकते। कहते हैं—'जो कुछ था सब जीव के साथ चला गया। अब तो यह मिट्टी मात्र पड़ी रह गई है।'

मेरे इस कथन पर वे दार्शनिक मुद्रा में कुछ देर सोचती रहीं। फिर उनकी पलकों में छाये हुए मेघ टप-टप बरस पड़े।

मोतीलाल मालवीय

मिस एग्सिटन

●

सुख की हरी भरी एवं दुख की शुष्क घाटियों पर कुछ क्षण पड़ाव, फिर कूच, जिन्दगी शायद इसी का नाम है। ऊपर चढ़ने का उत्साह और ढलाव की फिसलन सुख-दुख के सुनहले तथा धूमिल रेखाचित्र हैं। जीवन की एकमं जिल तय कर में दुराहे पर आ खड़ा हुआ। फिसलन की थकान से चूर चूर आगे बढ़ने का साहस, सहम गया। स्वर्ण प्रभात से अतृप्त, भविष्य के मादक सपनों का लोभी राही राह में लुट गया। नीड़ की गुलाबी खुमारी ,धूं-धूं-कर मजीठ में परिणित हो गई। कालिमा की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं का शून्य में विलीन हो जाना, खोया खोया सब देख रहा था मैं, मूर्तिवत्। दो निर्झर उसे बुझाने की चेष्टा में निरत, किन्तु असफल। जीवन की संचित निधि के लुटदन पर, सब रस सूखदन पर घोर निराशाओं ने आ घेरा हृदय को। फूल से चेहरे की पखुड़ियां झुलस गईं।

आनन्द की कोई भूली भटकी लहर आकर टकराती मेरे सूदन, एकाकी तथा अचेतन हृदय तट से किन्तु निराश हो लौट जाती वह। जन समुद्र की उमड़ती गरजती तरंगों को थिरकते इठलाते और बल खाते देखता मैं निर्जीव सा—जड़वत्। झोंकों ने धीरे धीरे कालिमा को कैसे धोया मैं न जान सका। सुगंधित मलियानिल ने तंद्रित पलकों को खोल दिया —रस बरसा दिया। मैं अनायास ही खिंच गया उस ओर। उस दिस, जब मैं टन, टन, टन, घंटी बजाते हुये साइकिल से भीड़ को चीर आगे बढ़ा—

"बाबूजी. बाबूजी .." पीछे से किसी ने पुकारा "मैं रुका" अरे "तू.."

"हां बाबूजी. मेम साहब साथ ले आई" कल्लो आया ने कहा।

मैंने देखा रूप की खान कोई अप्सरा भूली स्वर्ग से उतर आई हो। गौर वर्ण, बड़ी और रसीली आंखें, झुकी हुई नुकीली नाक, दूज के चांद सा पतला छरहरा शरीर, मैं मुग्ध हो खड़ा था कि कल्लो फिर बोली:—"मिस एगिस्टन। हमारे अस्पताल की बहुत शरीफ, नेक ओर सरल...(मेरी ओर संकेत करते हुए) "बाबू बोहरा, बड़े ही दर्यादिल तथा नेक।" युवती ने मेरी ओर हाथ बढ़ाया। कमल की उन

कलियों का स्पर्श, मै सिहर गया। "बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर. कल्लो कई बार तारीफ करती है आपकी" उसने कहा।

"मैं किस लायक हूं।" मैं सकुचा गया।

"कई बार सोचा आपके दर्शन करूं पर दम मारने की फुर्सत कहां? लास्ट संडे ही को कल्लो से कहा था मगर ड्यूटी......" उसके कहने का ढंग इतना रोचक और स्वाभाविक था जैसा किसी चिरपरिचित का। उस के मुंह से झड़ने वाले फूल से कोमल शब्दों ने तथा उसके अनुपम सौन्दर्य ने जादू कर दिया मुझ पर। अतीत की दुखभरी गाथा भूल गया मैं यकायक। हास्य की रेखाओं ने आज मुद्दत के बाद सुख के चित्र बनाये मेरी निराश विकृत आकृति पर। मन स्वर्ग-सुख में लीन था। ठीक इसी समय कल्लो ने मेरे सोये घाव को छेड़ दिया," बाबूजी, मकान जला था सो क्या.. ?

लम्बी आह भर मैंने कहा 'सब स्वाहा हो गया, अभी तक बना नहीं।" मेरा सिर चकरा गया। सुख के स्वर्ग से दुख के गर्त में आ गिरा।

"इतना दुख नहीं करना चाहिये बोहरा बाबू।" कहते हुए मिस एगिस्टन ने मेरी ओर देखा। उसकी सहानुभूति ने मेरे घाव पर मरहम का काम किया किंतु टीस का दर्द अभी था थोड़ा थोड़ा। मुझे और उदास देख मिस एगिस्टन ने कहा-- "आइये चाय पी लें।" पास के काफी हाऊस में हमने प्रवेश किया। अनेक आधुनिकायें लीन थी अपने अपने मुकृत्य में। प्यालों से उठने वाली धुंए की टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं का क्षणिक लास संकेत कर रहा था--"इस सुन्दरता पर गरूर।"

बाहर निकले प्रकाश से कनाटप्लेस का एश्वर्य जगमगा रहा था। हम आगे बढ़े। "मैं जाऊं मेम साहब, खाना बनाना है।" कल्लो ने कहा।

"सामान भी तो खरीदना है मुझे।" मिस एगिस्टन ने कहा।

"चलिये मैं जो हूँ।" अचानक मेरे मुंह से निकल पड़ा। कल्लो बिदा हुई। रह गए हम दोनों और हम जैसे ही अनेक भटके राही।

सर्व प्रथम वह एक जौहरी की दुकान मे गई, वहाँ पर उस ने एक नैकलेस पसन्द किया। नैकलेस को अपने गले में पहनकर ललचाई आँखों से वह उसे देखने लगी। मेने कहा-"बड़ा सुन्दर लगता है। बिल्कुल आप के ही अनुरूप।"

"तो खरीद दीजिये न।" वह बोली। मूल्य पूछा गया और पूरे दो सौ रुपये का बिल बना फिर लिपस्टक, पाउडर और न जाने क्या क्या... गर्ज यह कि डेढ़ घंटे की खरीद ने मेरी जेब के तीन सौ रुपये समाप्त करा दिए।

मे निश्चिन्त तथा आनन्दमग्न था इस सुअवसर को पा। मिस एगिस्टन की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति को मैंने अहोभाग्य समझा अपना। उसके कहने पर अपने लिए

भी एक सूट का कपड़ा खरीदा, बस केवल वही। इस काम से निवृत हो सड़क के किनारे लाँन में जा बैठे हम लोग। मिस एगिस्टन के अनुपम सौन्दर्य पर मेरी प्यारी आंखें टूट पड़ी। मैंने अनुभव किया, वह मुझे दिल से चाहती है। एक अद्वितीय अप्सरा का मेरी ओर खिचाव, अपनी सुन्दरता का प्रमाण-पत्र समझा मैंने उसे।

मेरी वेषभूषा तथा स्वभाव में विचित्र परिवर्तन आ गया केवल दो ही दिन में। प्रत्येक वस्तु जो नीरस कठोर एवं दुख-भरी थी अब सरस कोमल तथा सुख से ओतप्रोत लगने लगी। शाम जब मे डरविन रोड पर खड़ा प्रतीक्षा में था उसकी, कितनी व्याकुलता थी मुझ में। रह रह कर पथ निहार लिया। पल-पल एक युग सा भारी हो गया था, मेरा। मिस एगिस्टन आ पहुँची, मन बल्लियों उछल पड़ा, बिजली सी कौंध गई मेरे शरीर में। बातों ही बातों में हम बहुत गहरे चले गये। भौंरो सी काली लटें उसके गुलाब से कोमल मुख पर छिटक पड़तीं। उन्हें संवारने को मेरे हाथ उसके लचीले केशों में उलझ गए। वह लजा गई। मैं सम्हला, "अरे! मै एक पिन ला दूंगा।"

"चांदी का......" मुस्कराते हुये मिस एगिस्टन ने कहा।

तीसरे दिन मै इरविन हास्पिटल पहुँचा। बोर्डिंग-हाउस में पहुँचते ही चपरासी ने पूछा—"किसे चाहते हैं आप ?"

"मिस एगिस्टन से मिलना है।"

उसने मुझे मिस एगिस्टन के वेटिंगरूम में ले जाकर बैठा दिया। एक युवक विना कुछ कहे तपाक से बाहर चला गया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद मिस एगिस्टन आ पहुँची। मेरा दिल खिल उठा। "वे कौन थे ?"

'मेरे भाई हैं मिलने आये थे। हाँ हाँ, पिन लाये हैं आप ?'

"ओह ! भूल आया। कल जरूर लाऊंगा।"

"अच्छा तो कल आइयेगा, भाई साहब से बातें करनी हैं।"

मैं चुपचाप लौट पड़ा कहीं इनके भाई को......

दिन मुश्किल से समाप्त हो सका। शाम को पहुँचा फिर वही युवक वैसे ही बिना बोले चला गया। मेरी जान बची। मै डर गया कहीं......हेयर पिन मिस एगिस्टन को दिया 'ओह'। यह तो सोने का......मै आप को कितना......और आप...... मै कितना प्रसन्न हुआ उस समय, आनन्द, स्वर्गीय आनन्द का स्रोत मानों फूट पड़ा मेरे भाग्य से।

आज उस ने बुलाया था, छठे दिन इतवार को मै पहुँचा, भाग्य से कल्लो मिल गई। मेम साहब सो रही हैं, कल्लों ने आहिस्ते से कहा। इतने में दरवाजे की चिक

उठी। ओह मिस एगिस्टन' मेरे मुंह से सहसा निकल गया। कल्लो झेंप गई। मिस एगिस्टन ने मुस्कराते हुए कहा आज काम है जरूरी, कल आइये और कटाक्ष करती हुई चिलमन में छिप गई। मैं लौट पड़ा। दरवाजे के बाहर मेरे मित्र विनोद शर्मा से भेंट हुई। घंटा भर बीत गया गप्पों में। विनोद चला गया। मैं भी चार कदम चला था कि देखा, मिस एगिस्टन और उनके भाई तांगे पर बैठ गए हैं मैं मुड़ा, एक तांगे वाले से कहा—'चल।'

'कहां"

"जहां अगला तांगा रुके उससे दस कदम पीछे उतार देना। और देख फासले से पीछे पीछे ही, सुना।"

" अच्छा बाबूजी"

मैंने सोचा शायद वह अपने घर जा रही है भाई के साथ किन्तु मेरा अनुमान ग़लत निकला। तांगा, प्लाजा के सामने रुका। मैं पीछे ही उतर कर चल दिया उस ओर। दूर खड़ा खड़ा मैं उन दोनों को देखता रहा अपने को छिपा छिपा कर। वे दोनों अन्दर चले गए। टिकट ले ट्रेलर के बाद मैं भी जा पहुँचा हाल में। ठीक पीछे वाली सीट पर चार छ: सीटें छोड़कर बैठ गया। खेल चल रहा था लेकिन मेरा मन मिस एगिस्टन की नागिन सी लहराती चोटी में जा फंसा। आंखें पिन में जा लगीं। पिछली घटना मेरे मानस पट पर चित्रित होने लगी। वह दृश्य...इतने में मिस एगिस्टन के भाई ने उससे पूछा" वह पतला सा आदमी कौन था?" मेरे कान खड़े हो गए, हृदय धड़कने लगा, जब सुना—

"मेरा भाई था, मां ने भेजा था हेयरपिन देने।" मिस एगिस्टन ने कहा।

"मैंने तो कुछ और ही समझा था।"

"कसम से भाई था मेरा वह तो। फिर ऐसे..."

मेरा रक्त उबल पड़ा। हजारों पिन चुभा दिए मिस एगिस्टन ने मेरे शरीर में। सुख की हरी घाटी को ज्वालामुखी बना ढकेल दिया उसने मुझ पर। जी में आया मिस एगिस्टन का मुंह चिथड़े चिथड़े कर डालूं। आंखों से अंगार बरस पड़े। मैं कांपने लगा होट चबा कर। उठकर बाहर आया। सारी घटनायें विकराल रूप से एक के बाद एक आंखों के सामने आने लगीं। मिस एगिस्टन, भाई, छी: छी:। अपने हृदय में आग लगा धिक्कार रहा था मैं...बाहरी आग से भी भयंकर थी मिस एगिस्टन की लगाई यह आंतरिक आग।

एक अर्सा बीत गया। जीवन की अनेक गुत्थियां सुलझा कर भी, मुझे चैन नहीं। वह प्रचंड आग समय समय धधक उठती है, मिस एगिस्टन, उसका भाई युवक ......मैं ?

बालमुकन्द मिश्र

इंसान का चिन्तन

●

बेचैन, एक हज़रते-इंसान, एक दिन शैलेय के अति उत्तुंग शिखर पर बैठे हुए थे। देखा कि वह अपनी आरज़ू को पकड़े, दिल थामे, कभी सिसकियाँ लेते और कभी हंसते हुए, मदपेय-पियक्कड़ उन्मादी-पागलों की तरह, संकल्प-विकल्प के विचार प्रवाह में निमग्न थे।

"क्या सत्य भी परिवर्तन के प्रवाह से अपने को सुरक्षित न रख सका ? क्या यह बिडम्बना मात्र ही है ?

नारी का शरीर ही केवल कोमल नहीं होता, हृदय भी नवनीत के समान स्निग्ध, सहृदय और कोमल होता है।"

—यदि यह बिडम्बना ही होती, तो नारी के प्रति विद्रोहियों द्वारा, इस वचन का अस्तित्व अब तक अवशेष रहना ही न चाहिए था ! सत्य का सौंदर्य किंचित सीमा तक निहित उक्त सूक्ति में अवश्य है, तभी तो इस सूक्ति का आज तक अस्तित्व है। फिर निष्ठुरता उसमें प्रविष्ट क्यों हुई ?

शायद पुरुषत्व के कठोर व्यवहार ने उसमें आत्मग्लानि उत्पन्न कर दी हो ? उसके प्रति ऐसी कंकाल-धृष्टता कभी नहीं हो सकती। उसमें अगाध प्यार है, चाह है, अनुराग है; और उसके विश्वास–पूर्ण आश्वासन पर सर्वस्व भेंट कर देता है–मनुष्य।

हो सकता है भूल का सूत्र और कहीं हो ! किसी युग में, यों ही, नारी के बेकुसूर होते हुए भी, प्रताड़ना कर बैठा हो। धृष्टता-परिपूर्ण उसके इस कृत्य पर नारी-प्रदत्त—अभिशाप को, पुरुष भोग रहा हो।

यहां सत्यता का अभाव नहीं दिखाई देता। यदि प्रताड़ना की भी होगी, तो फिर—विनम्र हृदय से याचना-क्षमा जरूर की गई होगी। नारी का नवनीत-सा हृदय द्रवित अवश्य हुआ होगा। उससे निन्दनीय–हुए अपने प्रति उद्दंड। कृत्य को क्षमा भी अवश्य ही कर दिया होगा।

फिर इतनी कठोरता और निष्ठुरता उसमें क्यों ?

—पुरुष याद करता रहा......ऊषा से संध्या और संध्या से ऊषा तक–नीर

बहाता रहा। उदासीन, व्याकुल मन से ढूंढ़ता-ढूंढ़ता, हर ओर-छोर, जहां तक पहुँच सका......पहुँचा......परन्तु !

चिन्ता में तल्लीन, जब जीवन जर्जर करता था...तब...ढाढ़स बंधाती... निमग्न--साधना को छुड़वाती कि--"न नष्ट करो सुन्दर काया को--तुम्हारे बिना मैं......"

संसार के मनस्वी कहते हैं—"स्त्री के पास अमृत है...वह स्वयं दयास्वरूप है....महती कृपालु है ...करुणामय है और लजवन्ती है, लाज रखना जानती है। वह विनती को तो ठुकराना जानती ही नहीं ! क्योंकि उसका हृदय, कोमलता की पराकाष्ठा पर निर्मित जो हुआ है।"—परन्तु दिखाई दे रहा है...अधीर की पीड़ा के प्रति विश्व ने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की—और तुमने ? तुम पर, अपना सर्वस्व, काल-काया तक को अर्पित कर दिया—यह कैसा व्यवहार ?

उफ़ ! उफ...जीवन दीपक झिल-मिला रहा है।...विमूढ़ है, अब...भयंकर निशा में ले जाकर छोड़ दिया--तुमने। कहदो तुम ही—"क्या करे....?"

यदि--माया के पास वासना पूर्ण करने जाता हूं—तो, संसार कामी बताता है। यदि दुख विसर्जन करने के निमित्त मधु का अर्घ्य ग्रहण करता हूँ—तो, नशेबाज़ कहलाता हूँ। संसार से विमुख होता हूँ, और--तुमको पा लेता हूँ—तो, विजयी हूँ मैं।

"यदि तुम्हें अन्त तक मेरा साथ देना मंजूर न था-तो, बैठे-बिठाए को चलने के लिए हाथ पकड़ कर प्रेरित ही क्यों किया ? तुम गौरवान्वित विश्व में हुईं, स्वयं नही ! काश—यदि विचार कर सकती तुम !"

मधु-आच्छादित था। संसार पुलक-पुलककर हंस रहा था। मस्ती क्रीड़ा में तल्लीन थी। जीवन के उपवन मे, आनन्द लूटती हुई "मानवता" के कानों ने बेचारे इंसान के--नीरवता में करते हुए करुण क्रन्दन को ध्यान सहित श्रवण किया। मानवता को अनायास दया आ गई, और इंसान को सम्बोधन किया :

"भाई, ऐसे निष्ठुरों के चक्कर में फंसा ही क्यों जाय ?"

इंसान ने कहा—"फंसने की बात जाने भी दो। अपनी खुशी से थोड़े ही फंसते हैं, वह अपनी ठुमकती हुई चाल के स्वर्णिम-चक्कर में मनुष्य को भुलाती हुई, हमें उलझा लेती हैं।"

"ठुमकती हुई चाल के स्वर्णिम चक्कर में मनुष्य को भुलाती है ?" मानवता ने यह शब्द दोहराते हुए कहा : "कितने सुन्दर भाग्य हैं, रे मानव !"

इंसान ने अपना माथा धुनते हुए क्रुद्ध होकर कहा : "भाग जाओ ! तुम किसी की पीड़ा को महसूस करने की क्षमता नहीं रखती, हृदय हीना ! माथा-पच्ची मत करो।"

फिर तनिक ठहर कर, इंसान की-सी वेदनामयी मुद्रा धारण करते हुए, गम्भीरता से मानवता ने पूछा : "वह, जिनको तुम सहृदय बताते हो, क्या उस समय

भी कृपा-कोर की राशियां नही उडेलती, जिस समय, पूर्ण चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को चूमने के लिए समुद्र उफनता है। सूर्य की अपार प्यास शांत करने के उद्देश्य से, धवल शीतल हिम अपने शरीर के कणों को क्षय करने लगता है। टपकते हुए मधु–पायस की उपयोगिता को समझा कर, मृदुभाषिणी कोमल–कोमल स्वर गुंजरित करती हुई इधर-उधर प्रकृति के साथ, परिरम्भ के निमित्त उछलती–फुदकती फिरती है। जिसे तुम सहृदया बताते हो, वह ऐसे अवसरों पर भी नीरसता वर्षण करती है ?"

"हां ! वह मूक रहती है। स्वयं इठलाती है, पर अपने साथ दिल खोल कर अठखेलियां करने से रोकने का-सा असफल प्रयत्न करती है।"

इंसान ने इस पहेलिका को खोल-खोल कर वहां तक समझाया, जहां तक उसका वश चला। मानवता की बैचेनी शनैः शनैः उग्र स्वरूप धारण करती चली।

वह विकल होकर इधर-उधर घूमी और इंसान की ओर सम्बोधित हुईं––"स्वच्छन्द-क्रीड़ा, जो पशु-पक्षी प्रकृति के उन्माद से मस्त होकर करते हैं, क्या उन्हें देखकर भी उसके मानस-तल में किसी प्रकार का उबाल नही आता ?"

इंसान ने लजाते और कुछ सकुचाते हुए कहा : "स्पन्दन होता भी होगा, तो वह छुपा लेती होगी।"

"मदमाते. मधुर-मादक कलरव करते पक्षी अपने क्षीण कंठो से––बहती हुई स्वच्छ शीतल वायु पर जब गान छोड़ते हैं, उस समय की कुछ भी मादक उन्मत्ता का प्रभाव, मदमय मधुर स्वरूप में शून्य वक्षस्थली पर प्रगति नहीं करता ?"

"संभवतः वह जड़ रूपा है।" इंसान ने मानवता को बहुत कुछ समझाते हुए कहा : "सच्चा, सहृदय, सहयोगी, योग्य समझ कर अपनी बागडोर उसके हाथ में पकड़ा दी। फिर मदारी की तरह चाहे जैसे वह नचावे ! उसके इशारों पर जब नाच शुरू हो जाता है––तो, फूली नही समाती ! और नाच चलता है। उस पर तुर्रा यह "इंसान मेरे स्तव पर आधारित है। मैं क्या हूँ ? वह हूँ—मेरे निर्देशों पर स्वयंभू अक्ल का पुतला उठता है––बैठता है, जागता है––सोता है, चलता है––रुकता है और यहां तक कि सुस्ताता है––मस्ताता है।"

"अच्छा तुम अक्लमन्द मालूम पड़ती हो; कोई ऐसी राह विवश इंसान को तुम्हीं बताओ––जिससे कल्याण हो।"

मानवता ने झट से कहा : "उसके विरुद्ध प्रोटेस्ट करो, बहिष्कार करदो !"

इंसान ने कहा : "यह रास्ता तो खतरनाक है।"

"तो मेरे निर्देशित––पथ का कुछ मूल्य नही ?"

"अच्छा ! मै तुम्हारे प्रदर्शित मार्ग पर चलने-न-चलने के विषय में विचारूंगा।"

"वीभत्स क्रन्दन भी करते हो और अब भी अहंमन्यता है ?"

"मैं विवेकी हूँ !"

मानवता ने कहा : "मूर्ख ! मग़रूर इंसान !!"

ओमप्रकाश शर्मा

संघर्ष में

●

मेरे साथी आश्चर्य में डूब जाते हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ कि--'माधव से अब भी मेरी व्यक्तिगत दोस्ती है।' मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारी सामूहिक राजनैतिक जिन्दगी में किसी विरोधी से व्यक्तिगत सम्बन्ध केवल अनुचित ही नही बल्कि सिद्धान्तिक विरोधी कार्य है। किन्तु......'

माधव और मैं परस्पर मित्र हैं, ये ऐसा कठोर सत्य है जिसे छिपाने का साहस मुझमें नहीं है।

कभी माधव हमारे दल का योग्य कार्य-कर्ता था। मिल में वह उन मजदूरों में से है, जिसकी तनतोड़ मेहनत से यूनियन का निर्माण हुआ है। यूनियन बनी और उसका वामपक्षी दलों से सम्बन्ध जुड़ा। इसका श्रेय केवल माधव को है, यूनियन के पदाधिकारी इस तथ्य को अब भी स्वीकार करते हैं।

वही माधव आज मिल मालिकों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जड़ खरीद गुलाम बन गया है। यूनियन से सम्बन्धित प्रत्येक लड़ाकू मजदूर की मैनेजर के पास रिपोर्ट पहुँचाना, यूनियन के काम में तरह तरह के रोड़े अटकाना उसका नित्य कर्म बन गया है।

ये मेरे मित्र उसी माधव की पतन कहानी है, जिसने पिछली हड़ताल में हमारे साथ छः महीने की जेल भी काटी। उस समय वह हमारी संघर्ष समिति का नेता था, जिन साथिओं ने जेल अधिकारियों से नित्य की आवश्यकता पूर्ति के लिये, संगठित 'करो या मरो' अथवा 'मरु' या मारू'' टोली बनाई थी। जिसका नाम संघर्ष समिति था।

जेल जीवन के छः महीनों में हम सब के परिवारों कि दशा दयनीय हो गई थी विशेष कर माधव के लिये दुखद घटना यह घटी कि उसकी ढाई साल की बच्ची, जिसे निमोनिया जैसे प्राण घातक रोग ने आ घेरा था....मर गई। बीमारी के अल्पकाल में उसे दवा न मिली, ये उसके दुख का प्रधान कारण था। वो सोचता था कि उस अवस्था में अगर वह जेल से बाहर होता तो बच्ची न मरती। पाँच साल के वैवाहिक जीवन के पश्चात उसका जन्म हुआ, एक हंसता खेलता खिलौना घर में आया।

किन्तु वह स्थायी न रह सका इसलिए कि चन्द कागज़ के टुकड़े समय पर न थे।

यही घटना जिससे माधव को प्रगति पथ पर बढ़ने की प्रेरणा होनी चाहिये थी, उसके घोर पतन का कारण बन गई। जेल से आते ही उसने राजनीति से विदा ले ली। यूनियन की कार्य समिति से त्याग पत्र देकर सम्बन्ध तोड़ लिया ? अब वह रह गया केवल उनका...जो उसकी तुरन्त मनोकामना पूरी कर सकें। संक्षेप में उसकी आशायें जो उसे वर्ग संघर्ष के लिए प्रेरणा देती थीं लुप्त हो गयीं।

और उसके स्थान पर नवीन कामना उदय हुई....व्यक्तिगत स्वार्थ। माधव के पूंजीपति वर्ग का सहायक मजदूर वर्ग का कट्टर दुश्मन बन जाने पर भी मेरी और उसकी घनिष्ठता बनी रही, वैसी ही जैसी पहले थी। हर मास यूनियन का चन्दा, अब भी मेरे माँगने पर वह मुझे दे देता है। जब कभी खाने का कोई प्रबन्ध नहीं होता तो उसके घर जाकर अधिकार पूर्वक मैं खाना मांग लेता हूँ और मुझे मिल जाता है। उसकी पत्नी अब भी मेरा वैसा ही आदर करती है, जैसा कभी पहले।

चूंकि अब माधव से मेरा राजनैतिक सम्बन्ध टूट चुका था, इसलिए साल होने आया, इस अवधि में मैं और माधव हजारों बार मिले होंगे, किन्तु राजनैतिक परिस्थित और मज़दूर आन्दोलन के सम्बन्ध में हम कभी कोई वार्तालाप नहीं करते थे।

माधव की पत्नी ने अभी दो सप्ताह पहले एक बालक को जन्म दिया है। इसी उपलक्ष में माधव ने आज मुझे विशेष रूप से दावत दी थी। किन्तु कार्यवश मैं ठीक समय पर न पहुँच सका। सांझ होने पर जब मैं माधव के घर पहुँचा तो माधव घर नहीं था।

'अभी क्यों आए हो लाला, आधी रात गये आते ? हल्की सी झिड़की देते हुए माधव की पत्नी ने कहा—'हम तो सोच रहे थे कि देवर-लाला शायद नाराज़ हो गये हैं। क्या सचमुच मुझे भी तुम ग़ैर समझने लगे हो ?

माधव की पत्नी के ये शब्द मुझे ऐसे प्रतीत हुए जैसे वह मेरी सगी भाभी के शब्द हों (दुर्भाग्य से मेरी कोई सगी भाभी नहीं है)। उसके हार्दिक शब्दों में सचमुच एक ऐसा स्नेह मिश्रित था, जिसका पाना मेरे जैसे मरुस्थली भाग्य के व्यक्ति के लिये सौभाग्य की बात है।

मैंने अपराधी की भाँति दबे स्वर में कहा—ये बात नहीं भाभी, अगर तुम्हें ही पराया समझूंगा तो अपना किसे कहूंगा ? यूंही काम में फंसा रहा......,।

एक निराशा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए वह बोली—'मैं जानती हूं तुम

हमसे नाराज हो। किन्तु इसमें मेरा क्या दोष है ? उन्होंने अपने आदमियों से बैर बाँधकर क्या लाभ उठाया !

अभी कौन से हम लखपति हो गये, जो पहले थे वही रहे। उनके नये मित्र मिल के अफसर और बाबू लोग कितने घमण्डी हैं, यह आज मैंने पहली बार देखा। उनकी बेगम जब तक यहां रहीं बेमतलब की बातें करती रहीं। कोई अपने जेवरों की तारीफ कर रही थी तो कोई अपनी मोटर की। छि: कितनी अभिमानी हैं ये सब। जब मुन्नी हुई थी तो सब अपने आदमी थे। अजय, देविका, शीला, आनन्द और तुम—कितना आनन्द था ?'

उसके ये आन्तरिक शब्द सचमुच हार्दिक पीड़ा व्यक्त कर रहे थे। किन्तु वह कर भी क्या सकती थी, नारी थी। हमारे समाज में उसके विचार-स्वातन्त्र्य का मूल्य ही क्या है ? उसके लिये दो ही मार्ग हैं, या तो वह अपने विचारों को घर की सीमा में कूप-मण्डूक की तरह सीमित रक्खे और उसे ही अपनी दुनिया समझे और बुद्धि तथा ज्ञान का प्रयोग चूल्हे और चक्की तक ही प्रयोग करे। अथवा अगर उसके ज्ञान का विकास अधिक है, अगर वह प्रत्येक परिस्थिति में विचारशालिनी है तो उसे केवल अन्तर-आत्मा तकसी मित रक्खे।

मैंने वार्तालाप का विषय बदलते हुए कहा—'छोड़ो भी ये बातें ! मुन्ना तो दिखाओ !'

'वह रहा पालने में, देख लो।'

नवजात शिशु आंखें बन्द किये ऐसा प्रतीत होता था, जैसे किसी गम्भीर विचार में मग्न हो। कुछ देर में एकटक उसकी ओर देखता रहा। जब वह खाना लाई तो मैंने कहा—'माडेल शानदार है भाभी, ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों कारीगरों ने खूब परिश्रम किया है।'

वो लजा गई।

खाना खाकर चुका तो माधव भी आ गया था। चलते समय उसने कहा—'यूनियन ने हड़ताल का नोटिस दिया है।'

'बातचीत करके देखो, शायद बिना हड़ताल के ही कोई समझौता हो जाय।'

'बातचीत करके देख लिया, कोई निर्णय न हो सका।'

'अगर हड़ताल न हो तो अच्छा है ?'

क्यों ?

'ऐसे ही मैं तुम्हें अपनी व्यक्तिगत राय बता रहा था।'

'चूंकि एजेन्ट माँगें नहीं मान रहा है, इसलिए हड़ताल होनी तो अनिवार्य है।'

वह मौन थी। मैं चला आया।

आज प्रत्येक मज़दूर की ज़बान पर यही था कि माधव हड़ताल तोड़ने का अवश्य प्रयत्न करेगा। हज़ारों मज़दूर मिल गेट के आस-पास जमा थे। गेट के पास मैं तथा तीन चार अन्य साथी पिकेटिंग की परम्परा निभाने के लिये खड़े अवश्य थे, किन्तु अभी तक इसकी आवश्यकता न पड़ी थी।

यकायक एक लारी आई, माधव तथा अन्य बीस-इक्कीस व्यक्ति उसमें से उतर कर हमारी ओर बढ़े।

माधव को देखते ही लोगों की भीड़ गेट पर जमा हो गई। वो ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे थे। गद्दारों का नाश हो, मज़दूरों के दुश्मनों का नाश हो।

'ठहरो माधव।' सामने आते ही मैंने कहा।

एक क्षण के लिये वह ठिठका। उसने पीछे मुड़ कर अपने साथ वालों से कहा—'चले आओ' और फिर उसने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया।

'तुम नहीं जा सकते माधव!'

'मैं अवश्य जाऊंगा।'

'पागल मत बनो, देखते नहीं ये सब लो क्या कर रहे हैं? बेकार झगड़े को मत बढ़ाओ...जाओ।

'मैं पक्का इरादा करके आया हूँ कि, इन सबको जो मेरे साथ हैं, लेकर अन्दर जाऊंगा। तुम मेरे सामने से हट जाओ, नहीं तो......नहीं तो क्या?'

अचानक ही मेरे सिर पर, जोर से किसी ने लाठी मारी, हलचल सी मच गई। पुलिस-पुलिस मारो-मारो के शब्द मेरे कानों में गूंज रहे थे। मेरे पैर लड़खड़ा रहे थे, सिर से खून की धार बह रही थी। मै खड़ा न रह सका, इतना अवश्य याद है कि गिरते समय किसी ने मुझे सहारा दिया। एक बिजली का सा झटका लगा और चेतना का लोप हो गया।

जब होश आया तो मैं कॉमरेड श्रीधर के ड्रेसिंग रूम में था। आँखें खोली तो सामने मेरी पत्नी शान्त किन्तु उदास भाव से खड़ी थी। मेरे स्ट्रेचर के पास ही डाक्टर श्रीधर बैठे थे—'देविका' मैंने अपनी सारी शक्ति लगा कर अपनी पत्नी को सम्बोधित किया।

श्रीधर एक दम उछल पड़े—'बड़े बेशर्म हो कॉमरेड, आखिर बच ही गये। वह हाथ पड़ा था बच्चू, कि एक ही हाथ में दस टांके लगाने की जगह बना गया।'

'आनन्द कहां है कामरेड डाक्टर?'

'अरे एक आनन्द, मेरे घर के बाहर दस हजार आनन्द धरना दिये बैठे हैं। राजीव जरा आनन्द को बुलाना।' डाक्टर के कम्पाउन्डर राजीव, आनन्द को बुलाने बाहर चले।

थोड़ी देर में आनन्द आया। उसका उदास मुख मुझे होश में देखते ही खिल उठा। उत्साह से बोला—'तुम्हारे खून की एक बूंद भी बेकार नहीं गई। उसने न जाने कितने माधव जैसे पथ विमुखों का उपचार करके उन्हें सीधे मार्ग की ओर अग्रसर किया होगा ?'

'क्या मतलब ?' मैंने आश्चर्य से प्रश्न किया—तुम्हारे चोट लगने के बाद माधव ने अपना इरादा बदल दिया। पूर्व के कर्मों के पश्चाताप में बैठा वह सुबह से अब तक रो रहा है।'

'फिर मुझे लाठी किसने मारी ?

'पुलिस ने।'

'पुलिस आ किधर से गई थी ?'

'दरअसल हुआ ये कि एजेन्ट ने रात में दूसरें गेट से पुलिस को बुला लिया था। दुर्भाग्य से हम सतर्क नहीं थे, इसी कारण ये दुर्घटना घटी। बुलाऊं माधव को

'माधव यहीं है ?'

'हां, साथ में उसकी पत्नी और बच्चा भी।'

दूसरे क्षण माधव उपस्थित हुआ। उसकी आँखों से टप-टप आँसू टपक रहे थे। कुछ क्षण माधव एक टक दरवाजे में खड़ा हुआ मेरी ओर देखता रहा। मैंने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, वह आगे बढ़ा मेरा, हाथ उसने इस तरह जकड़ लिया मानों मैं कहीं भागा जा रहा हूँ।

'मुझे क्षमा करना भैय्या !' माधव ने रुंधे कंठ से कहा। सामने माधव की पत्नी और देविका दो सहयोगिनियों की तरह अचल खड़ी थी, दूसरी ओर आनन्द, माधव के पुत्र को गोद में लिये इंकलाबी धाय की तरह हिला रहा था।

तुलसी राम चतुर्वेदी

ग़लती पोस्टमैन ने की !

किसी भी बात की बाट किसी हद तक ही देखी जा सकती है। ज़िन्दगी के पच्चीसवें साल तक तो हम यह सोचते रहे कि कुछ ओवरएज तो हुए नहीं हैं, चिन्ता क्या है। एक-दो वर्ष और भी चढ़ गये। फिर भी कोई बात नहीं। जब दो-चार वर्ष और भी चढ़ते देखे तो हमने अपने साथियों में चर्चा छेड़ दी। सब से कह दिया कि भई हमारा फायदा होगा तो तुम लोगों को भी चाय पानी मिल ही जाया करेगी। गरज़ यह कि हमारे लिए एक साथी की सब ओर से बड़ी जोर शोर से खोज चली।

आखिर हमारे परम मित्र विश्वनाथ जी ने एक दिन ऐसी सूचना दी कि तबियत खुश हो गयी। उनके पास निकट के ही एक शहर से किन्हीं सज्जन का पत्र आया था, जिसमें लिखा था कि आपने अपने मित्र के बारे में लिखा। उनसे भेंट करने के लिये हम सपरिवार अगले रविवार को पहुँच रहे हैं। पूरे पांच दिन का समय शेष था। पत्र को पढ़ते ही हमने फौरन समझ लिया कि सम्बंधित व्यक्ति माडर्न और फारवर्ड टाइप के हैं। सपरिवार आने को लिखा था, इसलिए यह समझते भी देर न लगी कि बच्चे-बच्चियों की शिक्षा का भी अवश्य ही पूरा ध्यान रखा होगा। वैसे ही बातचीत के दौरान में हमारे मित्र ने यह भी बता दिया कि बहुत तो नहीं पर समान्यतः आर्थिक दृष्टि से भी बहुतों से अच्छे हैं।

हमारा यह पक्का ख़याल था कि बस एक बार चर्चा चल जाय और जरा किसी से सामना हो जाय फिर तो सब काम सिद्ध हो ही जायगा। इस बारे में विश्वास कुछ चरम सीमा का है। कमी किसी बात की नहीं है। सुन्दर शरीर है, बस जरा कुछ रंग अधिक काला, बचपन में चेचक निकलने के कारण चेहरे पर जरा गहरे दाग, थोड़ी सी थी नाक और बस जरा मोटे होंठ। सामान्य भारतीय को देखते हुए स्वास्थ्य भी कुछ खराब नहीं है। लोगों की तो कुछ आदत ही खराब है कि जरा किसी को दुबला देखा और झट कह बैठे क्या टी० बी० के मरीज से दीखते हो। किसी की ज़बान तो रोकी नहीं जा सकती। कुछ खटका है तो यह कि बाएं पैर और सीधे हाथ में जरा लहक सी है। वह भी बचपन में कुछ नटखट साथियों ने पेड़

से ढकेल दिया था उसके कारण। वैसे और सब तो ठीक ही है और फिर अपना एक ख़याल है कि शरीर की रचना कोई हाथ की बात नहीं। वह तो प्रकृति का खेल है और उसका व्यक्तित्व से कोई खास सम्बन्ध नहीं। भारत के क्या विश्व के अद्वितीय राजनीतिज्ञ चाणक्य काले थे, विश्व का मशहूर योधा तैमूर लंगड़ा था और अधिक दूर जाने की क्या बात है, जिनकी शक्ति का प्रभाव अभी भी दुनिया मानती है, वह गांधी जी क्या थे—हड्डियों का एक मुट्ठी भर ढांचा। ये सब व्यक्तित्व के कोई मापदण्ड नहीं। वह एक अलग चीज है। आदमी को उसी की ओर ध्यान देना चाहिये। यही अपना सिद्धाँत है। और इसके अनुसार व्यक्तित्व को भरसक प्रभावशाली बनाने की कोशिश में रहते हैं। लेटैस्ट डिजाइन की थोड़ी ऊंची, बाइस इंची मोहरी की क्रास पाकेट वाली पेंट जो हिप पर काफी ढीली और पीछे एक जेब, टाई कालर की पूरी आस्तीन की कमीज लेकिन एक तिहाई आस्तीन हमेशा मुड़ी और सबसे ऊपर की बटन खुली हुई, काला शू और इण्टरलाक के आधे मौजे और अगर कभी गर्मी लगी तो बाटा के काले रबर स्लीपर—यह हमारी हर समय की मुस्तकिल पोशाक है।

पोशाक से ही व्यक्तित्व प्रभावी बनता है। आदमी पहली चोट यही देखता है कि रहते कैसे हैं? शिक्षा-दीक्षा तो बाद की बात है। वैसे उसमें भी अपनी जाने हमने तो कोई कसर छोड़ी नही है। हां, फालतू के लिये अधिक आगे नहीं बढ़ाया। मैट्रिक की पूरी सनद अपने पास है। बल्कि कालेज के मद्रासी प्रिन्सिपल ने तीन साल की मेहनत के बाद हमारे सनद हासिल करने पर कहा था——

'आइ एम सरप्राइज्ड टु सी इट, बट रीयली यू हैव दैट टेनेसिटी आफ परपज़ व्हिच इज बाउण्ड टु मेक यू सक्सेसफुल इन लाइफ।' हकीकत यह है कि अपनी क्लास में और तो सब विषयों में हम बहुत तेज थे बस जरा अंग्रेजी, हिसाब और साइंस में काफी कमजोर तथा एक दो और विषयों में थोड़े कमजोर थे। अपनी सीट क्लास में सबसे पीछे ही रहती थी लेकिन किसी न किसी सिलसिले में मास्टर साहब हमारा नाम रोजाना ले ही लेते थे।

सुन्दर शरीर और शिक्षा ही बहुत होती है उस पर यदि कुछ पैसा पास हो तो फिर क्या कहने। फिर तो दसो घी में ही रहीं। लोग टूट-टूटकर पड़ते हैं। अपने पास पैसे की भी कोई कमी नहीं है। पिताजी ने काफी सम्पत्ति पैदा की थी और उसके वारिस एक हमी दीखते थे।

असली बात तो पीछे ही छूटी जा रही है। हां, तो पत्र प्राप्ति के दिन से अगले रविवार तक पांच दिन बाकी थे। हम ने अपने मित्र से कहा कि यार ऐसी ताड़ भिड़ाओ कि बस काम सिद्ध ही हो जाय। विश्वनाथ जी हमारे बड़े हितचिन्तक और इन मामलों में दो तीन बार के तजुर्बेकार थे। उन्होंने सुझाव दिया कि एक तो

तुलसीराम चतुर्वेदी

अपने ड्राइंगरूम को ठीक प्रकार सजाना समझो कि पांच छः लोग आएंगे। उनके लिए गद्दीदार आराम कुर्सियां जरूर होनी चाहियें। कुछ अपने अच्छे नये पुराने फोटो बढ़िया फ्रेम में मढ़वाकर दीवारों पर लगा देना—एक पढ़ते हुए, एक क्लब जाते हुए, एकाध मित्र मण्डली में रौब से खड़े हुए। अगर कोई नया फोटो खिचवाओ तो एक बात का ध्यान जरूर रखना, गर्दन थोड़ी टेढ़ी रहे, उससे कुछ अजीब रौब पड़ता है। इसके अलावा रेडियो-बेडियो ये ही आजकल के जरूरी सामान भी रखना। फिर रविवार के दिन जरा पढ़ने के ही मूड में रहना, किताब दिन भर हाथ में रहे। बस और सब ठीक है।

हमने सोचा कि फोटो पुराने क्या नये ही लेटैस्ट चलने दो। चुनाचे एक फोटोग्राफर को शाम के समय आने के लिए आर्डर दे दिया गया। कुछ दोस्तों को भी विश्वनाथ जी साथ लेते आये। दो तीन पोज बढ़िया-बढ़िया दिये। गर्दन टेढ़ी रहे, इस का पूरा ध्यान रखा। फोटोग्राफर भी कह गया कि पोज 'ए बन' आये हैं। बात सुन कर सन्तोष हुआ। अर्जेन्ट आर्डर था, तीसरे ही दिन फोटो बन कर आ गये। एक फोटो में गर्दन अधिक टेढ़ी हो गयी थी, दूसरे में और तो सब ठीक था कमजोर टांग पर अधिक स्ट्रैस पड़ जाने के कारण शरीर कुछ लुढ़का-लुढ़का सा लगता था और तीसरा पोज तो कुछ बड़ा ही बढ़िया था। मित्र लोग सब अधिक स्वस्थ, उनमें हम कुछ मिसफिट से लग रहे थे। संतुलन बराबर करने को हम ने गाल थोड़ा फुला लिये थे। इसके कारण फूले हुए गालों के बीच मुंह कुछ ऐसा लगने लगा जैसे दो छोटे कोष्ठकों के बीच में कोई माइनस का निशान हो। समय अधिक नहीं था इसलिये इन्हीं तसवीरों को मढ़वाने के लिए भिजवा दिया और विशेष आदेश दिये कि फ्रेमिंग गोल्डन हो।

हमारा पहाड़ी नौकर अचानक यह सब धूम-धाम देखकर बड़ा कुछ परेशान लगता था। काम तो दौड़-दौड़ कर आता था लेकिन उसकी समझ में कुछ माजरा आ नहीं रहा था। हमने उसको सख्त हिदायत करदी थी कि इनवार के दिन कहीं न जाए और घन्टी बजते ही फौरन सेवा में हाजिर हो।

अगले ही दिन फोटो मढ़कर आ गये और दीवार पर बड़ी हिफाजत के साथ इस तरह टांग दिये गये कि कमरे में घुसने वाले की पहली निगाह उन्हीं पर पड़े।

आज चौथा दिन था। कलेजे में कुछ अजीब धड़कन थी। दिमाग में बराबर एक ही ख़याल घूम-फिर कर आ जाता था कि कमी तो किसी बात की नहीं है फिर भी ज़ाने क्या होगा। दिन भर इसी सोच-विचार में बीत गया। रात को भोजन करने बैठे तो पेट कुछ भरा-भरा सा लगा। थोड़ा खाकर ही उठ गये। नींद रोजाना तो

बड़ी जल्दी ही आ जाती थी पर आज न जाने क्या बात थी। सोचा गर्मी अधिक है, इसलिये शायद नहीं आ रही है। छत पर ही घूमने लगे। रह-रह कर दिमाग में यही ख़याल दौड़ता था कि जाने क्या होगा ? कभी-कभी कुछ बड़े जोर से उमंग सी उठती थी। कलेजा जैसे उछला पड़ता था। कुछ बड़े-अजीब ख़याल दिमाग में हरकत कर रहे थे। दो चार-बार करवट बदलते देख नौकर समझ गया कि बाबू जी को नींद नहीं आ रही। उस बिचारे को क्या पता कि बाबू जी पर क्या बीत रही थी। पानी पीने के लिए ही पूछ बैठा। पहले तो मना कर दिया फिर सोचा कि शायद पानी पीने से ही कुछ ठण्डक आये और नींद आ जाय। पानी लिया, फिर उठकर थोड़ा इधर-उधर टहल लिये। इससे पहले कभी कविता नहीं की थी लेकिन आज जैसे गीत गले से उमड़ पड़ना चाहते थे। कभी कभी बड़े जोर से कुछ गाने को जी करता था और एक बार तो संगीत ने इतना जोर मारा कि बड़ी ऊंची आवाज में 'आ....आ... आ...आ...'की तान छेड़ दी जो रात के सन्नाटे में सब ओर गूंज गयी। फिर सोचा क्या पागलपन किया।

दिल और दिमाग की इस उछल-कूद, उधेड़-बुन और हुचक पुचक में कब नींद आ गयी, यह ध्यान नहीं, लेकिन जब सुबह नींद खुली तो काफी देर हो चुकी थी। जल्दी-जल्दी नहा धोकर कपड़े पहने। कमरे की ओर निगाह डालकर और विश्वनाथ जी के सुझावों के अनुसार सब चीज ठीक पाकर तबियत खुश हो गयी। काका साहब के जमाने की किताबों से भरी एक अलमारी रखी थी। कुछ अच्छी-अच्छी किताबें छांटी। शरतचन्द्र का पथेर दावी, जयशंकर प्रसाद का कंकाल, प्रेमचन्द का गोदान, मैथिली शरण का साकेत, रूसी लेखक गोर्की का मदर, शेक्सपीयर का हेमलेट, मिल्टन का पैराडाइज लौस्ट, और ऐसी ही दो एक किताबें और लेकर पास की ही मेज पर बड़े करीने से सजा दीं। नौकर चाय ले आया। जल्दी-जल्दी में थोड़ा बहुत खा-पीकर एक आराम कुर्सी पर लेट गये और हाथ में मिल्टन का "पैराडाइज लौस्ट" ले लिया।

इस भाग दौड़ में सुबह के दस तो बड़ी आशानी से बज गये पर अब घड़ी आगे सरकती ही न थी। जब अधिक देर बैठा न रहा गया तो इधर-उधर कमरे में ही घूमने लगे। कहीं कोई तिनका वगैरह तो नहीं पड़ा है। किताबें ठीक प्रकार लगीं है या नहीं, तसवीरों पर धूल तो नहीं जम गयी यही सब कुछ बार-बार जांच कर लेते। थोड़ी देर बाद नौकर ने खबर दी कि कोई साहब मिलने आये हैं। सुनते ही कुछ धड़-कन और बढ़ गयी। कमरे की ओर एक निगाह डाल कर आगन्तुकों का स्वागत करने चल दिये। दिमाग़ में ख्याल दौड़ा कि पहुँचते ही जोर से हलो मिस्टर विश्वनाथ कह

कर हाथ बढ़ाएंगे, फिर जैसे जानते ही न हों, इस तरह और लोगों को देख कर "ग्लैड टु हवैलकम योर फ्रैण्डस कहेंगे।" पर दरवाजे पर पहुँचते ही सब धान धूल में मिल गये। पड़ौस के एक मिस्टर झा इतवार की छुट्टी में सपरिवार साढ़े बारह बजे का शो देखने जा रहे थे। रास्ते चलते हमें भी पूछ बैठे। हमसे बोले, 'भाई डाक्टर कोटनीस की अमर कहानी देखने चलोगे ? एक बार तो सोचा कह दें, अपनी ही अमर कहानी से फुर्सत नहीं, दूसरे की क्या देखेंगे परन्तु फिर शिष्टता का खयाल करके कह दिया भाई का आज कुछ मूड नहीं है।

लौटकर फिर वही घूम-घाम शुरू हो गयी। दो बज गये। नौकर ने खाने को पूछा किन्तु यह सोचकर मना कर दिया कि जाने मेहमान कब आ जायें। भूख तो खूब लग रही थी किन्तु यह भी तो जीवन-मरण का सवाल था। ज़िन्दगी के साथी बार-बार तो भेंट करने आते नहीं, नौकर से कह दिया थोड़ी देर में पूछना।

ठीक तीन बजे होंगे जब विश्वनाथ जी की आवाज सुनकर एक दम चौंक पड़े बैठे-बैठे कब झपकी लग गयी, पता ही नहीं लगा। झट से उठ कर खड़े हो गये। फिर सामने देखा तो एक बड़े सुन्दर लम्बे-चौड़े शरीर के हंसमुख सज्जन खड़े थे और उनके पास ही एक अधेड़ महिला जो उनकी पत्नी थी। पीछे किशोर पुत्र और तरुण पुत्री थी। एक बार बड़े संतोप से भाग्य सराहा लेकिन मेहमान बड़े अजीब ढंग से आये। दिमाग में बना-बनाया प्लान गड़बड़ हो गया। क्या कहें, कैसे कहें यह सब कुछ समझ में नही आ रहा था। इतने में ही विश्वनाथ जी ने 'मीट माई फ्रैण्ड मि० अलख निरंजन पाण्डे' कह कर आगन्तुकों से हमारा परिचय कराया और इस के बाद आगन्तुक सज्जन, उनकी पत्नी, पुत्र तथा पुत्री कुमारी नीरजा का परिचय हुआ। परिचय में ही उन्होंने यह भी बता दिया कि कुमारी नीरजा मैट्रिक की परीक्षा दे चुकी हैं, और यू० पी० बोर्ड में सर्व प्रथम रही हैं।

सर्वप्रथम सुनते ही पहले तो हम कुछ घबड़ाये किन्तु बाद में संभल गये। हमारा ख्याल है कि इस घबराहट को किसी ने नोट नहीं किया।

थोड़ी देर बाद आगन्तुक महोदय बोले—पाण्डे साहब, आपकी कोठी हमको बहुत पसन्द आयी। आप भी बहुत सुन्दर है। इस को बनाने में आपको काफी मेहनत करनी पड़ी दीखती है।

हम यह सब तारीफ सुन तो रहे थे लेकिन कोठी पसन्द आयी, बाग पसन्द आया, इन सबसे कुछ सन्तोष नहीं हो रहा था। बातचीत का क्रम काफी देर तक और चलता रहा। विश्वनाथ जी दुनिया के मामलों में दिलचस्पी लेते थे। राजनीति की कुछ बातें छिड़ गयीं। रूस अब क्या करेगा--अमरीका की नयी नीति का भारत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यही सब गम्भीर विषय छिड़ गये। हम भी बातचीत में पूरा

हिस्सा लेने की कोशिस कर रहे थे, लेकिन मन ही मन हमको विश्वनाथ जी पर बड़ी खीझ आ रही थी। यह बात हमारी समझ में हरगिज नहीं आ रही थी कि इस समय से और रूस और अमरीका की नीति से सम्बन्ध क्या। कई बार कोशिस भी की कि बातचीत की धारा को बदल दें लेकिन पर जम ही नहीं पा रहे थे।

एक बार सोचा कि विश्वनाथ को अलग ले जाकर कहें कि बात मतलब की करो। आगन्तुकों को सारी कोठी दिखाओ. किताबों की अल्मारी दिखाओ, बाग दिखाओ। फिर यह सोचकर रह गये कि विश्वनाथ तीन-चार बार के तजूर्बेकार आदमी हैं। कहीं ऐसा न हो कि जरा सी असावधानी में सब गुड़ गोबर हो जाय। किन्तु हमें कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ा। थोड़ी देर बाद स्वयं आगन्तुक सज्जन ने ही बातों का सिलसिला पलटते हुए कहा—पाण्डे साहब आप भी खूब हैं, हमेशा याद रहेंगे, भाई मेल-जोल कायम रहे इसलिये पत्र व्यवहार जरूर चलते रहना चाहिये।

बात ढंग पर आयी देख दिमाग कुछ स्वस्थ हुआ। आगन्तुक ने आगे जो कुछ कहा, वह सुनकर तो हमने समझ लिया कि सब ठीक हो गया। वह बोले—दीखता है दो चार रोज में ही इधर फिर आना पड़ेगा तब फिर आपसे भेंट होगी, वैसे आपका पता क्या है। परिस्थित को काफी अनुकूल समझ हमने बड़े हर्ष से पूरा पता लिखा। मेहमानों को बिदा करते हृदय फूला न समाया।

यह बात बीते डेढ़ साल हो गया। तब से रोज चिट्ठी की बाट देखते हैं। हमारा दृढ़ विश्वास हो गया है कि ग़लती पोस्टमैन ने की है। ऐसा नहीं हो सकता कि उन्होंने चिट्ठी डाली ही न हो। मूर्ख पोस्टमैन जाने कहां दे आया होगा।

जगदीश 'विद्रोही'

आन्दोलन किसलिये

●

रमा ने इच्छा न होते हुये भी अपनी अटारी की समस्त वस्तुओं को संजोने का प्रयास किया। अलमारी पर दीमक लगी फाइलों की ढ़ेरी को उसने नीचे डाल, कपड़े को फिर से बिछाया। वह सोच रही थी कि रीतिरिवाज भी क्या हैं—सब रईसों और सुखी प्राणियों के चौचले हैं। तभी अन्तरात्मा कह उठी—नहीं, साल भर के कूड़े-करकट को घर से बाहर निकालने की प्रेरणा देती है, दिवाली! तभी हाथ की चलती उंगलियां उलझ गई एक लिफ़ाफे में जिसे देखते ही १७ वर्ष पूर्व का इतिहास सहसा मस्तिष्क में आया। स्वच्छ मेघों की टुकड़ियां जो उसके नयनों की कोर पर मंडरा रहीं थी। अक्समात बरस गईं। उसने खोल कर लिफ़ाफे को पढ़ा—

"स्वप्निल जीवन के सुनहरे तार,

गूंजते रहो सर्वदा—

'तुम्हारी मनोकामना की पूर्ति के लिये मैंने अपने जीवन की बलि दे दी। चाहे संसार मुझे हत्यारा कह कर क्यों न पुकारे, मैं तुम्हारी दृष्टि में अवश्य ही निर्दोष हूंगा, ऐसी मुझे आशा है। वह नीच खिलावन सेठ इसी योग्य था, कि उसे...

सम्भव है कि इस आजीवन - कारावास की कारा ही मुझे चाट ले, और मैं तुम्हें एक बार भी न देख पाऊं। तुम मुझ से कोसों दूर हो किंतु तुम्हारे स्मृति-चिन्ह न मिट सकेंगे, इस धूमिल पटल से। वे सदैव ही मन्द....मन्द गति से वायु में मंडराते रहेंगे—कि एक युग था, जब यहां भी दीप जला करता था, समाज की ओट में, किन्तु अब बुझ गया है—वह।

तुम पराई हो चुकी हो, मुझे खेद नहीं प्रसन्नता है। प्रतिज्ञा पूरी हुई किन्तु समय मेरी प्रतीक्षा करने में असमर्थ रहा, क्षमा करना।

किन्तु अब आग्रह है परमात्मा से कि प्रकाश की शीतल किरणें जिनकी ज्योति तले जीवन प्रसार क पाया, काश अन्तिम समय में भी उसी रुपहरे आंचल में सोकर शान्त हो पाता। बस..., बस यही है अपने हारे हृदय की आकांक्षा और आकुल-जीवन की प्रतीक्षा। तुम सुहागन रहो!

तुम्हारा ही—
जीवन
अंडमान

पढ़ते-पढ़ते उसके नेत्र बह चले। सारी स्मृतियां चू पड़ी उसकी डबडबाई आंखों से। उसके हृदय-पटल के धुंधले चित्र शनैः शनैः श्वेत पत्र पर उदगार बन उतर रहे थे। कितनी विवशता थी वह जानती है, लोहे के सदृश्य कठोरता नहीं उदारता थी, किन्तु करती भी क्या ? नारी ही तो थी न। आंसू लुढक कर एक कतार बनाते चले, किन्तु उनमें इतना सामर्थ्य एवं साहस कहां कि वे उस के जीवन को सूचित करते, कि रमा का सुहाग एक हवा के झोंके से पुंछ चुका है। वह सिसकियां भरती पलंग पर लेट गई, और अपने मुंह को हथेलियों से ढांप खो गई भूतकालीन स्मृतियों में।

अपने कोमल कपोलों पर रक्तिम पाउडर लपेटे संध्या ने अंगड़ाई ली और तत्क्षण ही लज्जा--सी काली चादर ओढ़ लेट गई मौत की धुँधली परछाईं की भांति क्षितिज के छोर पर। घर-घर दीप जल चुके थे किन्तु रमा का नहीं। वह अभी तो भूत और वर्तमान के आंसू पोंछती भविष्य के निर्मम झंझावातों से भयभीत हो सिसकियां भर रही थी। मन्दिर का ध्यान आते ही उसने उठ कर दीप जलाया और निकल पड़ी पूजा की सामग्री संजोए एक तांबे के थाल में मन्दिर शहर से कुछ ही फांसले पर चम्बल के किनारे स्थित था।

मन्दिर की पौढ़ियों पर चढ़ाव की ठोकर से वह सिहर कर बुदबुदा उठी--'खून किया है उसने एक पापी कुत्ते का......खून। 'आजीवन कारावास।' उसके रोम-रोम में जैसे बिजली कौंध गई।

'सीमित समय भी तो नहीं जो काटा जा सके किसी के सहारे, किस आस पर किसी की याद में। ज़िन्दगी, मौत से भी घृणित और भयानक बन गई है--उसकी। किन्तु आज तो अपना देश ग़ुलाम नहीं, फिर क्यों नहीं छोड़ा गया उसे काली कारा से जहाँ वह नाली के कीड़ों की भांति दूषित वातावरण में पड़ा बिलबिला रहा होगा। क्या सचमुच उसने क्रांतिकारी बन आज़ादी की लड़ाई में राष्ट्र के साथ विश्वासघात् किया है ? क्या उसके कन्धों ने इंकलाबी दीवार की नींव अपने खून के कतरों से नहीं सींची। खिलावन का खून ! जिसने गोरी सरकार को अपनी सहायता देकर सन् ४२ की बलिया क्रांति को कुचलवाने का प्रयास कराया। नगर के चौराहों पर नवयुवकों और युवतियों को नंगे लटका कर फांसी के तख्तों पर झुलवाया। गद्दार कहीं का...।'

सहन से उतर वह दीपक की ज्योति जला, प्रतिमा की आराधना के लिये आगे बढ़ी।

आज मन्दिर में रमा का अनमना मन आराध्य प्रतिमाओं को विहंसती पा रहा था। किन्तु ऐसा क्यों ? उसे कम-से-कम इन पर तो अटल विश्वास था फिर ये,...ये सभी की सभी उसका मखौल उड़ा रही हैं !

वह अभागिन तो, उन्हीं के सहारे, उसी आधार पर जीना चाहती है। जीर्ण

जंजीर में जकड़ा कांसे का पुराना घण्टा धरती की ओर मुंह बाये चीख-चीखकर चिल्ला रहा था—'रमा ? भगवान की इन पाषाण प्रतिमाओं में इतनी शक्ति नहीं कि ये तुम्हारे आँसुओं को पोंछ कर अपने बाहुपाशों में खींच धैर्य बंधा सकें। ये मूर्तियाँ जड़ हैं, पत्थर हैं—निर्जीव हैं ! दो आँसू भी तो नहीं इनके जो तुम्हारी दशा पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकें.......!'

'आत्मा पर विश्वास ही परमात्मा को प्राप्त करना है। मूर्तियों के हृदय में प्रवेश करना केवल मन को विजय की सान्तवना दे, वास्तविकता से कोसों दूर रहना है। बचपन की बात बटोरते वह बिखर गई अनजानी सी उन अधरों पर जो अब मौन थे। अंधकार के घुंधले आँचल पर उसकी आत्माकांक्षायें, किसी साथी के लिये तरस कर करवट बदल लेती।

गगन के गहन में असंख्यों तारों को देख वह अपने अतीत को ढूंढने लगती—फिर वही नैराश्यपूर्ण......एक लम्बी श्वास, मौनता से टकरा कर शून्य लोक से निकल जाती। रजनी को देखते ही उसके वैभव पर उसे घृणा होती। सोचती रजनी काली है और बिल्कुल काली, किन्तु उसके हाथों में असंख्यों चूड़ियाँ झनक रही हैं, फिर तभी भावनाओं के भव्य अट्टालिका में वह अपने को सुला देती।

फिर वही प्रात, वही नीरस संध्या, वैसी ही काली रजनी पुनः आती। परिवर्तन की परिधि से संसार भी अछूता नही बचा। सृष्टि हारकर संकीर्ण रास्तों को काटती आगे बढ़ी, किन्तु रमा के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया।

मन्दिर के खुले वातायन में आ उसने तारकदलों को देखा। वे मुस्करा रहे थे। तभी इंजिन की सिसकती सुरीली सीटी ने रमा को सहसा झकझोर दिया और उसके सारे विचार पटरियों पर भागते लौह पहियों की 'छक-छक छक-छक' में बिखर कर रह गये। उसे ज्ञात हुआ, आधी रात जा चुकी है। रेल के पुल से गुजरती गाड़ी की बत्तियाँ तपेदिक के कीड़ों की भाँति रेंगती-सी दृष्टिगोचर होतीं। गति कुछ धीमी थी। चम्बल की लहरियों से उठे अचानक एक ऊंचे भयानक स्वर से रमा चौंक उठी। एक बार सरिता का प्रवाह रुक कर गोल चक्कर काटता हुआ किनारों तक आया।

पुल पार कर गाड़ी रुक गई। रमा अत्यन्त भयभीत हुई। जब कि गाड़ी से सैनिकों की टुकड़ियां चम्बल के किनारों को आधी रात के गहन अंधकार में गोलियों से बींधने लगी।

उसके सम्मुख बलिया क्रान्ति का अगस्त मास पुनः सजीव हो उठा। लगा जैसे उसका 'जीवन' चम्बल की स्वर लहरी को चीरता उसके निकट आने का प्रयास कर रहा हो। उसने अतीत को निहारा, तारों से पूछा ? किन्तु उत्तर में १७वर्ष पूर्व के

चिरपरिचित मधुर कवि की स्वर लहरी मन्द-मन्द गति से कलकल करती चम्बल के किनारों को छूती नज़र आई। कितना दर्द था, कितना प्यार था पंक्तियों में—

'मैं गगन से ओ सुनयनी ! चाँद तारे ला रहा हूँ।
तोड़ कर बन्धन क्षितिज के पास तेरे आ रहा हूँ।'

उसे आभास हुआ जैसे वह स्वप्न देख रही हो ...किन्तु, अकस्मात वह टूट गया, दन....दन...दन...न...दन...करती गोलियों की बौछार में।

तत्क्षण उसे लगा जैसे कोई व्यक्ति सचमुच ही मन्दिर की करीब तीस फुट निचली चट्टान को पकड़ने का साहस कर रहा है। तभी दनदनाती मशीनगनों की 'चटर-पटर' करते स्वरों ने चट्टान को चूमा। वह व्यक्ति फिर खो सा गया लहरियों में।

उस मन्दिर के अधबुझे दीपों को रमा ने बुझा दिया और वह नीचे की ओर उतरी कुछ साहस कर। गोलियों की तीव्र बौछार किसी समय भी उसको चाटे बिना नहीं रहती।

चट्टान के ऊपर पड़ा व्यक्ति पदचाप सुन कराहट थाम कर सिहरा कि तभी रमा ने धीमे स्वर से कहा—'ठहरो, डरो नहीं ! मैं तुम्हारी सहायता करूंगी।

वह आगे बढ़ती गई। निकट पहुँच, अधकटे केश और लम्बी दाढ़ी वाले विशालकाय व्यक्ति के सीने से खून की धार बहनी देखी। उसने श्वास लम्बी खींचते हुये कहा—देवी, मुझे बचाओ......हां, वे......पीछा कर रहे हैं, मेरा.......। उसका दम फूलने लगा था।

पुनः वही गोलियों का स्वर अंधकार में गूंजा।

रमा ने उसके भीगे-केशों को मस्तक से हटाते हुये मुंह पर नज़र डाली। माथे के लम्बे निशान से चेहरा कुछ-कुछ परिचित-सा प्रतीत हुआ। उसके मुंह से सहसा निकला–'शतीस, तुम !'

वह घबरा कर बोला–'नहीं, नहीं मेरा नाम......है......आप कौन हैं ?' उसने आश्चर्यचकित हो प्रश्न किया।

ट्रेन की 'छक-छक' से वार्त्ता के क्रम में अनायास ब्रेक लगी किन्तु उसकी ओर फेंकी जाने वाली टार्चलाइट जो वनस्थली के मौन पौधों को प्रकाशमान करती नज़र आई, भयभीत किये बिना न रह सकी।

रमा ने उसे मूर्छित अवस्था से चेतना लाने का प्रयास करते हुये कहा–'उठो ! चलो मैं सहारा देकर ऊपर मन्दिर में ले चलूं, अन्यथा। उसकी पलकें एक क्षण को

खुली और वह बड़ी नैराश्यपूर्ण दृष्टि डालते हुए कराह कर बोला—'अ
कहां—जाऊंगा। चन्द मिनिटों का मेहमान हूँ...यह, उफ ! वे पकड़ कर मुझे ले...
जायेंगे। नहीं, मुझे कहीं छुपा....दो ! मैं चैन से मरना भर चाहता हूँ।'

उसने साहस कर खड़े होने का प्रयत्न किया। अपने हाथों के नीचे द
घाव से खून के प्रवाह को रोकते हुये रमा का सहारा ले वह ऊपर की ओ
बढ़ चला।

सहन के सामने के चौक में रखी प्रतिमाओं के समीप पहुँच रमा ने उसे लिट
दिया। उसने अपनी गर्दन को कई बार झटके से दायें-बायें घुमाते हुये कहा—'आप
मुझे क्षमा करना, बड़ा कष्ट दिया मैंने ! काश, इस उपकार....का बदला देने मे समर्थ
होता।'

'तुम्हारा नाम पूंछ सकती हूँ ?' रमा उत्सुकता से दीप जलाती हुई बोली।

'नाम ! मेरा....नाम क्या करोगी...जान कर' उसने करवट बदली। अचान
घाव पर लगी हथेली के अलग हटने से सिमटा हुआ रक्त एक बारगी बाहर निकल
भागने को आतुर हो उठा।

दीये की धूमिल ज्योति में रमा ने कपड़े से बहते रक्त को रोकने का पुनः प्रयास
किया। उसकी दृष्टि उसकी बाईं कलाई पर गई जिस पर गुदा हुआ था उसका नाम–
'सतीश।'

उसने पुनः प्रश्न किया–'सतीश' तुम, तुम ही सतीश हो ! नाम क्यों छुपाते हो
अपना।' व्यक्ति के नेत्र रमा के मुख पर टिक गये। वह कुछ न बोल सका।

रमा ने झकझोरते हुये कहा—'सतीश, देखो मैं रमा हूँ, पहचाना नहीं तुमने।
तुम अंडमान से कैसे और कब आये ? जीवन कहां है ? तुम जीवन के साथ ही थे, न !
उसने सब कुछ जैसे एक श्वास में ही कह डालना चाहा।

बड़े ही नैराश्यपूर्ण थके स्वर के सहारे अपनी नीली पुतलियों को नीचे की
ओर बटोरते हुये उसने कहा—'रमा, जीवन एक लम्बी कहानी बन गया है।
किन्तु बड़ी ही छोटी सी लगती है, ठीक जेबी जहाज की तरह इस वैज्ञानिक युग में जो
जहां चाहा जल, थल और आकाश में उड़ाया और फिर अपनी पाकिट में समेट कर
रख लिया। वह ऐसी कहानी है–जिसका कोई आदि और अंत नहीं।

अंडमान में तीन वर्ष बिताने के बाद ही हम वहां से भाग निकले। किन्तु
आश्चर्य होगा तुम्हें कि आज तक लुक-छिप कर ही शेष जीवन बिताने पर विवश होना
पड़ा है। काश ! यह पता होता कि आजादी का जीवन भी इतना विषाक्त, घिनौना
और दुःखदपूर्ण भी हो सकता हे तो सचमुच वहीं अपने प्राणान्त करना हम कहीं अच्छा
समझते।

किन्तु नहीं, लगता है कि जैसे हमारे स्वप्न हमें छल रहे थे। भारत की वह

तस्वीर हमारे सामने थी, जिसे हम अपने रक्त के कतरों से रंगीन बनाने में तल्लीन थे। और एक दिन वह भी आया कि जब अपनी आँखों के सामने यह महसूस किया कि हम आज़ाद हैं। हमारा वतन, हमारी कौम और हमारा अस्त-व्यस्त समाज गुलामी की जंजीर से मुक्त हुआ। किन्तु क्या यह सत्य था ! वास्तविकता थी? ये प्रश्न ही ऐसे जटिल है कि मस्तिष्क उलझ कर रह जाता है।

कल ही रसूलपुर के भूदान आन्दोलन के ऐतिहासिक पृष्ठ में एक नई घटना घटी। संघर्ष का सूत्रपात दान की गई भूमि को पुनः दानियों द्वारा अधिकार करने की चेष्टा में हुआ। बात क्षण में ही बढ़ गई। दोनों ओर से बल्लम, भाले और बर्छियों से सुसज्जित बहादुर मैदान में जूझ पड़े। गम्भीर स्थिति में जीवन बीच-बिचाव की दृष्टि से उस आग में कूद पड़ा, किन्तु अकस्मात ही उत्तेजित दानी दल की भीड़ ने उसे बुरी तरह घायल कर....मौत के घाट उतार दिया। उसका गला रुंध गया और लड़खड़ाती जबान से आगे बोला...और....इस तरह अपना जीवन हमेशा...हमेशा के लिये हमसे विदा हो गया !'

उसकी मौन आकृति पर उभरे घृणा से परिपूर्ण मनोवेगों के उतार-चढ़ाव रह-रह कर रमा से प्रश्न कर रहे थे कि ऐसे भूदान से क्या आज के पीड़ित किसानों का उत्थान सम्भव है ? ऐसी खैरात से कल्याण जो प्रायः समर्थ व्यक्ति अपनी इच्छानुसार बची-खुची बंजर भूमि तक केवल यश प्राप्ति के लिये ही दान खाते पर चढ़ाने का प्रयास करते हैं ? उसका हृदय उलझ गया।

सतीश ने पुनः टार्चलाइट की चकाचौंध से घबरा कर श्वास को ऊंचा खींचते हुए कहा—'और.... ......मुझे ये कुत्ते किसानों को बरगला कर बलवा कराने के आरोप में बन्दी बनाकर ले जाना चाहते हैं। मैं.. नहीं जाऊंगा ! वे मुझे नही ले जा सकते।' कहते-कहते वह अचेत हो गया। उसकी मुट्ठियां क्रोध से तन गई थीं। रमा ने देखा कि उसकी लाल आंखे बाहर को निकलीं आ रही हैं और उसी क्षण उसका सिर लटक कर रमा की गोद में गिर गया।

दूर से टकराती वनस्थली से उभरे स्वर उसके कानों के समीप आते जा रहे थे। उसे लगा जैसे कोई गा रहा है :

लौ अभी बुझी नही कि शेष और रात है।
चल रहा पथिक अभी कि लक्ष्य साथ-साथ है।
ज्वार आएगा जरूर जब युवा समुद्र है—
है गहन तिमिर भरा मगर समीप प्रात है।

रमा की स्मृति एक बार अन्तरद्वन्द्व कर उठी...जीवन ! सतीश !! यह सब क्या है, इतना दुखद अन्त तुम लोगों का क्यों ? किसलिये !

रामेश्वर 'अशान्त'

सातवाँ यज्ञ

●

छह यज्ञ तो पूर्ण हो गए नाथ ! किन्तु सातवें यज्ञ के लिए तो घर भर में एक पैसा भी नहीं बचा । अब क्या होगा ?

तुम चिन्तित न होओ, देवि !···आज तक हर कुसमय में तुम्हीं तो मुझे साहस के साथ, दृढ़ रहकर, परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा देती रहीं ।

ऐसा न कहें, नाथ ! मैं तो आपकी दासी मात्र हूँ । इन छः यज्ञों की आहुति के रूप में इस लाखों के घर का कण-कण भेंट हो चुका है । अब तो हमारे पास कुछ भी नहीं ।

आज तुम्हारे मुख से मैं यह क्या सुन रहा हूँ, देवि ! तुम धन न रहने के कारण विह्वल हो रही हो । विचार करो, जो वस्तु हम संसार में अपने साथ लेकर नहीं आए और जो हमारे साथ जाएगी भी नहीं, उसके लिए इतनी चिन्ता क्यों ?

मुझे धन की लालसा नहीं, नाथ ! वरन् आपका सातवां यज्ञ कैसे पूर्ण होगा ? यही चिन्ता सता रही है ।

सातवां यज्ञ ! ओह ?

—नाथ !

हाँ, एक बात अवश्य हो सकती है, शीतला ! मैं कहीं दूर देश में जाकर किसी धनी-मानी सज्जन के हाथों अपने छओं यज्ञों का फल बेच आऊं । उससे जो धन प्राप्त होगा, उसी से हम सातवें यज्ञ की आहुति का पूर्ण प्रबन्ध करने का यत्न करेंगे ।

किन्तु, नाथ !····

भ्रम में न पड़ो, देवि ! हमें किसी भी यज्ञ के फल की इच्छा नहीं है, हमारा लक्ष्य तो सातवाँ यज्ञ पूर्ण करना मात्र है । हम आज ही राजस्थान की ओर प्रस्थान कर देंगे ।

किन्तु, आज तो दिशा-शूल है नाथ !

शुभ कार्य के लिए दिशा-शूल कभी नहीं होता । तुम निश्चिन्त रहो, भगवान भला करेंगे ।

घर में थोड़े से आटे के अतिरिक्त और कुछ न था। उसकी दो रोटी बना, पोटली में बांध, पतिव्रता शीतला ने विराज को दे दीं। और विराज उन्हें ले प्रसन्नता से लक्ष्य की ओर चल दिया।

भोली वसुन्धरा को दिन भर तपाने के पश्चात् भगवान भास्कर अस्तांचलगामी होने की तैयारी कर चुके थे। पश्चिम दिशा प्रिय-मिलन की आशा में रक्ताक्त हो रही थी।

और राहगीर विराज भी थककर चूर हो चुका था। राह में एक वट-वृक्ष था और सरोवर देख वह ज्योंही क्षुधा-पूर्त्ति के लिए बैठा, त्योंही एक हांफती हुई सर्मा (श्वानी) उसके सामने इस प्रकार आकर बैठ गई जैसे भूख से तिलमिला रही हो।

विराज बहुत भूखा था, किन्तु उसने अपनी भूख की तनिक भी चिन्ता न करते हुए, पहले एक रोटी सर्मा को दे दी तथा शेष स्वयं खा, पानी पी पुनः अपने पथ पर चल दिया।

बेचारे की भूख नहीं मिटी, मिटती भी कैसे? किन्तु उसे पश्चाताप नहीं था वरन् आत्म-सन्तोष से, पथ पर आगे बढ़ने की शक्ति चौगुनी हो गई थी।

सती रानी भानुमती का नाम देश विदेश में प्रसिद्ध था। इसी कारण विराज ने भी मानगढ़ की ओर ही प्रस्थान किया था।

जिस समय वह मानगढ़ पहुँचा उस समय रानी स्नान आदि से निवृत्त हो, पूजा का प्रबन्ध कर रही थीं, किन्तु विराज का नाम सुनते ही उसने उसे पूजा–कक्ष में ही बुला लिया।

"महारानी की जय हो!" विराज ने कमरे में प्रवेश किया।

आओ, विराजराज, मानगढ़ में प्रविष्ट हो आज तुमने हमें कृतार्थ किया है। आदेश करो—

आपको तो पता ही होगा, महारानी...

हां-हां मुझे पता है कि तुमने सात यज्ञों का क्रम आरम्भ किया था।

मैं उसी के लिए उपस्थित हुआ हूँ, महारानी! छः यज्ञ पूर्ण करने में मेरी सम्पूर्ण सम्पदा समाप्त हो गई है। व्रत तब पूरा होगा जब कि मेरा सातवां यज्ञ भी पूर्ण हो जाए। अतः यदि आप कृपा कर, मेरे छः यज्ञों का फल मोल ले लें तो उससे प्राप्त धन से मैं अपना सातवां यज्ञ भी पूर्ण कर लूँ।

रानी सती थी। सती-बल परोक्ष-परिस्थिति के ज्ञान की क्षमता रखता है। वह विराज को मानपूर्ण नेत्रों से देख मुस्कुरा उठी।

यह क्या कह रहे हो विराज ? तुम्हारे तो सातों यज्ञ पूर्ण हो चुके। यदि यज्ञ फल-विक्रय की ही आकांक्षा लेकर आए हो तो सातवें यज्ञ का फल बेच सकते हो। उसके लिये मैं अपने राज्य का सम्पूर्ण कोष प्रस्तुत कर सकती हूं। आदेश दो !

आप तो हंसी कर रहीं हैं महारानी ! मैं तो यह सब कुछ सातवें यज्ञ को पूर्ण करने के लिए ही कर रहा हूँ। मुझे धन की तो तनिक भी लालसा नहीं, धन का मुझे करना भी क्या है ?

हंसी की बात नहीं, विराज ! तुम्हें कुछ भ्रम हो गया है। सातवें यज्ञ की आहुति तो तुमने कल सायंकाल सरोवर के किनारे ही दे दी। वह यज्ञ तो पूर्ण हो गया। यदि उसी का फल बेचने की इच्छा है तो आदेश करो !

जब यज्ञ ही पूर्ण हो गया तो फल बेच कर क्या करूंगा, महारानी !—कष्ट के लिए क्षमा करें।

और घर लौटते-लौटते सातों यज्ञों के फल ने विराज को पुनः उसके पुराने वैभव पर प्रतिष्ठित कर दिया।

मदनलाल भाटिया

श्मशान भूमि

●

सोमवार का दिन था। मैं रात्रि के बारह बजे श्मशान भूमि पर बैठा था। चारों ओर निस्तब्धता और भयानकता छाई हुई थी। उस निस्तब्धता और भयानकता में मेरे जीवन का करुणाजनक इतिहास सन्निहित था। मेरी विचारधारा और भावधारा दोनों मेरे जीवन की उस हृदयद्रावक घटना की स्मृति को निमन्त्रित दे रहे थे, जो कि मेरे जीवन की एक ठेस थी। मै उसे भुलाना चाहता था, किन्तु भुला न सका। मैं उसे दबाना चाहता था, लेकिन दबा न सका। बहते हुए अश्रु मेरे उस करुणाजनक इतिहास का वर्णन कर रहे थे, जिसको सुनने वाला भी मैं था और कहने वाला भी मैं।

शव में अग्नि प्रज्ज्वलित कराने के बाद सभी लोग हट कर दूर खड़े हो गए। मेरे सम्मुख भावनाओं की होली जल रही थी और मैं मौन खड़ा सभी कुछ तो देखता रहा असहाय, असमर्थ और लुटा लुटा सा। चिता 'धूँ-धूँ' कर जल रही थी जैसे आज वह उसके कण-कण को मिट्टी में मिला कर ही दम लेगी। मेरा हृदय चीत्कार उठा।

ओ श्मशानभूमि ! क्या तुमने इसी लिये जन्म ग्रहण किया है कि तुम हमारे प्रिय मित्रों और संबंधियों को उठा कर अनन्त की गोद में सुला दो ? क्या ऐसा करते तुम्हारा हृदय द्रवित नहीं होता ? अनेक मनुष्य अनेक आशाओं को लेकर अपने जीवम के पथ पर अग्रसर होते हैं, लेकिन वे अभी प्राप्य स्थान पर पहुँचने ही नहीं पाते कि तुम उन्हें उनकी आशाओं समेत भस्मीभूत कर देती हो। यह कहाँ का न्याय है, श्मशान भूमि ? बोलो तो सही, मौन क्यों हो ? क्या तुमने इसलिए मौन धारण किया हुआ है कि संसार तुम को गम्भीर और सुशील समझ कर तुम पर मुग्ध हो जाए और तुम उसे आन की आन में हड़प कर जाओ।

ओ मृत्युगृह ! आज तुझ को देख कर न जाने क्यों मेरे नेत्रों से अश्रु बह रहे हैं वस्तुतः ये अश्रु, अश्रु नहीं अपितु मेरे प्रिय मित्रों और सम्बन्धियों के वियोग की स्मृति द्वारा उत्पन्न हुआ घायल हृदय का दर्द है। ये बहते हुए दो अश्रु मेरे प्रिय मित्रों और सम्बन्धियों के साथ बिताए गये आनन्दमय दिवसों के इतिहास के दो पृष्ठ हैं, जिनको केवल सहृदय पुरुष ही पढ़ सकते हैं। उनके परलोक सिधारने से पूर्व भी मैंने उनके

वियोग में कई बार अश्रु बहाए, किन्तु उन अश्रुओं में सुख ही सन्निहित रहता था। किन्तु आज के बहते हुए अश्रुओं में केवल निराशा, कसक और शोक के मेघ निहित हैं। ओ श्मशान भूमि ! मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है। मैं चाहता हूं कि मैं भी वहाँ पर पहुँच जाऊं जहां पर मेरे प्रेम के केन्द्र पहुँच चुके हैं। अतएव मैं भी तुम्हारी धूल में मिलना चाहता हूँ जिसमें मेरे प्रियजन मिल चुके हैं। भौतिक शरीर के उत्सर्गोपरान्त मैं अपने मित्रों की खोज में रोऊंगा, फूट-फूट कर रोऊंगा और अश्रुओं का नद बहा कर उसमें स्वयं बह जाऊंगा।

तभी दूर से एक स्वर श्मशान को बींधता हुआ अपने कानों से टकराया— 'राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है।' देखा एक लालटेन के धुंधले प्रकाश में कुछ लोग सफेद कफन से ढकी अर्थी उठाये चले आ रहे हैं। 'राम नाम सत्य है' की अमर ध्वनि और निकट आती गई। हृदय का रक्त एक क्षण के लिये जैसे थम कर जम गया।

मुझे आभास हुआ जैसे कोई देव मुझे पकड़ कर झकझोरता हुआ बड़ी ऊंची आवाज में खिलखिला रहा है—'राम नाम सत्य है।'

'ओ पगले ! तुम आज निराशा के सागर में डुबकियाँ क्यों ले रहे हो ? यदि संसार में मृत्यु न होती, तो जीवन का सम्मान कौन करता ? यदि संसार में अन्धकार न होता तो प्रकाश का सम्मान कौन करता ? यदि जीवन में निराशा और व्याकुलता का अस्तित्व न होता तो आशा और आनन्द का महत्व स्वतः मर जाता। जीवन अमर मार्ग है, मृत्यु मोड़ (परिवर्तन) है और इसी मोड़ में ही मार्गगामी की परीक्षा है कि वह कैसे अपने प्राप्य स्थान पर पहुँचता है। मेरी अग्नि की उड़ती हुई चिन्गारियां, विकरालता और निस्तब्धता तुम्हें पुकार-पुकार कर कहती है कि निराशा के सागर से निकल कर आशा के तट पर आओ और ससार के सम्मुख उनके गुणों का नाद बजाओ।'

सहसा घने अन्धकार में दूर से खद्योत का प्रकाश दिखाई दिया जो मुझे मौन भाषा में बार-बार कह रहा था 'जीवन आशामय है'…'जीवन ही आशा है'…'जीवन आशामय है।'

मुनीन्द्र कुमार जैन

मारण मन्त्र

●

बचपन में पढ़ा था कि बंगाल का काला जादू बहुत भयानक होता था। जादूगर सैकड़ों मील दूर बैठे मारणमन्त्रों के जोर से अपने शत्रु को मार डालते थे। किंतु आधुनिक सभ्यता में पले होने के कारण मैं इस प्रकार की बातों में विश्वास नहीं रखता था।

बी० ए० की परीक्षा समाप्त हो चुकी थी और इस बार मैं शिकार के लिये बाराबंकी जिले में छुट्टियां बिताने जा रहा था। घाघरा नदी के किनारे चौकाघाट नाम का एक स्टेशन है। वहां बड़ियाल के शिकार की बहुत सुविधा है।

चौकाघाट में मेरे एक मित्र ठाकुर धीरसिंह की कुछ जमींदारी थी। ठाकुर इन्टर में साथ ही पढ़ते थे। परन्तु लगातार दो साल तक फेल होने के कारण उन्हों ने पढ़ना छोड़ कर अपना फार्म खोल लिया था।

धीरसिंह का फार्म घाघरा नदी के किनारे दूर तक फैला हुआ है। गर्मी के दिनों में फार्म के बीच में बनी धीरसिंह की दो मंजिली कोठी से रेत में पड़े धूप खाते घड़ियालों को बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। यद्यपि देखने में ये घड़ियाल सोते नजर आते हैं परन्तु जरा-सी आहट होते ही खिसक कर अथाह जल में पहुँच जाते हैं।

चौकाघाट स्टेशन पर धीरसिंह अपने दो नौकरों के साथ मुझे लेने आया था। धीरसिंह जोर के साथ गले मिलने के बाद मैंने उसके नौकरों की ओर नज़र दौड़ाई। उनमें से एक वृद्ध-सा नौकर मेरे लिए बिल्कुल अजनबी था।

"अरे धीर, इन बूढ़े बाबा को तुमने कब से अपने घर नौकर रखा है? दो वर्ष पहले जब मैं तुम्हरे यहां था, तब तो यह नहीं था? और वह पुराना बातूनी और गप्पी रामसिंह कहां गया?" मैंने पूछा।

"अरे तुम्हें अभी तक उसकी याद है! था भी बेचारा बहुत अच्छा। हमेशा उसकी बातों से मन बहलता रहता था।"

"'था भी' का क्या मतलब? क्या अब वह ज़िन्दा नहीं है?"

"यही तो अफसोस की बात है। पिछले वर्ष किसी आदमी से उसका जमीन-जायदाद के बारे में झगड़ा हो गया। मामला बढ़ कर कोर्ट तक पहुंचा और फैसला रामसिंह के पक्ष में ही हुआ। वह आदमी हार तो गया परन्तु इससे उस का क्रोध बहुत बढ़ गया। कहते हैं कि उस ने किसी जादूगर से सलाह लेकर रामसिंह पर मारण-मन्त्र का प्रयोग किया। जादू के प्रभाव में वह अकेला रात को नदी में नहाने के लिए निकला और वहीं मगर का भोजन बन गया।"

"जादू-वादू सब बकवास है। यह तो केवल एक दुर्घटना मात्र है। इसमें किसी प्रकार के जादू की करामात है,यह मैं मानने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"इस सम्बन्ध में अधिक बातें करने के लिए समय नहीं है। इस समय तो तुम घर चल कर भोजन आदि करो। फ़ुर्सत के वक्त इस बात पर बहस करेंगे।"

मैं चुपचाप धीर के साथ चल दिया।

धीरसिंह के घर पर पहुंच कर मैं उसके पिताजी से मिला। नहा-धो कर खाना खाने के बाद मेरे लिए बाहर की बैठक में बिस्तर बिछा दिया गया। मैं लेट तो गया पर मेरा मन सोच-विचार में ही मग्न रहा। वृद्ध नौकर आ कर मेरा बदन दबाने लगा। समय काटने के लिए मैं उससे बातें करने लगा।

"क्यों बाबा, क्या तुम जादू पर विश्वास करते हो?"

"अरे बाबू, अब तुम से क्या कहूँ! आज-कल के पढ़े-लिखे लोगों को तो किसी बात पर यकीन ही नहीं आता है। पर मैंने अपने जीवन में ऐसी-ऐसी बातें देखी हैं जिनके कारण जादू पर यकीन करना ही पड़ता है।"

"पर क्या आजकल के जमाने में भी दूर बैठ कर जादू के जरिए किसी आदमी की जान ली जा सकती है।"

"हमारे गांवमें पहले एक ऐसा जादूगर था जो इस काम को कर सकता था। इसे मूठ चलाना कहते हैं। मूठ चलाने वाला जादूगर एक मोम का पुतला तैयार करता है। इस मोम के पुतले के अन्दर उल्लू, सांप और कौवे का ताजा खून भर कर मारण मन्त्र का जाप किया जाता है। मन्त्र का जाप पूरा होने के बाद जादूगर शत्रु का नाम लेकर पुतले के शरीर में चाकू मार देता है। कहते हैं कि मोम के पुतले पर चाकू लगते ही उस आदमी को भी चोट लगती है और वह अचानक मर जाता है।"

"यह सब बेकार की बातें हैं! मैं इन पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"पता नहीं बातें करते-करते कब नींद आ गई। जब मेरी आंख खुली तो धीर जोर-जोर से मुझे हिला रहा था।

"ऐ कुम्भकर्ण, अब जागो भी ! कब तक घोड़े बेच कर सोते रहोगे ?"

मैं आंखें मलता हुआ उठ कर बैठ गया। पता चला रात हो गई है। चांदनी रात मगरमच्छ के शिकार के लिए अच्छी समझी जाती है। इसलिये मैं तुरन्त तैयार होकर, अपनी बन्दूक उठा कर धीर के साथ चल दिया।

बाहर का मौसम बड़ा सुहावना हो रहा था। स्वच्छ चांदनी में सब-कुछ साफ नज़र आ रहा था। दूर नदी के किनारे कुछ मगरमच्छ लेटे हुए थे। शिकार को सामने देख कर शिकारी की तबियत मचलने लगी है और हाथों में खुजली होने लगती है। परन्तु मगर का शिकार करते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। सब से आगे धीर, उसके पीछे मैं, लौर सब से पीछे कारतूसों की पेटी लिए वृद्ध नौकर—लालसिंह था। हम सब सावधानी के साथ कदम दबाते चले जा रहे थे।

अचानक लालसिंह ठिठक कर खड़ा हो गया। आतंक और भय से उसका चेहरा सफेद पड़ गया। मैं इस अचानक परिवर्तन का कारण नही समझ सका। लालसिंह ने फुसफुसा कर हम दोनों से रुक जाने के लिए कहा। मैं और धीर दोनों रुक कर उसकी ओर देखने लगे। लालसिंह ने मेरी ओर देखते हुए कहा—"बाबू, क्या तुम्हें किसी घण्टी के बजने की-सी आवाज सुनाई पड़ती है ?"

मैंने ध्यान से कान लगा कर सुना। पहले तो केवल हवा की झाड़ियों से टकराने की आवाज सुनाई देती रही। परन्तु फिर कानों पर जोर देने से ऐसी आवाज सुनाई देने लगी जैसे दूर किसी मंदिर में कोई भगत पूजा की घंटी बजा रहा हो।

मैंने उत्तर दिया—ऐसा मालूम होता है जैसे पास के किसी मन्दिर में कोई आदमी भगवान की पूजा कर रहा है। उसी की घंटी की आवाज सुनाई दे रही है।"

धीर ने आश्चर्य से मेरी ओर देखते हुए कहा—"पर क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि यहां तो आस-पास मीलों तक कोई पूजा का स्थान नहीं है। फिर यह आवाज कहां से आ रही है ?"

लालसिंह ने हाथ जोड़ कर धीर की ओर देखते हुए कहा—"मालिक, जो कुछ मैं कहूंगा उस पर आप लोगों को विश्वास नहीं होगा। परन्तु आप लोगों से इतनी बिनती करता हूँ कि थोड़ी देर तक जैसा मैं कहता हूँ, उसी तरह काम कीजिये। यदि मेरा विचार सही है तो यह एक बड़ी भयानक चीज है।"

कुछ आश्चर्य और कौतूहल से हमने सिर हिला कर लालसिंह ने पता नही क्या पढ़ते हुए रेत के ऊपर दो स्वातिक के चिन्ह बनाये और हम लोगों को उनके ऊपर खड़ा करके चारों ओर हाथ की लाठी से एक घेरा खींच दिया। इसके बाद बायें

हाथ में एक मुट्ठी रेत और दाहिने में अपनी लाठी लेकर सीधा खड़ा होकर आसमान की ओर देखने लगा।

हम लोग बड़े गौर से उसके कामों को देख रहे थे। थोड़ी देर बाद ही उसने ऊपर देखते हुए कहा—"आ जा ! आ, मैं तुझे बुलाता हूँ। नीचे आ जा ?

अभी तक हम उसकी हरकतों को केवल एक मजाक समझ रहे थे। परन्तु धीरे-धीरे घंटी की आवाज पास आने लगी। बड़े आश्चर्य के साथ हमने देखा कि कच्ची मिट्टी का एक घड़ा ऊपर से नीचे आ रहा है !

विज्ञान के आधुनिक युग में भी बिना सहारे के इस प्रकार घड़े को उड़ता देख कर मेरे शरीर से पसीना छूटने लगा। जब घड़ा और पास आया, तो धीमे किंतु साफ शब्दों में उसमें से एक आवाज़ निरन्तर निकलती सुनाई देने लगी--

'बदला ! बदला ! ठाकुर निरंजन सिंह से बदला !'

निरंजन सिंह का नाम सुन कर मैं चौंक पड़ा। यह धीर के पिता का नाम था हृदय थाम कर आगे की घटना को देखने लगा।

लालसिंह के हाथ के पास पहुँच कर घड़ा रुक गया। लालसिंह ने हाथ की रेत धीरे-धीरे भूमि पर डाल दी। घड़ा भी एक झटके के साथ रेत पर जा लगा। उत्सुकता के साथ मैंने घड़े में झांक कर देखा। उसके अन्दर कुछ जंगली फूल और जड़ी-बूटियाँ रखी हुई थीं। फूलों के ऊपर एक छोटे से आकार के नर-कपाल में दीया जल रहा था। कपाल के पास में ही कुछ पंख और एक चाकू रखा हुआ था। रह-रह कर दीये की बत्ती कांपती थी। उसी समय कपाल के मुख से 'बदला ! बदला !' की आवाज निकलती थी। अपनी आंखों से जादू की ऐसी अनोखी करामात देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। अगर इस समय मैं अकेला होता तो शायद भय के कारण मूर्छित हो जाता।

घड़े के नीचे टिकते ही लालसिंह ने अपनी लाठी जमीन पर रख दी और दाहिने हाथ से अन्दर रखे चाकू को उठा लिया। चाकू उठाते ही घंटी की आवाज और बदला ! बदला !' की आवाज़ दोनों बन्द हो गयी। उस चाकू को तीन बार घड़े के चारों ओर घुमा कर लालसिंह ने पूछा—"तुझे किसने भेजा है ?"

उत्तर में घड़े की आवाज ने उसी आदमी का नाम बताया जिसने रामसिंह की मृत्यु के लिए जादू किया था।

धीरसिंह ने मेरी ओर देखते हुए कहा--"रामसिंह के मुकदमे में मेरे पिताजी ने बहुत सहायता की थी। शायद यह उसी का बदला लेने के लिए किया जा रहा है। परन्तु समझ में नहीं आता कि एक वर्ष बाद क्यों शत्रुता निकालने का अवसर मिला है ?"

"मारण मन्त्र वर्ष में सिर्फ एक बार केवल शरद पूर्णिमा की रात को, चांद निकलने पर जगाया जाता है और आज वही दिन है।" लालसिंह ने उत्तर दिया।

इसके बाद उसी चाकू से अपनी छोटी उंगली को जरा सा काट कर, दीये के तेल में कुछ बूंदें खून की टपका कर उसने चाकू उसी घड़े में रख दिया। चाकू के रखते ही घड़ा जोर से हिला और फिर घंटी बजने लगी। घंटी की आवाज के साथ वह धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। ऊपर उठने के बाद उसमें से—'बदला ! बदला के स्थान पर—'खून ! खून ! की आवाजें आने लगीं। थोड़ी देर बाद वह हमारी नजरों से गायब हो गया।

घड़े के गायब होते ही ऐसा मालूम हुआ मानों हम होश में आ गये हों। अब तक का सारा दृश्य ऐसा मालूम होने लगा जैसे कोई सपना देखा हो। शिकार का विचार वहीं छोड़ कर हम घर लौट आये।

दूसरे दिन हमने पता लगाया तो मालूम पड़ा कि जिस आदमी ने घड़ा चलवाया था, रात को अचानक उसकी मौत हो गयी। उसी दिन शाम को लालसिंह भी नौकरी छोड़ कर चला गया। मैंने धीर से पूछा तो मालूम पड़ा कि वह रामसिंह का ही बड़ा भाई था।

मुझे लगा कि शायद उस दिन की घटना का कुछ आभास लालसिंह को पहले से हो गया था और अपने भाई की मौत का बदला लेने के लिए ही वह धीर के यहां नौकर हुआ था। आज इस घटना को काफ़ी दिन बीत गये हैं परन्तु मैं इस बात का निर्णय नहीं कर पाया कि वह जादू था या मेस्मरिज्म का तमाशा !

सत्यवती मल्लिक

वंशी और चिट्ठी

●

अखिल विश्व के हृदय को मानो विदीर्ण करता हुआ वंशी का आकुल स्वर जाने कहां से फूट पड़ता है। तब मेरे सारे काम-काज, क़लम-दावात, बात-चीत, विचार-चिंतन—सभी एक साथ थम जाते हैं।

नीरव उदास दोपहरी के समय या रात्रि के दूसरे प्रहर में, प्राय: पिछवाड़े होटल के रसोई घर के आंगन से, कभी सामने के झुरमुट में से छिपे-छिपे, वह विकल स्वर दूर-दूर तक फैलता चला जाता है।

पहाड़ों के निर्जन वन-प्रान्त में, ऐसे व्यथित सुर प्राय: सुने जाते हैं, जो मानो उनके एकाकीपन को चीर इधर-उधर टकरा कर, उपत्यकाओं में गूंज उठते हैं।

उस अदृश्य विकल सुर के स्रोत को बहुत चेष्टा करने पर भी देख नहीं सकी।

\+ \+ \+

"किसी की चिट्ठी खोल कर पढ़ना पाप है।" पर नया डाकिया जो भी हिन्दी के पते की चिट्ठी हो, भूल से यहीं उलट जाता है। पता भी तो पहाड़ी पगडंडी की भांति ऊँचा-नीचा ऐसा है, तभी तो शायद समतल निवासी डाकिया नहीं बूझ सका। वह यह भी तो नहीं जानता कि ऐसे हस्ताक्षरों से कौतूहल कितना बढ़ जाता है।

टूटे-फूटे अक्षरों में इधर-उधर की कई बातों के बाद लिखा है, "तुम्हारी घर वाली काम नहीं करती, कहती है मेरा घरवाला आयेगा तो करूंगी।"

कुछ बातें आगे की जोड़-जाड़ कर पढ़ी जा सकती हैं–पर बस! चिट्ठी मैंने वहीं रख दी है, आंखों के आगे दूर-दिगंचल में फैले ऊंचे-नीचे छल-छल, हरे-भरे, पीले धान के खेतों की निराई-कटाई में श्रम से क्लांत थकित युवती–साकार घूम रही है। सांझ हो आती है, रात बीत जाती है, दिन निकल आता है, पर उसके नेत्र नहीं थमते, पलकें नहीं झुकतीं, वास्तव में ही किसी काम में उसका जी नहीं लगता।

चिट्ठी पर इधर का ही पूरा पता न हो सो नहीं, प्रेषक का नाम-धाम, गांव-पता भी नहीं कि लौटा सकूं।

\+ \+ \+

किन्तु वंशी का इस चिट्ठी से क्या सम्बन्ध है ? मेरे मन ने यह कैसी विचित्र कड़ी जोड़ ली है ?

हां ! फटे चिथड़ों में, इधर-उधर बेबसी से घूमती हुई, उद्भ्रांत सूरतों को देखती हूँ तब उन पहाड़ी गानों की स्मृति रह-रह कर हो आती है, जो प्राय: अनायास ही घाटियों में गूंज उठते हैं।

जितनी बेकली वंशी के स्वर में है, उससे कहीं अधिक इन पंक्तियों में है—

"वह काम नहीं करती ! किसी काम में उसका जी नहीं लगता—घर वाला आएगा तो करेगी !"

जान पड़ता है लिखने वाला किसी का बड़ा भाई है, आगे लिखता है—"इसमें तुम्हारा ही दोष है ! न आए, न चिट्ठी ही भेजी, सम्भालो !"

+ + +

पर कोई नहीं जानता, चिट्ठी उसे नहीं मिली, वह उन्मुक्त, लोक-लाजहीन सन्देश, निर्दिष्ट पात्र के हृदय तक न पहुँचा, किसी पढ़े-लिखे उद्धत के साहित्य-भण्डार में ही आकर बन्द पड़ा है।

बंशी बजाते-बजाते, उसे घर जाने का मानो मोह नहीं रहा—सोचता होगा—"दो पंक्तियां ही लिखवा कर डाल देती···" इतना भी न कर सकी तो वह क्यों जाए ? कौन सा उसके बस में है, पराधीन है, हाथ-पैर बंधे हैं ! वह राह-राह घूमेगा, झुरमुटों में छिप-छिप कर ही हृदय के उन्माद को वंशी द्वारा व्यक्त करेगा।

+ + +

पर हाय रे ! कौन जाकर उसे कहे—चिट्ठी आई है, आई है, सत्य ही आई है और वास्तव में लिखा है—"वह काम नहीं करेगी—जब तक वह नहीं आएगा—नहीं करेगी।"

इन वंशी बजाने वालों में कौन भाग्यशाली है, जिसकी पर्वतवासिनी अधीर नेत्रों से उसकी प्रतीक्षा कर रही है। कौन वह बन्दी विरही-पक्ष है ? अटपटी अलकें क्लांत, भ्रांत मुद्रा, धान के खेतों में ठिठक कर एक टक ताकते हुए प्राण जिसके लिए विकल हैं—समझ में नहीं आता किन कंपित हाथों में चिट्ठी सौंपी जाए और कहां सन्देश, या उत्तर दिया जाए !

●

रजनी पनिकर

भगवान जल गया

●

पूर्व में सूरज की लाली से नहीं वरन् उत्तर में मन्दिर में जलने से आकाश लाल हो उठा था। लपटें लपक-लपक कर पास के वर्षों पुराने पीपल के पेड़ को छू रही थीं। मन्दिर के बाहर बड़ी भीड़ हो रही थी। लोग तरह तरह की बातें कर रहे थे। गांव के इतिहास में यह पहली घटना थी। गांव वालों ने न कभी ऐसा सुना था, न जाना था। लेखराज को एक दो आदमियों ने पकड़ रखा था। वह रह-रहकर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करता था, परन्तु उसका कमज़ोर क्षीण शरीर उसी तरह विवश होकर रह जाता जिस तरह पिंजरे में बन्द जानवर लोहे के जाल से टकराकर फिर पीछे हो जाता है।

'मुझे छोड़ दो, मैं इस पापी का खून कर दूंगा मैं इसका गला घोंट दूंगा।'

भीड़ में एक आवाज़ उठी—'पुजारी पापी नहीं है, तुम पापी हो। वाहे गुरु, वाहे गुरु सतनाम !"

'सब इस पुजारी की बदमाशी है, पीपल के नीचे से किसी युवक ने कहा।

एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आगे बढ़ी और सब गाँव वालों को शान्त करती हुई बोली—'यही कलयुग है, भगवान की मूरत से आग की लपटें निकल रहीं हैं। ऐसा कभी किसी ने देखा है ? ऐसा कभी किसी ने सुना है ? आजकल जो हो वही कम है।

'सब इस पुजारी की बदमाशी है।'

'नहीं उस चुड़ैल चम्पो ने मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया।'

भंगियों की एक टोली किसी कोने से बोली—'नहीं, चम्पो मीरा थी, उसे भगवान ने शरण दी।'

'छी, मीरा को बदनाम न करो। ऐसी बात जबान से निकाली तो जबान खींच लूंगा' एक और व्यक्ति बोला।

बीसियों आदमी एक साथ बोल रहे थे, किसी को कुछ सुनाई ही नहीं देता था।

लेखराज पुनः चिल्ला उठा। उसकी आवाज में दीवारों को छेद डालने वाला

क्रन्दन था। भीड़ में सभी तरह के लोग थे—पंडित, भंगी और किसान। चम्पो की मृत्यु का बदला वे अवश्य लेंगे। भगवान खुद भी लेंगे। नहीं वह स्वयं तो ले रहे थे। पत्थर की मूर्ति जल रही थी। भगवान गांव भर से रूठ गये थे। काठ की मूर्ति नहीं पत्थर की मूर्ति से लपटें निकल रही थीं। ऐसा कभी हुआ था?

लेखराज के बच्चे मां को पुकार रहे थे। पहली बार जीवन में उसने भी अनुभव किया कि वह दोषी है, चम्पो की मृत्यु में उसका भी हाथ है। चम्पो ऐसे ही मरने वालों में न थी, यह सब लेखराज के पापों का फल है। सिवाय पुजारी राघेमल के या शायद भगवान के—जो अपना रोष प्रकट कर रहे थे, जल रहे थे—कोई नहीं जानता था कि चम्पो की मृत्यु क्यों हुई, कैसे हुई। छोटा पुजारी चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—'लेखराज शराबी है, चम्पो ने आत्महत्या कर ली है। वह लेखराज के अत्याचारों से तंग थी।'

गांव के एक बूढ़े बाबा ने आगे बढ़कर कहा—'चम्पो ने आत्महत्या कर ली है तो पुजारी को कांपने की क्या आवश्यकता है? भगवान शाप दे रहे हैं, पुजारी को नहीं चम्पो को, गाँव वालों को।'

× × × ×

लेखराज के दादा-परदादा भंगी रहे होंगे। परन्तु उसके पिता तरखानी (बढ़ई-गीरी) का पेशा करते थे। उन्होंने एक आरा मोल ले रखा था। लेखराज ने भी आरे का ही काम किया था। उस इलाके में तरखान अधिकतर सिख ही थे। लेखराज के पिता को मरे भी दस वर्ष होने को आए थे। लेखराज ने पिता के सामने ही आरे पर काम करना शुरू कर दिया था। फिर भी...तरखानी पेशा के लोग उसे अच्छा न समझते थे। उनकी आँखों में लेखराज सदैव खटकता था। लेखराज के घर का दूसरे तरखान पानी भी न पीते थे। उसे उनके शादी - ब्याह में न्यौता मिलता था, परन्तु सबसे हटकर अलग बैठाया जाता था।

लेखराज गाँव वालों की आँख की और भी किरकिरी बन गया, जब वह चम्पो को ब्याह कर लाया। गठा हुआ शरीर, मंझोला कद, दो बड़ी प्रश्न भरी कजरारी आंखें, सुन्दर ढली हुई नाक, नमकीन सांवला रंग, पतले नोकदार ओठ और उन पर निमन्त्रण देता हुआ एक बड़ा-सा तिल। दूसरे तरखानों को उसी दिन लेखराज से चिढ़ हो गई। वे मन-ही-मन उससे जलने लगे। छः वर्ष बीत गए। प्रत्येक वर्ष चम्पो गर्भवती होती और एक सुन्दर स्वस्थ बच्चे को जन्म देती। वह तीन नटखट लड़कों और एक गुड़िया-सी लड़की की मां बन चुकी थी। बच्चे जनने से चम्पो के सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। वह वैसी ही सुन्दर थी जैसी लेखराज ब्याह कर लाया था। गांव वाले भी जलते थे।

लेखराज तीन-चार रुपए रोज कमाकर लाता, चम्पा बड़ी कुशलता से खर्च करती और कुछ-न कुछ बचा लेती। धीरे-धीरे लेखराज ने एक गाय मोल ले ली। जिस दिन गाय उसके घर आई, दूसरे अन्य पेशेवर तरखानों की छाती पर सांप लोट गया। उन्होंने तय किया कि इसका नाश किसी प्रकार करना ही होगा। आखिर उनकी सभा हुई और योजना बनी। धीरे-धीरे गांव के गुण्डे मेहर की मित्रता लेखराज से बढ़ने लगी। वह उसे सुरादेवी की आराधना सिखलाने लगा।

पहले लेखराज काम से सीधा घर आ जाता था, शरबत-पानी पीकर सुस्ता लेता, अपनी पूरी कमाई चम्पा के हाथ पर देता। अब वह रात बीते लौटता—शराब के नशे में चूर। चम्पा कुछ पूछती तो वह पीटने लगता, गालियां बकता। चम्पा आकाश की ओर देखती, वहाँ कोई परिवर्त्तन नहीं था। नीले आकाश में तारे उसी तरह खिले थे, जैसे पहले खिलते थे। हवाएं उसी तरह चल रही थी। पूरा गांव वैसे ही बस रहा था। खेत लहलहा रहे थे। कोल्हू के चलने की गूंज अभी तक उसी तरह आ रही थी, जैसे पहले आती थी। केवल परिवर्तन था तो लेखराज के व्यवहार में। वह जब चाहता चम्पा को पीट भी देता।

लेखराज कभी काम पर जाता, कभी न जाता। धीरे-धीरे उसके ग्राहक घटने लगे। काम कम मिलने लगा, शराब की आवश्यकता भी बढ़ने लगी। यदि चम्पा कुछ कहती तो लेखराज डांट देता, पीटने लगता। चम्पा के जीवन में यह जो तूफान आया उसने उसकी शक्ति को चूर कर दिया। उसके वश में नहीं था कि वह इसका कोई उपाय करती।

चम्पा के नटखट लड़के अब चुपचाप दुबककर एक कोने में बैठा करते। पिता को देखकर रसोई घर में छिप जाते। मां की गोद में मुंह छिपाने के लिए उसका आंचल घसीटते। चम्पा अपनी कजरारी आंखों से, जिनका तेज बहुत कम हो गया था, आंसू बहाती रहती। ऐसा भी समय था जब लोग उससे ईर्ष्या करते थे, अब वह अपनी सखी-सहेलियों से भी मुंह चुराती।

गाँव के सुनार से चम्पा दूसरे-तीसरे महीने गहने बनवाती रहती थी। अब वह आठवें-दसवें दिन कुछ-न-कुछ बेचती रहती। घर का खरच कैसे चलता! वह अब दूसरे के खेतों में मजदूरी भी करने लगी थी। मजदूरी से भी जो पैसे आते लेखराज अब शराब पीने के लिए ले लेता। कभी-कभी छीनता। यदि चम्पा मना करती तो उसे मारता।

लेखराज की अवस्था दिन-पर-दिन बिगड़ती गई। वह शराब में चूर कई-कई दिन तक घर नहीं आता था। एक-एक करके सब गहने बिक गये।

चम्पा का सलौना शरीर मुरझाता जा रहा था। मुख की श्री और कान्ति समाप्त हो चुकी थी। वह बच्चों पर बरसती और अपना सारा क्रोध उन्हीं पर निकालती। बच्चे अब उससे डरने लगे थे।

एक दिन लेखराज ने एक बच्चे की सौगन्ध खाई कि वह अब कभी शराब नहीं पियेगा। आरा बिक गया था, तो क्या वह कुल्हाड़ी से लकड़ी काटेगा। चम्पा को लगा जैसे वर्षा की हलकी-सी फुहार पड़ी हो, जैसे बादलों से घिरा आकाश निखर आया हो।

उसने जाले से भरी छत को देखा, न जाने इधर वह आलसी क्यों होती जा रही है, उसने अपने घर के जाले क्यों नहीं उतारे, धुएं से सारी छत काली हो रही थी। चम्पा की निराश आँखों में आंसू आ गए, फटी-मैली धोती के छोर से उसने आंखें पोंछ ली। वह भागी-भागी मन्दिर के द्वार तक गई। बाहर से ही उसने भगवान को प्रणाम किया। आशीर्वाद मांगा उसके पति को सुबुद्धि मिले।

दीवाली के केवल पन्द्रह दिन रह गए थे। चम्पा दुगुने उत्साह से खेत में काम करती। रात्रि को दीपक जलाकर सफेद मिट्टी से घर को लीपती। रात को फटे हुए कपड़े सीती, मरम्मत कराती। पुराने कपड़ों को जोड़ कर नए का रूप देती। चम्पा को मजदूरी अच्छी मिल जाती, क्योंकि उनके गांव को शहर से सड़क द्वारा मिलाया जा रहा था।

बड़े जतन से चम्पा ने चार आने, आठ आने, एक रुपया करके दस रुपए जमा कि ;। वह इनसे चार बच्चों को अच्छी-अच्छी मिठाइयां खिलाएगी, दूध पिलाएगी। पति ने वादा तो किया था पर उसे उस पर पक्का विश्वास नहीं था। उसने एक मिट्टी के बरतन में यह दस रुपए की इकन्नियां-दुअन्नियां सम्हाल कर रख दीं। उसे डर था कि अपने कपड़े के बक्स में पोटली बांधकर रुपए रखेगी, तो उसका पति अवश्य निकाल ले जायगा।

इस बार चम्पा ने पुत्रों को मिठाई के लिए वादा दे दिया था। एक ने जलेबियों की फरमाइश की थी, दूसरे ने लड्डुओं की, लड़की और छोटे लड़के को बरफी बहुत पसन्द थी।

लेखराज भी इधर मेहर के चंगुल से निकलकर कुछ मजदूरी करने लगा था। दिन को जितनी मजदूरी करता, रात को उससे चोरी-चोरी शराब पी डालता। दीवाली से दो दिन पहले मेहर ने लेखराज को जुआ खेलने के लिए तंग करना शुरू किया। समझाया—वर्ष भर तो जुआ खेला, अब दीवाली का मौका आया है तो खेलने से आनाकानी करता है। लेखराज के पतित मन को तो सहारा चाहिए था। उसके अपने मन में भी तो खेलने की लालसा छिपी बैठी थी।

उस दिन लेखराज प्रतीक्षा करता रहा। वह काम पर नहीं गया और जब चम्पा सड़क पर मजदूरी करने चली गई तब उसने सारा घर छान डाला। बड़े लड़के ने मा को रुपये सम्हालते देख लिया था। लेखराज ने बड़े दिलासे से कहा—'मैं तुम लोगों के लिए कपड़े खरीद लाता हूं, मुझे बतलाओ तुम्हारी माँ रुपये कहां रख गई है।' बच्चे लेखराज से बहुत बुरी तरह डरते थे। बड़े लड़के को लगा कि अगर नहीं बताऊंगा तो बापू मुझे मार डालेगा। उसने सोचा––सच बोलने में क्या दोष है और टूटी-सी मिट्टी की एक हंडिया एक कोने में से निकाली। लेखराज के मन में क्षणभर को भी दुविधा नही हुई, वह उठा और रुपयों पर झपटा। उसने एक बार बच्चों की ओर देखा, फिर उसी तरह भागा जैसे गाय रस्सा छुड़ाकर भागती है।

उस रात चम्पा देर से घर लौटी, अपनी उस दिन की कमाई में से आटा पिसवा कर लेती आई। रोज रात को सोने से पहले वह हंडिया में एक बार रुपए गिन लिया करती थी। आज उसने ऐसा नहीं किया। जल्दी-जल्दी बच्चों को खाना देकर खाट पर लेट गई। एक बार उसे ख्याल आया, लेखराज घर पर नहीं है, पर दूसरे ही क्षण यह ख़याल जाता रहा, क्योंकि लेखराज तो कभी घर पर होता ही नहीं। कल त्योहार है। चम्पा की आंखों के सामने अपने ब्याह की पहली दीवाली घूम गई। तब लेखराज ने नया जोड़ा ही नहीं बनवाकर दिया था, बल्कि नए कंगन भी लेकर दिए थे। चांदी के सोलह तोले के कंगन जिन्हें बेचकर लेखराज ने शराब पी डाली थी

दूसरे दिन सुबह उठते ही बच्चों ने चम्पा का घेर लिया। 'मा, मुझे बरफी चाहिये, मां मुझे लड्डू चाहिए।'

चम्पा के मन पें स्फूर्ति थी, चलो अच्छा हुआ उसने कुछ पैसे तो बचा रखे हैं। आज का दिन तो अच्छा निकल जायेगा। जल्दी से हाथ-मुंह धोकर चम्पा ने हांडी खोली। पैसे नहीं थे। हांडी का मुंह खुला पड़ा था। चम्पा के पाँव के नीचे से धरती खिसक गई। आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। हृदय में एक हूक-सी उठी और तीर-सा लगा। चम्पा धरती पर बैठ गई।

'माँ, क्या हुआ है?'

चम्पा चुप रही।

'मां, बरफी मंगाओ ना!'

'रुपए किसने चुराए हैं', चम्पा की आवाज़ कठोर थी।

बड़े लड़के ने आंख मलते हुए कहा—'बापू ने चुराए हैं।'

चम्पा की आंखों में खून उतर आया। उसने दोनों हाथों से तीनों बच्चों को पीटना शुरू कर दिया। पड़ोसिन ने आकर कहा—'आज क्यों मार रही हो? सुबह सुबह त्योहार का दिन, नहलाओ-खिलाओ। तुम मा हो या डायन?'

पड़ोसिन अपनी ओर से आदेश देकर चली गई। चम्पा ने दर्द भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा। आकाश स्वच्छ था—नीला-नीला और श्वेत। वायु में जरा सी ठंडक थी। चम्पा ने बच्चों को मारा तो जरूर, परन्तु उसका हृदय हाहाकार कर उठा। सचमुच वह मा नहीं डायन है। चम्पा को इतना क्षोभ हुआ कि उसने चूल्हा भी नहीं जलाया। पड़ोसिन ने थोड़ी-सी रोटी और चाय बच्चों को लाकर दे दी। चम्पा भूखे पेट रही। दिन भर हलवाई मिठाइयां बनाते रहे। पड़ोस में बच्चे पटाखे छोड़ते रहे। चम्पा के कान में वे बम-से छेद करते रहे। उसका हृदय रो देता। वह समझी नहीं क्या करे, क्या न करे।

लेखराज घर नहीं आया। वह अवश्य ही कहीं शराब पीकर पड़ा होगा! सब पति अपने घर थे। सब पिता अपने बच्चों को दुलार रहे थे। केवल लेखराज ही ऐसा पति और पिता था जो घर से दूर था, बच्चों से दूर था।

चम्पा के बच्चे दिन भर पड़ोसियों के बच्चों का पटाखा सुनते रहे। बीच बीच में आकर मा को तंग कर जाते। चम्पा उन्हें खाने को दौड़ती। उसका इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है। खून-पसीने से कमाया हुआ थोड़ा-सा धन—कौड़ी-कौड़ी—पति ले गया, अपने जिगर के टुकड़ों से छीनकर ले गया।

संध्या होते ही बच्चे घर आ गए।

'मा, तू इतने दिन मिठाई का वादा करती रही। मिठाई कहाँ गई?'

'मा, बाहर दीप जल रहे हैं!'

'मा, तू उत्तर क्यों नहीं देती?'

चम्पा क्या उत्तर देती! काश, उसे पता होता कि लेखराज ऐसा करेगा। वह पन्द्रह दिन पहले ही मिठाई लाकर घर में रख लेती, आसी ही बच्चों को खिला देती।

पैसा इतना महत्त्वपूर्ण है। जीवन के हर सवाल का जवाब पैसा है। पैसे के बिना कुछ नहीं हो सकता है। चम्पा की आंखों में आंसुओं की अविरल धारा बहने लगी। मंदिर में आरती हो रही थी। घंटी बजने का स्वर चम्पा के घर तक आ रहा था। वह एकाएक उठी, भगवान के घर में आरती हो रही है। मनों चढ़ावा चढ़ा होगा। प्रसाद मैं भी लाऊंगी, उसी से बच्चों को बहला दूंगी।

मन्दिर को विशेष रूप से सजाया गया था। वह दीपों से जगमगा रहा था। गाँव-गाँव के सब समर्थ व्यक्ति चढ़ावा चढ़ाने आए थे। चम्पा भी मन्दिर की सीढ़ियों के पास हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। आरती समाप्त हो गई, चरणामृत बंट गया, प्रसाद बंटने लगा। चम्पा दुबककर कोने में घंटा भर खड़ी रही। पुजारी राधेमल ने देखा कि भीड़ छंट गई है तब वह भी मन्दिर के भीतर चले आए।

चम्पा साहस करके आगे बढ़ी—"दीवाली मुबारिक हो, पंडित जी; जरासा प्रसाद मुझ गरीब को भी दे दीजिये।"

पंडितजी की भौंहे चढ़ गईं। इस भंगिन की इतनी मजाल ! जब नवेली थी, सुन्दर थी, पुजारी राधेमल ने उससे कहा था, पांच रुपया महीना और रोटी दूंगा, मन्दिर के बाहर झाड़ू लगा जाया कर। तब ऐंठ दिखलाई थी, दस आदमियों के सामने अंगूठा दिखलाकर चली गई थी। आज पंडित जी भी बदला ले सकते हैं। आखिर भंगिन जो ठहरी !

पुजारी राधेमल ने देखा—चम्पा का चम्पक-सा रंग काला पड़ गया था। वह कजरारी आंखें भीतर ढल गई थीं। कपड़े फटे हुए थे। बाल रूखे और बिखरे हुए थे। पंडित राधेमल का मन घृणा से भर उठा। तो यह है चम्पा उस शराबी लेखराज की पत्नी ! कड़क कर बोले—"तूने भीतर आने की कैसे हिम्मत की ?"

"बड़ा उपकार होगा, महाराज ! प्रसाद दे दीजिए। मेरे बच्चे भूखों मर रहे हैं।"

"यह कोई अनाथालय नहीं, चल दूर हट।"

चम्पा ने बड़ी बिनती की परन्तु उसका प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में वह निराश होकर घर लौट गई। एक दीपक उसकी पड़ोसिन उसके घर के सामने रख गई थी। चम्पा सोते हुए बच्चों के पास धरती पर बैठ गई। दीवाली की रात को बच्चे भूखे सो गए। ओफ ! चम्पा का इतना परिश्रम व्यर्थ गया ! जंगल से लकड़ी चुनना, खेत खेत में दूसरों की फसल की कटाई करना, सड़क पर पत्थर तोड़कर अपना हाथ खून से रंग लेना ! ओफ, सब व्यर्थ।

रात गहरी होती जा रही थी। पर चम्पा की आंखों से जैसे कोई नींद छीन ले गया था। उसकी आंखें खुली थीं। एक बार उसका मन हुआ, किसी शराब की दूकान में पड़े लेखराज को कान पकड़ कर खींच लाए, पर...

धीरे-धीरे गांव निद्रा देवी की गोद में खो गया। चम्पा सोचती रही, सोचती रही। उसका मन रह रह कर कहता, मैं भी तो इंसान हूँ। मुझे भी तो जिन्दा रहने, हंसने-खेलने का अधिकार है ! एक बार गांव में कोई बूढ़े नेता लैक्चर देने आए थे, उन्होंने भी कहा था—"हर एक व्यक्ति को जीने का अधिकार है।" हां, हर व्यक्ति को—चम्पा को भी। उसके बच्चों को भी। भगवान की मूर्ति के आगे इतना चढ़ावा चढ़ा है। सारा पुजारी के घर जायेगा। ओफ, यह कैसा अन्याय है ! चम्पा इस पाप को समाप्त कर देगी। वह अपने बच्चों के लिए जरूर मिठाई लाएगी।

चम्पा की टाँगों में न जाने कहाँ से शक्ति आ गई। वह भागी और मन्दिर की सीढ़ियों पर पहुँच कर ही उसने सांस लिया। उस समय रात्रि का चौथा पहर

था। काई भी व्यक्ति मन्दिर के आसपास नहीं था। चम्पा निधड़क मन्दिर के भीतर चली गई। उसके मन की साध थी दूसरे लोगों की तरह वह भी भगवान के चरणों में प्रणाम करे। उसने वैसा ही किया। फिर जल्दी से एक थाली खाली करके उसने उसमें सब तरह की थोड़ी-थोड़ी मिठाई भर ली। स्फूर्ति से उसके हाथ चलने लगे। दिन भर की भूखी-प्यासी थी। फिर भी आज न जाने कैसी शक्ति उसमें आ गई थी।

दो-तीन दीप उठाकर चम्पा ने थाली में रख लिए। फिर थाली उठाकर वह कांपती टांगों से आगे बढ़ी तो पानी के एक लोटे से टकराई। वह आवाज़ करता हुआ पक्के फरश पर गिर पड़ा। पुजारी राधेमल न जाने कहां से आ गया।

"कौन ? तू चम्पा ! तेरी इतनी मजाल। शराबी की जोरू ! जोरू, भंगिन। तू मन्दर में कैसे आई ?"

राधेमल ने धक्का दिया। चम्पा के हाथ से थाली झनझनाकर दूर गिर गई। एक दीप भगवान की मूर्ति पर गिरा। चम्पा धक्का न सम्हाल सकी, वह भगवान के चरणों में गिर पड़ी। भगवान जाने, मानसिक आघात से वह मर गई या अचेत हो मई।

एकाएक भगवान की मूर्ति में से आग की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। राधेमल स्तब्ध वहां खड़ा था। खड़ा रह गया। वह चम्पा को भी बाहर न ला सका।

छोटा पुजारी जाग आया, धीरे-धीरे पौ फटने लगी और मन्दिर में भीड़ जमा होने लगी। राधेमल वहां खड़ा था।

गांव वाले उस पर लांछन लगा रहे थे। भगवान जल रहे थे। चम्पा जल रही थी। मन्दिर जल रहा था। मानव मूक खड़ा था। अपनी निष्ठुरता का दन्ड उसे इससे अधिक क्या मिलता।

निर्मला माथुर

सिंदूर की डिबिया

●

संध्या का समय था। सावन का महीना। रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी। आकाश काले बादलों से खेल रहा था। रागिनी ने देखा—एक थका पथिक, पानी से लथपथ, जो उसी की तरफ़ देख रहा था, ठिठरा....कांपता-सा ! रागिनी को उसकी इस मूर्ति पर दया आगई। उसने अपने नौकर को भेजकर पुछवाया कि वह क्या चाहता है ? पथिक ने कहा—'मैं बीमार हूं, दो दिन ठहरना...' यह सुन रागिनी ने अपनी माँ से कहा—'मां, एक पथिक दरवाज़े पर खड़ा है, काँप रहा है। वह दो दिन विश्राम करना चाहता है। तुम कहो तो मैं उसे नीचे के खाली घर में ठहरने को कह दूं?'

रागिनी की माँ रुग्ण थी। इसलिये उन्होंने पथिक पर दया करना उचित ही समझा।

\+ \+ \+

रागिनी का हृदय पवन-सा स्वच्छ था, सरिता-सा निर्मल, फूल-सा कोमल, तितली-सा चपल। एक अरुण मधुर मुस्कान सदा उसके होठों पर खेलती रहती थी। दया की वह प्रतिमा थी। यद्यपि वह अब शैशव छोड़ युवावस्था में आ रही थी, पर जैसे उसे पता ही न था। वह अधखिली कली अब भी बच्ची ही थी। ज़रा-सी बात पर मचल पड़ती, और फिर स्नेहमयी बन विश्व को जीवन-दान देने को तत्पर हो जाती थी। पड़ौस में उसका सबसे बहिन-भाई का नाता था। कोई बीमार हो, बच्चा या बूढ़ा, रागिनी अवश्य उसकी सेवा करने जाती थी। माँ कहती—'मेरी रागिनी अन्नपूर्णा हैं।' पिता हंसकर कहते—'बावली है।' इसी भाँति रागिनी के दिन आनन्द से व्यतीत हो रहे थे। दयाशील रागिनी ने एक सप्ताह पथिक की दवा-दारू, सेवा-टहल करके उसे मृत्यु के मुंह से बचा लिया। पथिक उसके घर का बन्धु बन गया। पथिक का नाम था सतीश। सतीश पढ़ा लिखा, बी० ए० था पर साथ ही दुर्दिन का मारा भी। माँ का स्नेह बचपन में ही छूट गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। विमाता की गृह-कलह से सतीश ने घर त्याग दिया।

सतीश घर का अमीर था। पर इससे क्या ? सब कुछ संसार में होते हुए भी

उसका कुछ नहीं ! रागिनी ने उसके प्राण बचाए. यह वह आजीवन नहीं भूल सकता। पर सतीश भी तो इस लोक का ही प्राणी है, और जवान भी। रागिनी का सच्चा स्नेह पाकर अपने को भूल बैठा। वह रागिनी का पवित्र प्रेम पाकर उसे प्रेयसि की दृष्टि से देखने लगा। रागिनी को इसका पता न था, वह हवा की भाँति निर्दोष थी।

+ + +

रागिनी को सतीश ने अपना इतना ही परिचय दिया था कि वह समाज का ठुकराया हुआ है, राह का मारा हुआ है, गरीब है। भोली रागिनी ने कभी इससे अधिक परिचय के लिए हठ भी नहीं की। उसने अपने पिता से कहकर अपने छोटे भाई प्रबोध के लिये दस रुपए मासिक पर सतीश को पढ़ान के लिये नियुक्त करा दिया। प्रबोध आठवीं श्रेणी में था। सतीश उसे एक घण्टा रोज पढ़ा जाता। थोड़े दिनों बाद सतीश ने एक घर अलग ले लिया। उसे दो ट्यूशनें और भी मिल गईं। दिन बीत रहे थे, बीतते गये।

+ + +

उस दिन रविवार था। सतीश आया। प्रबोध बाज़ार गया हुआ था। पिता ऑफिस में थे, माँ रसोई में। सतीश बहुत कुछ सोच कर आया है कि आज वह रागिनी से मन की सब कुछ कह देगा।

रागिन ने देखा--सतीश का चेहरा मुर्झाया हुआ है। उसने कहा—'सतीश जी ! तबीयत कैसी है ?'

सतीश यह सुन कर ठिठक-सा गया। बोला-"रागिनी, आज मैं तुमसे एक बात कहने आया हूं। मैंने जिस दिन से तुम्हें देखा उसी दिन ऐसा लगा जैसे अपने जीवन का कुछ खो बैठा हूं। तुम मेरे भविष्य के स्वप्नों की रानी हो। मैं अपने भग्न-हृदय मन्दिर में तुम्हारी मूर्ति बैठाना चाहता हूं। मैं तुम से प्रेम...! बोलो, तुम्हें स्वीकार है ?'

रागिनी को स्वप्न में भी सतीश से ऐसी आशा न थी। अभी तक वह प्रेम शब्द का पूरा अर्थ भी नहीं समझती थी, अपने भावुक अल्हड़पन में उसने दया करनी ही सीखी थी। सतीश की बात सुनकर स्तब्ध-सी खड़ी रह गई। ऐसा लगा जैसे उसके हृदय को किसी ने जबरदस्ती कुचल दिया हो, उसकी पवित्र भावनाओं को कोई नौच रहा हो। वह अवरुद्ध कण्ठ से बोली—'मैंने तुम पर दया की, उसका यह पुरस्कार ! यदि मैं यह जानती तो कभी भी तुम्हें आश्रय न देती। मैंने तुम्हें अपना भैया समझा; पर तुम्हारा

हृदय इतना अधम है, यह मैं न समझ पाई। चले जाओ! अब कभी मुझ से न मिलना।' वह क्रोध से लाल-पीली हो गई।

सतीश अपने अपमानित और आहत हृदय को लेकर चला गया। उसके सारे स्वप्न हवा हो गये।

+ + + +

दो वर्ष हो गये।

इस बीच में रागिनी और सतीश नहीं मिले।

+ + + +

प्रातःकाल की ठण्डी सुनहरी हवा धीरे-धीरे बह रही थी। भगवान दिवाकर ने रात्रि के विश्राम के पश्चात् अपने अरुण नेत्र खोले थे। पक्षीगण प्रभात का स्वागत करने के लिये गान गा रहे थे। विश्व के रंगमंच पर ठण्डी वायु के चलते ही प्रकृति-नटी का का नया नाटक खेला जा रहा था। पुष्प हंस रहे थे। शर्मीली कलियां मुस्का रही थीं। उसी समय सतीश ने सुमन के घर में एक आवश्यक कार्य से प्रवेश किया। दोनों एक ही दफ्तर में नौकर थे।

सुमन रागिनी का पति था।

रागिनी-पति के लिये चाय ला रही थी। अचानक रागिनी को देखकर सतीश के मुंह से निकल पड़ा—'रागिनी, तुम यहाँ ?'

रागिनी ने उसे देखकर कहा—'सतीश, अब मेरा विवाह हो गया है।' यह कह उसने अपनी सिन्दूर भरी माँग सतीश के आगे करदी।

सतीश जिस रागिनी को हृदय से चाहता था उसे दूसरे की देखकर, निर्जीव-सा स्तब्ध रह गया।

सतीश का भाव समझ कर रागिनी ने कहा-'सतीश मैंने कभी भी तुम्हें तुम्हारी दृष्टि से नहीं देखा। मैं तो तुम्हें भाई समझ कर स्नेह करती रही। पर तुमने यह क्या सोच लिया ?'

सतीश चुप था। रागिनी के अश्रु टपकते देख वह बोला—'रागिनी क्षमा करो! वह सब मेरी भूल थी। तुम्हें स्वभावतः मुस्कराते देख कर, मैंने अपने मन से अर्थ लगा लिया। अब क्षमा करो, वह एक उन्माद था। रागिनी! मैं जान देकर भी तुम्हारे इस सिन्दूर की लाज रक्खूंगा। आज से तुम मेरी स्नेहमयी भाभी हो।' और सतीश ने यह कहते-कहते अपनी स्नेहमयी भाभी के पाँव पकड़ लिये।

+ + +

उस दिन रविवार था। प्रातःकाल की सुखद वायु जन-मन को हर्षित कर रही थी।

सतीश आया। बरामदे में ही उसे रागिनी के पति सुमन अखबार पढ़ते हुए मिले। बोले--'भाई सतीश? तुम तो दिखाई ही नहीं पड़ते?'

सतीश-'जी, आजकल बहुत काम रहता है।' साथ ही पूछा—'भाभी कहाँ है?'

सुमन ने कहा—'अन्दर है।'

सतीश अन्दर चला गया। देखा—भाभी रसोई घर में बैठी भोजन बनाने में लगी थीं।

सतीश ने कहा—'भाभी तुम्हारे लिये एक चीज लाया हूं।'

रागिनी ने उत्सुकता से पूछा--'क्या लाये हो अपनी भाभी के लिए?'

सतीश ने अपनी जेब में से एक डिबिया निकाल कर कहा—'आज बाजार गया था। सोचा, भाभी के लिये यह डिबिया लेता चलूं।'

भाभी ने खोल कर देखा, उसमें सिन्दूर था। रागिनी के सिन्दूर लगे मुख चन्द्र पर गुलाबी लाली दौड़ गई, और सिन्दूर की डिबिया ने सतीश को, पवित्र स्नेह आचार के कर्तव्य में बाँध लिया।

देवव्रती शर्मा

शेफाली

●

राधू अकेला चार आदमियों के लिये काफी है। मनोहर पर जब लाठियां पड़ने वाली थीं जो उसे बिछा देतीं—वे लाठियाँ राधू का लम्बा लट्ठ सह गया और मनोहर की जान बच गई। किवाड़ के पीछे से शेफाली ने सब देखा। राधू की वीरता देख कर उस की आंखों से टपटप करके गंगा जमुना धारा प्रवाह में बहने लगी थी। ऐसी बेसुध सी हो गई थी शेफाली कि उसे उसके सामने घूंघट की भी परवाह नहीं रही और गद्गद् भाव से प्लावित होकर एकटक जब राधू को देखती ही रही तो स्वयं ही राधू की आंखें झुक गई थीं।

शेफाली की बड़ी २ दोनों आंखें राधू के स्मृति पटल पर कुछ इस प्रकार अंकित हुईं कि दिन रात वह उन्हीं के साथ आंख मिचौली सी करने लगा। बार-बार शेफाली भी बहती आँखें लिये खड़ी दिखाई देती थी। साहस उस का कभी नहीं हो सका कि वह आंख उठा कर देख सके शेफाली को अथवा दो बात ही कर सके। उस दिन के बाद कई बार क्या, प्रायः रोज ही वह मनोहर के घर जाने लगा। समय—असमय वह पहुँच जाता मनोहर मिलता तो उससे बातें करता घंटों बैठा रहता और आँखें उसको खोजती रहतीं, शेफाली को मनोहर नहीं मिलता तो उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ा ही रहता। यह जान कर भी कि मनोहर घर में नहीं है, चला नहीं जाता। खड़ा खड़ा इसी बात की प्रतीक्षा करता रहता की उत्तर देने शेफाली आयेगी।

शुरू शुरू में तो शेफाली उसके सामने से भागती थी। किन्तु जब मनोहर और राधू की घनिष्ठता बढ़ती रही और राधू पैसे के बल पर मनोहर की गृहस्थी का एक सदस्य हो गया तो एक दिन मनोहर ने कहा—

"अरे शेफाली! राधू दादा तो अपने हितैषी हैं। निजी आदमी हैं। इन से परदा क्यों करती है तू?"

राधू को तो मानो मन की मुराद मिल गयी। किन्तु शेफाली की शर्म से उस की मुराद तुरन्त पूरी नहीं हो सकी। रोज रोज ही ऐसा प्रसंग उठने लगा जब मनोहर इस बात के लिये जिद पकड़ता कि शेफाली राधू से परदा करना छोड़ दे किन्तु शेफाली टाल जाती। शर्म तो उस से उठाये न उठती। राधू की अधीरता बढ़ने लगी,

और खाने पीने से लेकर ओढने बिछाने तक की सारी जिम्मेदारी राधू के खर्च से चलती रही तथा वह मुग्ध होता रहा शेफाली पर। उसकी सारी साधना थी शेफाली और शेफाली हो गई थी कृष्ण पक्ष का चाँद—दिखाई देने वाला नहीं। शेफाली से नाराज रहने लगा मनोहर किन्तु राधू कहता कि पागल है, मनोहर। अरे बहू जेठ से घूंघट न निकाले तो क्या उघाड़ी फिरा करे। कैसा पागल है मनोहर, शेफाली को राधू की ऐसी बातें बहुत पसंस आतीं और वह धीरे धीरे राधू को देवता के समान मन ही मन श्रद्धा करने लगी। मुसीबत के समय काम आने वाला निस्वार्थी व्यक्ति देवता दिखाई देने लगता है। उस देवता के प्रति कृतज्ञ होना मानव स्वभाव है। स्त्री तो पुरुष से अधिक भावनामय होती है। किसी दिन वह नही आता तो शेफाली अशांत हो जाती। वह कई बार मनोहर से पूछती रहती—"राधू दादा नहीं आये।"

और राधू दादा जब आ जाते तो मानो रीता घट, शेफाली का भर जाता। एक दिन मनोहर राधू से कह रहा था—"राधू दादा, यूं बैठे २ कैसे काम चलेगा ? कब तक तुम्हारी दया पर जीता रहूँगा ?"

"मेरी दया पर ?" उचक कर राधू ने पूछा।

"और नहीं तो क्या ? बिना कुछ काम धंधा किये कैसे चलेगी गाड़ी। राधू ?"

"तो क्या सोचते हो ?"

"सोचता हूँ कि परदेश चला जाऊं नौकरी करना ही एक रास्ता है।"

राधू ने मनोहर की बात सुनी। कई बार सुनी, हर बार उसको निराश करता रहा। किन्तु एक दिन राधू ने कह दिया—"मनोहर तुम ठीक सोचते हो। न हो, इसी में कुछ भलाई हो। नौकरी नहीं मिलेगी तो घूम फिर कर लौट आना। मेरे एक जान पहिचान के बहुत बड़े सेठ रहते हैं, कलकत्ते में उनके पास जाकर मेरा नाम लेना तुम्हें वे फौरन रख लेगे।

मनोहर के जाने में आधे घण्टे की देर थी। शेफाली ने कहा—"देवता मेरे, दीपावली के दीपक सजाने से पहले आजाओगे न ?"

मनोहर ने शेफाली को छाती से लगा बाहों में कस लिया और बोला—"तुम बिल्कुल चिन्ता मत करो शेफाली, ठीक दिवाली के दिन मुझे तुम यहीं, इसी तरह पाओगी।"

मनोहर चला गया। दिवाली आने में एक महीना था। तीस दिन बाद लौट आने के हजार बार वचन ले कर ही शेफाली ने उस के चरण छोड़े थे।

शेफाली का और उसके घर का अभिभावक अब राधू ही रह गया। खाने पीने का सारा सामान राधू लाकर देता। शेफाली घूंघट निकाले अब उसके सामने आने लगी थी। धीरे-धीरे बात भी करने लगी और और एक दिन दोपहर के समय जब

शेफाली किसी ध्यान में मग्न बैठी थी कि राधू आकर सामने खड़ा हो गया। हताश शेफाली उसे देखती रह गई। घूंघट की बात ही उसे याद नहीं थी।

राधू के मुंह से निकला—"शेफ़ाली, आज दिवाली है।" हां, मुझसे शर्म क्यों करती हो? शेफाली की बांह राधू के हाथ में? शेफाली को तो मानो सांप सूंघ गया। काठ सी भारी हो गई। राधू ने प्रतिवाद न देख कर स्थिति समझ ली। शेफाली का घूंघट हटा कर उसने उसकी ठोड़ी पकड़ कर ऊपर उठाली और मुंह अपनी ओर सरकाने लगा। साँस सूंघी शेफाली सर्पिणी सी फुंकार उठी और जोर से एक तमाचा जड़ दिया राधू के मुंह पर। राधू का मुंह झनझन करने लगा। वह सम्भल भी न पाया था कि शेफाली उठी और भीतर कमरे की ओर भागी। राधू भी पीछे पीछे।

राधू से अब रहा न गया, तुरन्त शेफाली को बांहों में बांध लिया। खिचती खिचती शेफाली दीवार से जा टिकी। राधू भी उससे चिपक गया। उसने अपना मुंह शेफाली के मुंह पर रख दिया कि शेफाली ने अपने कपड़े से एक लम्बा सा छुरा निकाला और राधू की पीठ में भरपूर हाथ से दे मारा। वह तड़प कर पीछे हटा और लड़-खड़ा कर गिर पड़ा।

"अब क्या होगा?"

प्रश्न तो बार-बार उठा किन्तु उत्तर शेफाली को नहीं सूझ पड़ा। वह कमरे से बाहर आगई और चौक में छज्जे तले सर घुटनों पर रखकर बैठ गई। उसे ख्याल आया कि आज तो दिवाली है। उसका देवता आज आने वाला है। देवता शेफाली का। प्रियतम शेफाली का। वह क्या कहेगी उसे कि राधू को जान से मार दिया। मनोहर की तस्वीर शेफाली की आँखों के आगे बन गई।

"दिवाली की साँझ को खून कर दिया शेफाली, तूने!"

पता नहीं यह स्वर किस का था। और कहां से आया था। शेफाली थरथर कांपने लगी। उसे कैद हो जायगी, उसको फांसी हो जायेगी वह डरी और धीरे धीरे चल कर घर से बाहर गाँव से बाहर वह आ गई। नाक की सीध में बढ़ती चली गई, सामने ही कुंआ था। मानो शेफाली के स्वागत के लिये ही उसने अपना हृदय चीर कर फैला रखा हो। शेफाली—उसमें कूद गई! ······

गाँव भर में दीपक जल उठे थे, लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ मनोहर आ रहा था—कोई औरत कूद पड़ी कुएं में—स्त्री की रक्षा के लिये वह विह्वल हो गया।

तभी गाँव से भागता हुआ बलदेव आया और मनोहर को देख कर दूर से चिल्लाया—"तेरी बहू डूब मरी है, मनोहर! इसने राधू का खून किया था-खून?"

"खून, ! किसने किया, शेफाली ने?"

"शेफाली!" चिल्ला कर मनोहर भी छलाङ्ग मार गया। बलदेव ने देखा कि दोनों पति-पत्नी महा मिलन में लीन हो गये थे।

उर्मिला वार्ष्णेय

गृहस्थी की गाड़ी

●

मुन्ना ने रो-रो कर घर सिर पर उठा रक्खा था पर उमा की आंख खुलने का नाम ही न लेती थी। आखिर राकेश बाहर से झल्लाता हुआ आया--"नींद है या आफत ! मानो बैल बेच कर सो रही हो।"

अङ्गड़ाई लेकर अस्त-व्यस्त वस्त्रों को सम्भालती हुई उमा चारपाई से उठती हुई बोली—"रात में बार-बार उठना पड़ता तब पता चलता।"

आंगन में चारों ओर धूप फैल चुकी थी। बर्तन मलने बैठ उमा ने तीखे स्वर में पुकारा—"अशोक, अशोक।"

"मां, मैं काम कर रहा हूँ।" अशोक ने तभी किताब में उलझने का अभिनय करते हुए उत्तर दिया।

"जानती हूँ बड़ा पढ़ने वाला बना है। यह बर्तन उठा कर रख जा, वहां तो····"

"तो क्या करूं ?" अशोक बोला।

"पहले नल से पानी ला दे, फिर धुले बर्तन चौके में रख दे।"

"दो नहीं, एक काम करूंगा, चाहे कुछ भी करवा लो।"

"घंटे भर तुझ से मगज मारूं फिर यह नहीं वह नहीं कुछ न कर पर मेरी जान मत खा।"

राकेश से न रहा गया बोला—"उमा, बच्चों से प्यार से काम लिया जाता है।" फिर उसने अशोक की ओर देखते हुए कहा—"जाओ बेटा, पहले बर्तन रख आओ फिर अपना काम करना।"

"आप मुझे टेबिल लैम्प देंगे न पिता जी ?" अशोक ने कहा।

"हां हां, पर तुझे नल से पानी भी निकालना होगा।"

"खबरदार अशोक ! जो बर्तन छूए। मैं सब कर लूंगी। मरा, पेट का बच्चा भी पराया हो गया।"

"तुम्हारी तुनक मिजाजी से तो मैं परेशान हूँ, हर समय पारा आसमान पर ही चढ़ा रहता है।"

"मैं तुनक मिजाज हूं और आपका ढंग उम्दा है ? औरों से हंस हंस बातें करते हो किन्तु मेरी शक्ल से नफरत !"

"न जाने, तुम्हें मेरी सभी बातें कड़वी क्यों लगती हैं ? मुझे दूसरों से गरज ही क्या है । कहो तो बोलना बन्द···!"

"ठीक है, यह तो आप चाहते ही हैं । आज बोलने से अरुचि, कल मेरी सूरत से घृणा हो जायेगी । मेरा तो भाग्य ही खोटा है । नहीं, तो यहां आकर···।"

"रुक क्यों गईं कहती जाओ, आखिर मुझे पराया समझती हो ?"

"तभी घर में सुबह से शाम तक चक्की सी चलती हूं ।"

"वही मरसिया । मैं कहता हूं अपने-अपने घर में कौन काम नहीं करता ?"

"जी हां यह मेरा घर है । यदि मेरा होता, तो मेरी बात न मानी जाती । मैं तो यहां···।"

"मेरे पास इसका कोई भी उत्तर नहीं है । मैंने भूल की तुम्हें समझने में ।"

"समझ नहीं पाये इसीलिये तो जलाते हो ।"

"अजीब औरत हो । यदि इतनी लम्बी जान पास में है तो थोड़ा विवेक भी रक्खा होता ।" राकेश गुस्से में भरा बैठक से बाहर चला गया ।

रात को राकेश जब घर आया तो शोभा सो चुकी थी । उमा ने राकेश की थाली परोसते हुए कहा—"इतनी देर से शोभा याद करती रहीं, न जाने किस मजलिस में बैठे रहे ! हाल ही गोद भरी गई है जरा हार देखो कैसा है ?"

"तुम भी क्या वैसा ही चाहती हो ?" राकेश ने ईषत स्मित के साथ कहा ।

"इच्छा तो थी पर कम से कम पांच सौ रुपये तो चाहियें । बैंक में फिर क्या बचेगा ?"

"आगे के महीने में किफायत कर लेंगे ।" राकेश ने गम्भीर होकर कहा ।

"आपको सूट भी बनवाना है, फिर शादी में बच्चों को चार कपड़े चाहियें । चलो, मेरा काम तो चल जायगा ।" उमा ने बड़ी उदासीनता प्रकट करते हुए कहा ।

"नहीं, तुम्हें हार ला देंगे । बच्चों के कपड़ों में ऐसा कौन सा दिवाला पिटेगा । शादी कब की है ?" उसने साहस बटोरते हुए ढाढस दिया ।

"कुल पन्द्रह दिन हैं । शोभा कल ही मुझे भी अपने साथ ले जायेगी ।"

"कल ही !" कौर चबाते हुए राकेश ने कहा ।

"फिर तैयारी भी तो करनी होगी । बोलो क्या चाहते हो ?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा ! पर कल तक सब प्रबन्ध कैसे होगा ?"

"मैं चली जाऊंगी मेरे पीछे आप सामान ले कर आ जाइयेगा ।"

"किन्तु सामान सब कागज पर लिख जाना वरना फिर कहोगी यह रह गया वह

रह गया।" राकेश ने लम्बी तान ली, और क्षण में ही लगा खुर्राटे भरने जैसे उसे इस दीन दुनिया से अब कोई सरोकार नहीं।

ठीक दिन के दिन ही, राकेश के सुसराल में पहुँचने पर परिवार के रिश्ते में साले-सालियों एवं लहजों के तानों की बौछार हो पड़ी। शोभा ने चुटकी लेते हुए कहा "यही बहुत समझो जो फिलासफर साहब को इधर आने की सुध तो बनी रही। चलिये अन्दर चलिये दीदी आपकी याद में सूख कर आधी रह गई हैं।" हाथ से बेग लेते हुए शोभा ने कहा।

"जी हां याद वालों की झलक से आपको याद का अनुभव तो हुआ।" हंसते हुए राकेश ने उत्तर दिया।

शोभा लजाती हुई, राकेश को उमा दीदी के पास पहुँचा चली गई।

"अभी क्यों आए ? परसों ही आते न ! जब बरात विदा हो जाती।" उमा ने चिढ़ कर कहा।

"अरे, क्या बताऊं एक मुसीबत हो तो सुलटी जाय। रुपये लेकर बाजार जा रहा था, तभी तार मिला पिता जी को लकवा मार गया है। दवा-दारू में व्यस्त रहने के कारण इधर आने में देर हो गई।" राकेश ने बड़े दयनीय स्वर से सफाई देते हुए कहा।

"हार कैसा लाये ?" उमा ने व्यग्रता से पूछा।

"हार तो नहीं आ सका। रुपये सब दवा में खर्च हो गये। जिस दिन पिताजी को गांव से लाया हालत बहुत नाजुक थी पर ईश्वर ने बचा ही लिया।"

उमा जैसे जल भुन कर राख हो गई। तभी अपने तेवर चढ़ा कर प्रश्न किया— "सूट भी न बन सका ?"

"नहीं, केवल बच्चों के ही कुछ कपड़े आ सके हैं।"

शोभा नाश्ता और पानी लेकर आ गई। बाहर से मां ने पुकारा—"उमा, अरी रोली रख कर थाल सजा दे दरवाजे पर बन्ना आ गया है।"

"आई माँ।" कह कर उमा रुआसी सी उठ कर बाहर चली गई।

रात के बारह बजे थे। पण्डित मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। वर-वधू वेदी के चारों ओर घूम रहे थे। जिसके पीछे कोई स्त्री कह रही थी—"दूल्हा अच्छा है पहिले ही दामाद की भांति सुन्दर और हंसमुख।"

उधर राकेश याद कर रहा था, अपने पाँच वर्ष पूर्व का इतिहास। जब वह भी इसी प्रकार वेदी के चारों ओर घूमा था, तब कितने सुनहरे सपने थे और कितनी किशोर आकांक्षायें ! यह गृहस्थी की गाड़ी भी कितनी भारी-भरकम पर आनन्ददायक है कि इसे खींचने के लिये हर नर-नारी लालायित रहता है। लगता है सनातन से यह यों ही खिचती आई है और खिचती ही रहेगी !

कमलेश सक्सेना

कलाकार

●

मोहन एक उच्च कोटि का कलाकार था। उसकी सधी हुई तूलिका, आदर्श में रंगी, 'नश्वर संसार' पर भाव चित्र बनाने में रत रहती और वह तूलिका में खोया तथा रंगों में डूबा रहता था।

शीला कलाकार पर मुग्ध थी, हृदय देवता के रूप में उसे स्वीकार कर चुकी थी, किन्तु समाज की भित्ति उन दोनों के एकीकरण में विशाल वाधा थी। शीला के हृदय की यही वेदना कविता बन कर बह निकली थी, वह कवियित्री बन गई।

मोहन शीला की कविता पर मुग्ध और उसकी सरलता पर आकर्षित था तथा शीला अपने हृदय में अपने आपको कलाकार के चरणों में समर्पित कर चुकी थी।

दोनों का दैनिक मिलन एक ही विद्यालय के सहपाठी होने के कारण सतत चलता रहा, हार्दिक शृंखलायें दृढ़तर होती गईं। शीला ने आत्म विभोरावस्था में ही बी० ए० पास कर लिया और कलाकार ने तूलिका में खोए हुए भी एम० ए० उत्तीर्ण किया। दोनों हर्ष-विह्वल एक-दूसरे को बधाई दे कृतकृत्य हुए।

विधि, दोनों के आदर्श प्रेम पर जल उठी। डाह ने माया रची और शीला के पिता का तबादला स्थायी रूप से बहुत दूर का कर दिया गया। कहां लखनऊ और कहां बम्बई। सुनते ही कलाकार मोहन के पैरों तले से धरती खिसक गई और शीला मानो छत से गिरी। विधि की विडम्बना को कौन टाल सकता था। शीला का मुख-मण्डल मुरझा गया, हृदय वेदना से तड़प उठा, आंखों में सागर उमड़ पड़ा।

'मोहन ! मुझे अपने से पृथक न होने दो।' बिलख पड़ी शीला।

प्यालियों में भरे आंसू मानो एक साथ मोहन के कलेजे में उतर गए। उसे लगा जैसे कोई बरबस ही उसकी तूलिका को उसके हाथ से छीन कर ले जा रहा है। दूसरे ही क्षण उसने अपने आपको संयत किया। वह आदर्शवादी है। नहीं, उसे शीला को रोकने का कोई अधिकार नहीं। वह अपने पिता का अकेला लड़का है, उसे घर छोड़ कर बम्बई जाने का भी कोई अधिकार नहीं। 'संसार नश्वर है', उसका अपना भाव चित्र उसकी आंखों में चित्रित हो गया। वह कर्तव्य को निभायेगा।

'नहीं, नहीं, शीला ! ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हें अपने माता-पिता के साथ

ही जाना चाहिये, भावना से कर्तव्य महान है। अपने परिवार की ओर देखो तुम्हारी छोटी बहिन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? तुम्हें जाना ही होगा, संसार नश्वर है।'

शीला को लगा जैसे किसी महान आत्मा ने उस पर वीतराग का मन्त्र फूंक दिया है। मोहन के अधरों से निकले शब्द-सरोवर को वह अमृत से भरे प्याले की तरह पी गई। और विधि की विभीषिका ने एक ही किनारे के दो पुष्पों को पृथक कर दिया। लखनऊ और बम्बई, कला और कविता, मोहन और शीला, कितना बड़ा अन्तर हो गया ? मोहन ने पत्र लिखने के लिये कलम उठाई, किन्तु आदर्श ने उसका हाथ रोक लिया। शीला ने पत्र डालना चाहा किन्तु मर्यादा ने ऐसा न होने दिया। कलाकार अपनी तूलिका में खो गया और उसकी तूलिका शीला की याद में नर्त्तन कर उठी। निर्जीव कागजों पर नश्वर संसार के भाव चित्र फिर छाने लगे।

शीला के पिता शीला के लिए लड़का तलाश कर कर के पागल हो गये, किन्तु जो देखो हजारों से लाखों तक के दहेज़ की मांग सामने रखते हैं। नितान्त वे थक कर घर में आ बैठे। शीला की मां के नेत्र आंसुओं से भर गये। वह बोली, 'हा भगवान ! क्या मेरी बिटिया के नाम का एक भी इन्सान धरती पर नहीं भेजा ?'

शीला को जब यह पता लगा तो उसका हृदय बिलख पड़ा। वह अपने माता-पिता को अपने लिये रोता नहीं देख सकती थी। उसने आत्म हत्या करने का निश्चय किया। किन्तु तभी लखनऊ से एक प्रतिष्ठित वकील का पत्र आया। उन्होंने अपने पुत्र का विवाह शीला से करना स्वीकार कर लिया था तथा दहेज के लिये लिख दिया था कि उसके लड़के को कुछ नहीं चाहिये।

घर भर में प्रसन्नता छा गई। शीला को विवाह से रुचि नहीं थी, किन्तु पिता का बोझ हल्का हुआ देख उसने भी सन्तोष की सांस ली। सोचा मरने से पूर्व उस देवता के भी दर्शन कर लूं।

धूमधाम से विवाह हुआ और शीला किसी और की होकर, घर भर से विदा ली, नये घोंसले की ओर चल दी। सोच रही थी मोहन ने कहा था, 'भावना से कर्तव्य महान है।' वह चाहती थी कि अन्तिम बार अपने पति के दर्शन भर करके संसार से भी विदा ले ले।

रात्रि के दो बज गये, किन्तु पतिदेव के दर्शन नहीं हुए, वह कुछ घबराई, दासी से पूछा पता लगा पास के कमरे में चित्र बना रहे हैं। सुनते ही सोच में पड़ गई, क्या वे भी चित्रकार हैं ? अनायास ही उधर को पैर उठ गये। द्वार से देखा 'भाव-चित्र' उस पर लिखा था 'नश्वर संसार।' कविता ने कला को पहचान लिया वह हर्ष-विह्वल चीख पड़ी मोहन ! और मोहन अप्रत्याशित रूप से शीला को पत्नी के रूप में पा निहाल हो गया। कला और कविता, दो शरीर और एक आत्मा वाले मोहन और शीला के शरीर भी एक हो गए।